

बृहज्ज्योतिषसारः

सानुद्रिकादि-वैशिष्ट्यसहितः

ज्योतिषाचार्यपण्डितश्रीसीतारामभाशर्मन्मजेन
ज्यौ. आ. श्रीरूपनारायणशर्मणा सम्पादितः

तत्कृतमाषार्थसहितः

ज्यौ. आ. श्रीउमाशंकरशुक्ल एम. ए. (गणित)

हल्यनेन संशोभितः



प्रकाशकः-

ठाकुर प्रसाद पुस्तक भण्डार

कचौड़ीगली, वाराणसी

बृहज्ज्योतिषसारः सामुद्रिकादि-वैशिष्ट्यसहितः

*

मिथिलादेशस्थ-चौगमाग्रामनिवासिना
सिसईस्थ-सन्ततुलसीदासविद्यालयाध्यापकेन
ज्योतिषाचार्यपण्डितश्रीसीतारामझाशर्माम्निजेन
ज्यो. आ. श्रीरूपनारायणशर्मणा सम्पादितः
तत्कृतभाषार्थसहितः

ज्यो. आ. श्रीउमाशंकर शुक्ल एम. ए. (गणित)
इत्यनेन संशोधितः

सिंहल* बुक डिपो
महारानी लक्ष्मीबाई मार्केट,
पाडा चोक, ग्वालियर-१ (म.प्र.)

प्रकाशकः

ठाकुर प्रसाद पुस्तक भण्डार
कचौड़ीगली, वाराणसी-१

[Rs ४०]

दो शब्द

अप्रत्यक्षाणि शास्त्राणि विवादस्तेषु केवलम् ।
प्रत्यक्षं ज्योतिषं शास्त्रं चन्द्रार्कौ यत्र साक्षिणौ ॥

यह निविवाद माना जा चुका है कि सस्कृत वाङ्मय में प्राणिमात्र की अनुभूति का विषय एकमात्र ज्योतिषशास्त्र है। अखण्ड-भूमण्डल के प्राणिमात्र का हिताहित इसी शास्त्र में निहित है। यही शास्त्र है, जिसमें जन्म से लेकर मरण पर्यन्त सभी शुभाशुभ कार्यों के मुहूर्तों का और ग्रहों के गोचर आदि फलों का तत्तद्देशानुसार विचार किया गया है।

सिद्धांत, संहिता और होरा इस स्कन्धत्रयात्मक शास्त्र को वेद का निर्मल चक्षु कहा गया है। इसके बिना श्रुति-स्मृति-पुराणोपपादित श्रौत-स्मार्त का कोई कर्म सिद्ध नहीं हो सकता। जगत् के हित के लिए ब्रह्मा ने इस ज्योतिष शास्त्र का निर्माण किया। जैसा कि नारद ने अपनी स्मृति में कहा है—

सिद्धान्त-संहिता-होरारूपं स्कन्धत्रयात्मकम् ।

वेदस्य निर्मलं चक्षुर्ज्योतिःशास्त्रमकल्मषम् ॥१॥

विनैतदखिलं श्रौतं स्मार्तं कर्म न सिद्धयति ।

तस्माज्जगद्धितायेदं ब्रह्मणा निर्मितं पुरा ॥२॥

स्वभावतः लोगों के मन में जीवन के घटनाओं को जानने की जिज्ञासा हुआ करती है, परन्तु इन घटनाओं का सही फलादेश वही ज्योतिषी भली-भाँति कर सकता है जिसे त्रिस्कन्ध ज्योतिष (सिद्धांत, संहिता, होरा) का अच्छा ज्ञान हो। इस ज्ञान को प्राप्त करने के लिए महर्षियों द्वारा अनेक ग्रन्थ रचे गये हैं जिनका पूर्णरूपेण अध्ययन इस अल्प समय में सम्भव नहीं, अतः उन ग्रन्थों के सार को लेकर इस 'बृहज्ज्योतिषसार' नामक ग्रन्थ की रचना हुई है। इस ग्रन्थ में मुहूर्त, जातक, शकुन और सामुद्रिक सम्बन्धी अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों का समावेश किया गया है। पाठकगण केवल इस ग्रन्थ के अध्ययनमात्र से ज्योतिषशास्त्र की अच्छी जानकारी आसानी से कर सकते हैं।

अन्त में, मानवधर्मवश या दृष्टिदोष एवं मुद्रण यन्त्रादि दोषों से जो कुछ त्रुटियाँ रह गयी हों उनको पाठकबुन्द स्वयं सुधार कर पढ़ें तथा मुझे सूचित करने की कृपा करें जिससे अग्रिम संस्करण में सुधार हो सके।

गच्छतः स्वलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः ।

हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः ॥

संस्कर्ता—

श्री उमाशंकर शुक्ल

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
मङ्गलाचरण	१	प्रयोजन नष्ट लाभ ज्ञान	२७
कालमान	१	पञ्चक	२७
कालभेद	२	पञ्चक में मतान्तर	२७
वृष्टि आदिमान-युगादिमान	२	वार नक्षत्रभव अमृतयोग	२७
ब्राह्ममान	३	शुभयोग-सर्वार्थसिद्धियोग	२८
पितृमान-बार्हस्पत्यमान	४	भवारोत्थमृत्युयोग-यमघंटयोग	२८
व्यवहारयोग्यमान	४	अशुभयोगपरिहार	२९
संवत्सर-देशभेद से वर्षमान	५	आनन्दादि अष्टविंशतियोग	
शुद्धसंवत्सर-अतिचार और लुप्त वर्ष	५	जानने के प्रकार	२९
दाक्षिणात्यों के मत से लुप्तवर्ष	६	आनन्दादियोगों के नाम	२९
संवत्सरों के फल	७	आनन्दादियोगों के फल	२९
अयन-गोल-ऋतुज्ञान	१८	योग प्रकरण	
मास प्रकरण		योग जानने की रीति	३०
मासनाम अधिकमास-क्षयमास	१९	विष्कुम्भादियोगों के नाम	३०
अधिकमास जानने की रीति	२०	अशुभयोग परिहार	३१
तिथि प्रकरण			
तिथियों के स्वामी	२१	करण-प्रकरण	
तिथि की नन्दादिक संज्ञा	२१	चलकरणानयन	३१
नन्दादि तिथियों में कर्तव्य	२२	करण नाम	३१
अमावस्या के भेद	२२	करणानयन-स्थिरकरण	३१
सदसत्तिथियाँ और पर्व दिन	२२	भद्राज्ञान-विष्टिपुच्छप्रशंसा	३३
तिथि की संज्ञा आदि जानने का चक्र	२३	भद्रा के मुख और पुच्छ समय	
सिद्धियोग	२३	का ज्ञान	३३
अमृतयोग	२४	भद्रा में वर्जित कर्म	३४
अमृत और मतांतर से मृत्युयोग	२४	भद्रा का परिहार	३४
तिथियों में वर्ज्य	२४	वारों के नाम और कृत्य	३५
दोषपरिहार-दग्धतिथि	२४	शुभ और अशुभ वार	३७
नक्षत्र प्रकरण		विशिष्ट वारादि कथन-सूक्ष्म वार	३७
नक्षत्रों के नाम	२५	क्षण वार जानने का चक्र	३९
अश्विन्यादि नक्षत्रों के स्वामी	२५	क्षणतिथि-क्षणयोग	४०
नक्षत्रों की ध्रुवादि संज्ञा	२५	रविवार में वर्जनीय	४०
नक्षत्रों की अन्धादि संज्ञा	२६	अवकहडाचक्रोद्धार	४१

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
राशिपरिभाषा	४३	विवाह में वर्जित	७६
राशिनाम	४४	विवाह लग्न में त्याज्य	७७
नक्षत्र से राशि जानने का प्रकार	४४	गण्डान्त लक्षण-लग्नभंगकारकयोग	७७
राशि की पुंखी आदि संज्ञा	४५	लग्न में ग्रहों के प्रशस्त स्थान	७८
राशिस्वामी	४६	वधूप्रवेश प्रकरण	
तारा विचार	४७	वधूप्रवेश मुहूर्त-नक्षत्रादिशुद्धि	७९
तारा नाम	४७	काल-विवेक-नववधू पाककर्म	८०
दुष्ट तारा की शान्ति	४८	द्विरागमन प्रकरण	
चन्द्र विचार-चन्द्रफल	४८	विहित नक्षत्र	८०
चन्द्रमा का वर्ण और फल	४९	द्विरागमन में त्याज्य	८१
सम्भुवादि चन्द्रफल	४९	विशेष-पुनः विशेष	८१
घातचन्द्र-वार-नक्षत्र	४९	संस्कार प्रकरण	
चन्द्रघातचक्र-दुष्टचन्द्रादि शान्ति	५०	प्रथम रजोदर्शन फल	८२
दिशाविचार	५१	गर्भाधान मुहूर्त	८२
स्पष्टदिक् साधन-विदिशा विचार	५१	गण्डान्त में जन्म निषेध	८२
दिशाशूल	५२	सीमान्त पुंसवन मुहूर्त-जातकर्म	८३
दिग्शूल परिहार	५२	शिशुविलोकन-दुग्धपान	८३
योगिनीवास-योगिनीफल	५३	सूती स्नान-नामकरण	८४
कालवास-राहुनिवास	५३	दन्तोत्पत्तिकथन	८४
विवाह प्रकरण		दोलारोहण-निष्क्रमण मुहूर्त	८४
विवाहादि शुभकार्यों में वर्ज्य	५४	जन्मनक्षत्र वर्ज्य	८४
वरकन्या की वर्षशुद्धि	५६	अन्नप्राशन-कणविध	८५
वरकन्या की संज्ञा	५६	चूड़ाकरण-विशेष	८५
रविशुद्धि	५६	सामान्य क्षौरकर्म-उपनयनवर्षशुद्धि	८६
चन्द्रशुद्धि-गुरुशुद्धि	५७	उपनयनमुहूर्त-अनध्याय-विशेष	८७
वरवरण-कन्यावरण	५७	प्रदोषलक्षण-गलग्रहतिथि	८८
कन्या की कुण्डली विचार	५८	समावर्तन-अक्षरारम्भ-वेदारम्भ	८८
परिहार मतांतर-पुनः विशेष	५८	स्त्रीवस्त्रादिधारण-गुरुपवस्त्रधारण	८९
मेलापक (आठ प्रकार के कूट)	५९-६७	वस्त्रक्षालनमुहूर्त-दन्तधावन	८९
वर्गकूट	६८	औषधभक्षणमुहूर्त-रोगविमुक्तनान	९०
वरवधूमेलापकोदाहरण	६९	गृह प्रकरण	
विवाह में दश दोष	७०-७४	वास्तुभूमि-शुभाशुभलक्षण	९१
विवाह में विहित लग्न नवमांश	७५	भूमिवर्ण-शरयोद्धार	९१
विवाह मुहूर्त	७५		

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
शल्यज्ञान	१२	खनिते खाते निस्सृत वस्तुफलानि	१११
शुभाशुभ भूमिपरीक्षा	१३	पृथ्वी शयन में परिहार-सौरमास	११२
गृहसमीप में शुभवृक्ष	१४	शुभमास-चन्द्रर्क्षे द्वारम्	११३
अशुभवृक्ष-विशेष	१५	द्वारे दीर्घविस्तारम्	११३
वास्तु योग्य ग्रामविचार	१५	चन्द्रसूर्यवेध	११४
वर्ग की शरसंख्या-गृहदशाज्ञान	१५	दीर्घ विस्तारमान-वृषभचक्रम्	११४
वास्तुमुहूर्त	१६	तिथिविचार	११५
वृषवास्तु चक्रोद्धार-पृथ्वीशयन	१६	वारविचार-ऋक्षविचार	११५
कृत्तिकादि भेद से गृहफल	१७	रामोक्त-मासफल	११६
पिंडानयन प्रकार	१७	मतान्तर से सौरमासफल	११६
आयादि विचार	१८	पोडशगृहविचार	११७
निषिद्ध तिथि वार विचार	१८	जीर्णकाष्ठनिषेध	११९
पोडश गृह विचार	१८	शिवाबलिः	११९
आयादिपरत्वेन द्वार	१९	वास्तुपुरुष नाभिज्ञान	१२०
वृक्षविचार	१९	गृहारम्भे निषेधकाल	"
अंशादिज्ञान भित्तिमान	१००	जलवहमार्ग—कूपविचार	१२१
पिण्ड में भित्तिका विचार	१००	रामोक्त राहुभात्कूपचक्र	"
नक्षत्र से राशि निर्णय	१००	रविभात्-भौमभात्कूपचक्र	१२२
गृहाङ्गणे शुभाशुभफलानि	१०१	रोहिणीभात्कूपचक्र	१२३
ब्रूसाचक्र	१०१	निवारचक्र	१२४
चरण विचार	१०२	कोल्हूचक्र—तडागचक्र	१२५
भुवःसुप्तत्वज्ञान	१०२-१०३	जलाशयारम्भमुहूर्त	१२६
नामप्रधानता	१०४	इष्टिकारम्भ एवं सुधालेप में	"
गृहारम्भनक्षत्र	१०४	नक्षत्र-विचार	"
गृहारम्भे वर्ज्य तिथिवार	१०५	इष्टिकानिर्माण	१२७
मास-प्रवेशज्ञान	१०५	इष्टिकानिस्सारण—शल्योद्धार	"
द्वारनिर्णय-द्वारशाखारोपण	१०६	सर्पचक्र—दिवसाधन	१२९
द्वारपरत्वेन चतुर्दिक्षु ऋक्षस्थापन	१०६	गृहप्रवेश में नक्षत्र	१३०
द्वारनियम	१०७	जीर्णगृहप्रवेश	"
वसिष्ठः—अष्टौ वर्गाः	१०८	तिथिविचार—राजयोग	"
लाभालाभ विचार-उदाहरण	१०८	गृहदशाज्ञान	"
दीर्घायुयोग	१०९	दशा किससे विचारें	१३१
रामोक्त दुष्टयोग	११०	पुनरपि आयव्यय विचार	"
राहुमुखखातविचार	१११	राहुसम्मुख में विशेष	"

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
गृहप्रवेश मुहूर्त	१३१	शश्वरोपण-छेदन—मेधिस्यापन	१४१
प्रकीर्ण प्रकरण		धान्यमर्दन-बीजरक्षण	१४२
देवादि प्रतिष्ठा	१३२	धान्यवृद्धि - अर्धविचार	"
पाकारम्भ चुल्हिका स्थापन	"	क्रय-विक्रय	१४३
मार्जनी बन्धन	१३३	द्रव्यप्रयोग—नवान्न भक्षण मुहूर्त	"
दिनरात्रि के मुहूर्त प्रकारान्तर से	"	होमाहुति मुहूर्त	१४४
वारों में त्याज्य मुहूर्त	१३४	महारुद्रादी णिववास फल	"
मद्य बनाने का मुहूर्त	"	पशुपालन—गजाश्वदिरोहण	१४५
नवीनवस्त्रधारण मुहूर्त	१३५	यात्रा प्रकरण	
मोती सुवर्ण और रक्त वस्त्र धारण मुहूर्त	"	यात्रा में अशुभ नक्षत्र	१४६
रोगोत्पत्ति में शुभाशुभ नक्षत्र	"	सर्वदिग्गमनार्ह नक्षत्र	"
रोग से मुक्त होने का प्रमाण	"	यात्रा में विहित लग्न—यात्रा में वज्र्य	"
वाणिज्य मुहूर्त	१३६	लग्नशुद्धि—सर्वाङ्गज्ञान	१४७
रोगमुक्त स्नान के लग्न	"	यात्रा में प्रशस्त लग्न—समय फल	१४८
धनुर्विद्या सीखने का मुहूर्त	"	परिहार—सर्वारम्भ लग्नशुद्धि	"
वैद्यक व गारुडी सीखने का मुहूर्त	१३७	सर्वारम्भ मुहूर्त	१४९
फारसी-अरबी भाषा सीखने का मुहूर्त	"	यात्राकालिक शुभाशुभ नक्षत्र	"
रत्न परीक्षा के सीखने का मुहूर्त	"	दीक्षाग्रहण का मुहूर्त	१५०
शिल्पविद्यारम्भ मुहूर्त	"	संक्रान्ति प्रकरण	
कुर्आ खोदने के नक्षत्र और मुहूर्त	१३८	संक्रान्तिकाल-मुहूर्त चिन्तामणि	१५१
द्रव्य देना व स्थापित करना	"	संध्या समय में विशेषता	१५२
हस्ती लेना व देना	"	पुनः विशेषता	१५२
घोड़े का लेना या बेचना	"	संक्रान्ति में स्नानादि दिन में प्रशस्त	"
पशुओं के नगर में लाने और भेजने		मेष की संक्रान्ति में जन्म लग्न वश फल	"
के लिये वजित समय	१३८	विशेष फल	१५३
गवादि पशुओं के क्रय-विक्रय में		वारवश संक्रान्ति फल	"
वजित नक्षत्र	१३९	जन्मनक्षत्रवश संक्रान्ति-मासफल	१४५
तृणकाष्ठादि संग्रह में वजित नक्षत्र	"	विशेष—संक्रान्तियों के नाम	"
नृत्यारम्भ का विचार	"	पुण्यकाल में विशेषता	"
राज्याभिषेक नक्षत्र	"	मेष संक्रान्ति की विशेषता	"
राजदर्शन	१४०	वार के अनुसार संक्रान्ति नाम	१५५
अग्न्याधान मुहूर्त—विशेष	"	संक्रान्ति एवं नक्षत्र में सम्बन्ध	"
कृषि प्रकरण		फल—कालफल	"
हल-बीजवपन मुहूर्त	१४१	संक्रान्ति का मुख	१५६

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
वार और नक्षत्रों से फल जानने की रीति	१५६	लग्न-परिभाषा	१७४
करण में संक्रान्ति मुख	"	पलभा परिभाषा चरखण्डानयन	१७५
वार में संक्रान्ति की दृष्टि	१५७	लंकोदय से स्वदेशोदय साधन	"
संक्रान्ति का गमन—स्थिति फल—वाहन—वाहनफल—फल	१५८	लग्न-साधन प्रकार	१७६
वृत्त—आयुध—भोजनपात्र	१५९	भुक्त अथवा भोग्य प्रकार से लग्न साधन का नियम	"
भक्ष्यपदार्थ—गन्ध	"	लग्नानयन में विशेष	१७७
जाति—पुष्प—भूषण—कंचुकी—वय	१६०	दशम (मध्य) लग्न-साधनार्थ नतकालानयन	१७८
संक्रान्ति के वाहनादि का फल	"	दशम चतुर्थभावानयन प्रकार	"
अन्य प्रकार से	"	मध्य लग्न में विशेष	१७९
धान्य विचार	१६३	स-सन्धि भावानयन में सरल प्रकार	"
संक्रान्ति के नक्षत्र का फल	"	यथा—लग्नविवेक	
जन्मनक्षत्र-जन्मवार और जन्मतिथि से संक्रान्ति फल	"	राशि स्वरूप—लग्न	१८१
संक्रान्ति का स्वरूप	"	लग्न प्रयोजन	१८२
चंद्रमास संक्रान्ति का वर्ण और फल	१६४	विम्ब्वीय लग्न में विशेषता	"
संक्रान्ति का पुण्यकाल	"	भाव लग्नों का मान	"
ग्रहण प्रकरण		भवृत्तीय लग्न	१८३
चन्द्रग्रहण-सूर्यग्रहण-अन्य मत	१६५	भावलग्न में अदृष्ट फल प्रदत्व	"
गोचर प्रकरण		अन्य विशेष	१८६
रविकल-चन्द्रफल-भौमफल	१६६	भावलग्न साधन प्रकार	१८९
बुधफल-गुरुफल	१६७	होरालग्न साधन प्रकार	"
शुक्रफल-शनिफल	१६८	घटीलग्न साधन	१९०
राहुफल और केतुफल	"	द्वादशभाव चक्र	"
जातक स्कन्ध		स्पष्ट ग्रह	१९१
नवीन साङ्केतिक चिह्न	१६९	लग्नचक्र लिखने की रीति	"
घण्टा मिनट से घट्यादि इष्टकाल	१७०	चलित भावचक्र	"
पञ्चांगस्थ ग्रहचालन से स्पष्टीकरण	"	दोनों प्रकार कुण्डली का प्रयोजन	१९२
खण्डगुणनरीति	१७१	घटी लग्नोदाहरण	१९३
तात्कालिकाः स्पष्टग्रहाः सगतिकाः	१७२	भावलग्न प्रकरण	
भयात-भभोगपरिभाषा	१७३	सूर्यादिस्पष्टग्रह	१९६
स्पष्ट चन्द्रसाधन	"	पापग्रह—ग्रहों की शत्रुता मित्रता	१९७
अयनांश साधन प्रकार	१७४	ग्रहों की उच्चता और नीचता	१९८
		सबल ग्रह	"

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
सबल लग्न — राजयोग	१९९	सप्तवर्षियुग	२१८
राजयोग	"	दसवें, बारहवें एवं सोलहवें वर्ष में	
कारकयोग	२०५	मृत्युयोग	२१९
छत्रयोग, हंसयोग	२०६	विषदोष से मृत्यु	"
ध्वजयोग	२०६	राजदोष से मृत्यु	"
चतुःसागरयोग	"	कष्टयोग	२२०
सिंहासनयोग	"	अरिष्टभंगयोग	"
चक्रवर्तियोग	"	कुलनाशकयोग	२२१
धनयोग	२०७	स्वस्थयोग	"
एकावलीयोग	"	अल्पायुयोग	"
कुलदीपकयोग	"	दीर्घायुयोग	"
विख्यातपुत्रयोग	२०८	अंगहीनयोग	२२२
विद्वानुयोग	"	परमायुयोग	"
अन्ययोग	"	अपस्मारीयोग	"
भिक्षुकयोग	२०९	तस्करयोग	"
अंधयोग	२१०	म्लेक्षयोग	२२३
काणयोग	"	जन्मफल	"
कृच्छ्रजीवनयोग	"	तृतीयभावफल	"
भ्रातृहीनयोग	"	पंचमभाव का फल	२२४
पितृकष्टयोग	२११	षष्ठभाव का फल	"
मातृपितृमृत्युयोग	"	स्त्री जातकाध्याय	
पितृहन्तायोग	"	स्त्रियों के लक्षण का कालनिर्णय	२२५
मातृहन्तायोग	२१२	सौभाग्यवती तथा दुष्टायोग	"
भार्याहीनयोग	"	रूपगुणयुक्तपतिव्रतायोग	२२६
परजातयोग	"	नराकारकुरूपयोग	"
पितृपरोक्षे जन्मयोग	२१३	स्त्रियों का राजयोग	"
जातक का मृत्युयोग	"	सप्तमस्थ रवि, चंद्र फल	२२८
परिहार	२१४	सप्तमस्थ भौम, बुध, गुरु, शुक्र,	
वर्षमध्ये मरणयोग	२१५	शनि, राहु का फल	२२९
परिहार	२१७	अन्यदुष्कर्मयोग	२३०
दो वर्ष आयु का योग	"	मोहिनीरूप कारकयोग	२३१
तीन वर्ष आयु का योग	२१८	शुभगायोग	"
चार वर्ष आयु का योग	"	वैधव्ययोग	"
षड्वर्षायुयोग	"	स्वैरिणीयोग	२३२

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
व्यभिचारिणीयोग	२३२	वारपरत्व छायाविचार	२५२
पंश्रुलीयोग	"	काकशब्दशकुनविचार	"
पत्याज्ञया व्यभिचारिणीयोग	२३३	पिगलशब्दशकुनविचार	२५३
रण्डायोग	२३४	छिक्कानुसार पादछायाशकुनविचार	"
ग्रहराशिवश प्रत्येक त्रिंशांश का फल	"	छिक्काशकुन	"
ब्रह्मवादिनीयोग	२३६	पल्लीशब्दशकुनविचार	२५४
अष्टमस्थ ग्रहों का फल	२३७	पल्लीपतनसरठाधिरोहणफल	"
स्त्रियों के पुत्रभाव का विचार	"	यात्रा में दुष्टशकुन	२५५
विषाख्ययोग-विषाख्ययोगफल	२३८	दुष्ट शकुन का परिहार	२५६
विषाख्ययोग भंग	"	यात्रा समय में शुभशकुन का विचार	"
वैधव्यभंगोपाय	२३९	प्रश्न प्रकरण	
कन्या का शुभाशुभांगयुक्तलक्षण	"	तिथ्यादिप्रयुक्तप्रश्न एवं फल	२५८
अंगुष्ठनखलक्षण-गणिका लक्षण	२४०	स्वच्छायापरिप्रश्न	२५९
पदांगुल्युपर्यंगुललक्षण	"	पन्थाप्रश्न और फल	"
कनिष्ठांगुलिलक्षण	"	कार्याकार्य प्रश्न एवं फल	२६०
अनामिका तथा मध्यांगुलिलक्षण	"	वारनक्षत्रप्रयुक्तपन्थाप्रश्न	२६१
पादनखलक्षण-पादपुष्ठलक्षण	२४१	नष्टवस्तु सम्बन्धी प्रश्न एवं फल	"
अन्यशुभलक्षण	"	गभिणीप्रश्न	२६२
रोमलक्षण-पुनर्जानुलक्षण	२४२	मुष्टिप्रश्न	"
नितम्ब तथा कटिलक्षण	"	लग्नवल से मनश्चिन्तितप्रश्न	"
योनिलक्षण	२४३	संज्ञानुसार लग्ननाम	२६३
वस्तिलक्षण-नाभिलक्षण	२४४	अङ्कप्रश्न एवं फल	"
उदरलक्षण-त्रिवलीलक्षण	२४५	रोगी प्रश्न एवं फल	"
वक्षःस्थललक्षण-स्तनलक्षण	२४६	केवललग्नोपरि प्रश्न	२६४
स्कन्धलक्षण-बाहुलक्षण	२४७	मेघफल	"
हस्तांगुलिलक्षण	"	जललग्न	"
करतललक्षण-शुभाशुभस्वप्न फल	२४८	जलदनक्षत्र	२६५
विशिष्ट प्रकरण		पशुविषयक प्रश्न	२६६
अंगस्फुरण फल	२४९	सूर्य, चन्द्र, मंडल	"
स्त्रियों के अंगस्फुरण का फल	२५०	सामुद्रिकाध्याय	
द्वादशस्थानानुसार यात्रालग्न में ग्रहबल	२५१	ऊर्ध्वरेखाफल	२६७
वारपरत्व स्वरविचार	२५२	यवाकार चिह्नफल	"
		राजचिह्न	"
		तिललक्षण	२६८

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
वर्षप्रवेश प्रकरण		अद्भुत प्रकरण	
वर्षप्रवेश बनाने की विधि	२६९	घरपर गृध्र आदि पक्षीके बैठनेका फल	२८३
प्रवेशकालिक तिथि ज्ञान	२७०	गृध्र आदि पक्षी की शान्ति	२८५
वर्षप्रवेश में ग्रहों के दृष्टिस्थान	"	त्रीतरशान्ति-गर्ग	"
वर्षप्रवेश में मित्र शत्रु	"	यमलजननशान्ति	२८६
मूँथहानयन-वर्षेशाधिकारी	२७१	मूर्तिदानमन्त्र	२८७
त्रिराशीश	"	पोडषाब्दगर्भधारणशान्ति	"
इष्टोच्चबलानयन-पञ्चवर्गबल	२७२	पञ्चांगोपयोगी विषय	
वर्षपत्र लिखने की रीति	"	वर्तमान संवत्सर के भुक्तभोग्य समय	
वर्षेष्टकालिक स्पष्टग्रहचक्र	२७४	और प्रभवादि-नामज्ञान	२८८
मित्र-सम-शत्रु चक्र	"	वर्षेश मन्त्री आदि के ज्ञान	२८९
पञ्चवर्ग विचार	"	वर्ष में मेघ के नाम का ज्ञान	"
पञ्चवर्गी बल चक्र-वर्षेशनिर्णय	२७५	मेघों के फल	"
वर्षेश बृहस्पति का फल	२७६	वर्षा धान्यादि विंशोपक (विश्व्या)	
मुद्दादशा-मुद्दादशाचक्र	"	जानने का प्रकार	"
त्रिपताकि चक्र	२७७	शाक वर्ष में मेघादिराशियों के	
पुरुष के जन्मलग्न के ग्रहों का		आय-व्यय	२९०
भावफल चक्र	२७८	उद्भिजादि विंशोपक	२९१
श्री के जन्मलग्न से ग्रहों का		रोहिणीवास और उसका फल	२९२
भावफल चक्र	२७९	सोदाहरण विशोत्तरी दशाज्ञान	
वर्षप्रवेशकालिक ग्रहों का भावफल	२८०	नक्षत्रों से दशापति और वर्ष	२९३
शान्त्यर्थ ग्रहों के दानपदार्थ और		विंशोत्तरी महादशा चक्र	२९४
जप संख्या	२८१	अन्तर्दशा बनाने का सरल प्रकार	"
सूर्यादि ग्रहों के वैदिक व		सूर्यादि की दशा में सूर्यादि ग्रहों की	
तान्त्रिक मन्त्र	२८३	अन्तर्दशा	२९६
महामृत्युञ्जय मन्त्र	२८३		

बृहज्ज्योतिषसारः

भाषाटीकासहितः

❀ मङ्गलाचरण ❀

नागायणं नमस्कृत्य रूपनारायणो नवम् ।
बृहज्ज्योतिषसाराख्यं ग्रन्थं कुर्वे सतां मुदे ॥१॥
ज्योतिषशास्त्र प्रशंसा—

सिद्धान्त-संहिता-हारारूपं स्कन्धत्रयात्मकम् ।
वेदस्य निर्मलं चक्षुर्ज्योतिषशास्त्रमकल्मषम् ॥२॥
विनैतदखिलं श्रौतं स्मार्तं कम न सिद्ध्यति ।
तस्माज्जगद्विदायेदं ब्रह्मणा निर्मितं पुरा ॥३॥

सिद्धान्त, संहिता और होरा नामक ३ स्कन्धों से युक्त ज्योतिषशास्त्र वेद का निर्मल नेत्र कहा गया है। ज्योतिषशास्त्र के बिना संसार में श्रौत यज्ञादि स्मार्त (उपनयन, विवाहादि) कोई भी कार्य सिद्ध नहीं हो सकता है, इसलिये जगत् के कल्याणार्थ ब्रह्मा ने इस शास्त्र को बनाया ॥२-३॥

विवरण—(१) जिसमें व्यक्त और अव्यक्त गणित की परिपाटी तथा जिससे खगोल, भूगोल और भूगोल एवं समस्त ग्रह-नक्षत्रादि की स्थिति का ज्ञान होता है वह सिद्धान्त स्कन्ध कहलाता है।

(२) जिससे काल के शुभत्व और अशुभत्व (सुभिक्ष, दुर्भिक्ष आदि) का ज्ञान होता है वह संहिता स्कन्ध कहलाता है।

(३) जिससे प्रत्येक प्राणी के अपने-अपने जन्मकालिक लग्न से जीवन भर के शुभ या अशुभ फलों का ज्ञान होता है वह होरा स्कन्ध कहलाता है।

कालमान—

ज्योतिषशास्त्रप्रणेता आचार्यगण—काल को ही विश्व का उत्पादक, पालक और संहारक मानते हैं, स्वयं सूर्य भगवान् ने कहा है—

लोकानामन्तकृत् कालः कालोऽन्यः कलनात्मकः ।

स द्विधा स्थूलसूक्ष्मत्वान्मूर्तश्चाऽमूर्त उच्यते ॥४॥

विश्व के उत्पादक और प्रलयकारक काल के दो भेद हैं। एक तो समस्त लोक (चर-अचर) को संहार करके स्वयं अव्यय अनन्त रूप रहने वाला महाकाल है। दूसरा काल सावयव कलनात्मक व्यवहारार्थ गणना करने योग्य है। वह (कलनात्मक) काल स्थूल और सूक्ष्म भेद से मूर्त (प्रत्यक्ष) और अमूर्त (अप्रत्यक्ष) रूप दो प्रकार का है ॥ ४ ॥

कलनात्मक काल के भेद—

प्राणादिः कथितो मूर्तस्त्रुट्याद्योऽमूर्तसंज्ञकः ।

उस कलनात्मक काल के प्राण आदि (पल-घटी-दिन आदि) मूर्त (व्यवहार में लाने योग्य) और त्रुटि आदि प्राणपर्यंत अमूर्त (व्यवहार में नहीं आने योग्य) हैं ॥ ४१ ॥

त्रुटि आदि काल—

सूच्या भिन्ने पञ्चपत्रे त्रुटिरित्यभिधीयते ॥५॥

तत्पष्ट्या च भवेद्रेणू रेणुषष्ट्या लवः स्मृतः ।

तत् पष्ट्या लीक्षकः प्रोक्तस्तत्पष्ट्या प्राण उच्यते ॥६॥

तीक्ष्ण सूई से कमलपत्र को छेदने में जितना काल लगता है उसको त्रुटि कहा गया है । ६० त्रुटि का १ रेणु, ६० रेणु का १ लव, ६० लव का १ लीक्षक और ६० लीक्षक का १ प्राण होता है ॥ ५-६ ॥

पङ्भिः प्राणैः पलं ज्ञेयं तत्पष्ट्या दण्ड उच्यते ।

दण्डपष्ट्या च नाक्षत्रमहोरात्रं प्रकीर्तितम् ॥७॥

६ प्राण (स्वांस) का एक पल, ६० पल का एक दण्ड, ६० दण्ड का एक नाक्षत्र अहोरात्र होता है ॥ ७ ॥

सौरं सूर्याशभोगेन तिथ्या चान्द्रदिनं स्मृतम् ।

सूर्योदयद्वयान्तस्थं कीर्त्यते सावनं दिनम् ॥८॥

सूर्य के एक अंश भोग करने से १ सौर दिन तथा एक तिथि का १ चान्द्र दिन और सूर्योदय से सूर्योदय पर्यन्त १ सावन दिन कहलाता है ॥ ८ ॥

युगादि मान—

त्रिंशत्सौरदिनैर्मासो वर्षं द्वादशभिश्च तैः ।

तद्देवानामहोत्रमसुराणां तथैव च ॥९॥

सुराऽसुराणामन्योन्यमहोरात्रं विपर्ययात् ।

तत्पष्टिः पङ्गुणा वर्षं दिव्यमासुरमेव च ॥१०॥

अयुतघ्नैर्द्वित्रिवेदैः सौरवर्षैश्च तैः समम् ।

संध्यासंध्यांश-सहितं विज्ञेयं तच्चतुर्युगम् ॥११॥

३० सौर दिन का १ मास, १२ मास का १ वर्ष होता है । १ सौर वर्ष का देवता और दैत्य का अहोरात्र होता है । जिस समय देवों का दिन उस समय दैत्यों की रात्रि होती है और जिस समय दैत्यों (दक्षिण-ध्रुववासियों) का दिन उस समय देवों (उत्तर-ध्रुववासियों) की रात्रि होती है । ४३२००००

सौर वर्ष का एक चतुर्युग (या महायुग) संध्या संध्यांस सहित होता है ॥ १-११ ॥

युगानां सप्ततिः सैका मन्वन्तरमिहोच्यते ।

कृताद्ब्रह्मसंख्यस्तस्यान्ते सन्धिः प्रोक्तो जलप्लवः ॥१२॥

७१ चतुर्युग का १ मनु (मन्वन्तर), प्रत्येक मन्वन्तर के अन्त में कृतयुग वर्षसंख्यातुल्य उसकी जलमय संधि होती है ॥१२॥

ससंधयस्ते मनवः कल्पे ज्ञेयाश्चतुर्दशः ।

कृतप्रमाणः कल्पादौ संधिः पञ्चदशः स्मृतः ॥१३॥

एवं संधिसहित १४ मनु का १ कल्प होता है । तथा कल्प के आरंभ में कृतयुग वर्षतुल्य १५वीं संधि होती है ॥१३॥

ब्राह्म मान—

इत्थं युगसहस्रेण भूतसंहारकारकः ।

कल्पो ब्राह्ममहः प्रोक्तं शवरां तस्य तावती ॥१४॥

इस प्रकार १ हजार चतुर्युग का १ कल्प होता है । जो ब्रह्मा का १ दिन होता है । उसमें सब प्राणियों का लय हो जाता है । तथा १ कल्प ब्रह्मा की रात्रि होती है ॥१४॥

परमायुः शतं तस्य तथाहोरात्रसंख्यया ।

आयुषोऽधेमितं तस्य शेषकल्पोऽयमादिमः ॥१५॥

एवं २ कल्प का १ अहोरात्र और उस अहोरात्र के हिसाब से (३० अहोरात्र का १ मास, १२ मास का एक वर्ष) १०० वर्ष ब्रह्मा की आयु होती है । वर्तमान ब्रह्मा की आयु आधा (५० वर्ष) बीत चुका है । ५१ वाँ वर्ष का यह प्रथम अहोरात्र बीत रहा है ॥१५॥

कल्पादस्माच्च मनवः पट् व्यतीताः ससंधयः ।

वैवस्वतस्य च मनोर्युगानां त्रिधनो गतः ॥१६॥

वर्तमान कल्प के ६ मनु बीत चुके हैं । ७वें वैवस्वत मनु के भी २७ युग व्यतीत हो चुके हैं ॥१६॥

तथा च (भास्कर) —

याताः पण्मनवो युगानि भमितान्यन्यद्दुयुगांघ्रित्रयं

नन्दाद्रीन्दुगुणास्तथा शकनृपस्यान्ते क्लेवंसराः ।

गोद्रीन्द्रद्रिकृताङ्कदस्रनगगोचन्द्राः, शकाब्दान्विताः ।

सर्वे संकलिताः पितामहदिने स्युवर्तमाने गताः ॥२७॥

वर्तमान कल्प में ६ मनु बीत चुके । वर्तमान मनु में कृत, त्रेता और द्वापर ये युगांघ्रि भी बीत चुके हैं । तथा शकनृप के अन्त (शाक वर्ष की प्रवृत्ति समय) में कलियुग के ३१७९ वर्ष बीत चुके थे । एवं शाक के आरम्भ में कल्पादि से १९७२९४७१७९ सौर वर्ष व्यतीत हो चुके थे । इसलिए इस संख्या में अभीष्ट शाके की संख्या जोड़ने से कल्पादि से अभीष्ट शाकारम्भ तक की संख्या हो जायेगी ॥१७॥

जैसे—शाके १८८० के आरम्भ में कल्पादि से गत वर्ष १९७२९४७१७९ + १८८० = १९७२९४९०५९ की संख्या हुई ।

पितृ मान—

अहोरात्रं पितृणां तु विधुपृष्ठानवासिनाम् ।

त्रिंशत्तिथ्यात्मकं प्रोक्तं चान्द्रमाससमं बुधैः ॥१८॥

३० तिथि (एक चान्द्र मास) तुल्य चन्द्रलोकवासी पितरों का अहोरात्र होता है ॥१८॥

वारहस्पत्य मान—

मध्यगत्या भभोगेन गुरोगौरववत्सरः ।

आश्विनादिकसंज्ञाश्च ज्ञेया मेषादिराशिषु ॥१९॥

मध्यम गतिसे एक-एक राशि का भोग वारहस्पत्य वर्ष कहलाता है । मेषादि १२ राशियों में आश्विन, कार्तिक इत्यादि मासवत् १२ संज्ञा होती है ॥१९॥

नवधाकाल मान—

ब्राह्मं दैवं मनोर्मानं पैत्र्यं सौरं च सावनम् ।

नाक्षत्रं च तथा चान्द्रं जैवं मानानि वै नव ॥२०॥

इस प्रकार ब्राह्म, दैव, मानव, पैत्र्य, सौर, सावन, नाक्षत्र, चान्द्र और वारहस्पत्य ये ९ प्रकार के काल कहे गये हैं ॥२०॥

इनमें व्यवहार में आने योग्य—

पञ्चभिव्यवहारः स्यात् सौरचान्द्राक्षेसावनैः ।

वारहस्पत्येन मर्त्यानां नान्यमानेन सर्वदा ॥२१॥

इन मानों में से केवल सौर, चान्द्र, नाक्षत्र, सावन और वारहस्पत्य मान से ही मनुष्य का व्यवहार होता है ॥२१॥

सौरं यज्ञविवाहादौ सूतकादौ च सावनम् ।

वध्यादिमापनाद्यार्क्षं चान्द्रं च पितृकर्मणि ॥२२॥

प्रभवाद्यब्दमाने तु बार्हस्पत्यं प्रकीर्तितम् ।

एतच्छुद्धिं विलोक्यैव बुधः कर्म समारभेत् ॥२३॥

यज्ञ और विवाहादि शुभ कार्य में सौरमान, सूतकादि में अहोरात्र गण-
नार्थ सावन, घटी आदि काल ज्ञानार्थ नाक्षत्र, पितृकर्म में चान्द्र और प्रभवादि
संवत्सर में बार्हस्पत्य मान ग्रहण करना चाहिये । इन कालों की शुद्धि देखकर
ही कर्म का आरम्भ करना चाहिये ॥२२-२३॥

संवत्सर—

स्फुटेज्येऽजादिगे यो यो वत्सरः परिपूयते ।

सृष्टितो विजयाद्यास्तेऽथवा चाश्विनपूर्वकाः ॥२४॥

मेषादि राशि में स्पष्ट गुरु के रहने पर जो-जो संवत्सर पूर्ण होता है वे ही
सृष्ट्यादि से विजय आदि ६०, अथवा आश्विन आदिक १२ संवत्सर होते हैं,
जिनके फल पञ्चांग में लिखे जाते हैं ॥२४॥

देशभेद से वर्षमान—

नमदोत्तरभागे तु बार्हस्पत्येन वत्सरः ।

तस्यास्तु दक्षिणे भागे सौरमानेन वर्तते ॥२५॥

नर्मदा के उत्तर भाग के देश में बार्हस्पत्य (प्रभवादि) संवत्सर और
दक्षिणभाग में सौर (मेषसंक्रान्ति से मेषसंक्रान्ति तक) संवत्सर फलादि में
ग्रहण किया जाता है ॥२५॥

शुद्धसंवत्सर—

यत्रैकराशिसञ्चारो भवेन्मागेगतेर्गुरोः ।

शुद्धः संवत्सरः स स्यात्सर्वेषां च शुभप्रदः ॥२६॥

जिस बार्हस्पत्य संवत्सर में स्पष्ट गुरु का मार्गगत्या एक राशि में सञ्चार
हो वह शुद्ध वर्ष सबके लिये शुभप्रद है ॥२६॥

अतिचार और लुप्तवर्ष—

यत्र वर्षे द्विचारः स्यादतिचारः स उच्यते ।

तदा कर्म शुभं त्याज्यमष्टाविंशतिवासरान् ॥२७॥

जिस संवत्सर में मार्गगति गुरु का दो राशि में सञ्चार हो वह अतिचार
कहलाता है । उसमें २८ दिन पर्यंत शुभ कर्म का त्याग करना चाहिये ॥२७॥

अतिचारी गुरुर्वक्रो भूत्वाऽऽगच्छति पूर्वभम् ।

तदा लघ्वतिचारः स्यादन्यथा लुप्तवत्सरः ॥२८॥

यस्मिन् राशौ स्फुटेज्यस्य वत्सरान्तो न जायते ।

तद्राशिवत्सरस्यैव नाम्नो लोपः प्रजायते ॥२६॥

अतिचार होने पर भी स्पष्ट गुरु यदि वक्री होकर फिर पूर्वराशि में आवे तो छव्वतिचार होता है । अन्यथा (अर्थात् यदि पूर्वराशि में न आवे तो) छुप्तसंवत्सर होता है ॥२८-२९॥

महातिचारसंज्ञं तं लुप्तं संवत्सरं त्यजेत् ।

वत्सरारम्भतः पञ्चचत्वारिंशद्दिनादि वा ॥३०॥

छुप्तसंवत्सर का ही नाम महानिचार भी है । उस वर्ष को शुभ कर्म में त्याग देना चाहिये । अथवा आवश्यक में आदि से ४५ दिन त्यागकर शेष में कर्म करना चाहिये ॥३०॥

दक्षिणात्यों के मत से छुप्त वर्ष —

यत्र जीवाब्दयुग्मस्य सौराब्दे विरतिर्भवेत् ।

लुप्तवर्षं तदा तत्र ज्ञेयं ज्योतिषवेदिभिः ॥३१॥

जिस सौरवर्ष में दो वार्हस्पत्य संवत्सर का अन्त हो वह दक्षिणदेश में छुप्त वर्ष समझा जाता है ॥३१॥

कुत्रचिच्चान्द्रमानेन वत्सरः परिगृह्यते ।

एवमेव च तत्रापि विज्ञेयो लुप्तवत्सरः ॥३२॥

कहीं-कहीं चान्द्र मान (चैत्रान्त) से वर्ष ग्रहण किया जाता है । वहाँ भी इसी प्रकार (वर्ष के भीतर दो वार्हस्पत्य वर्ष के अन्त होने से) छुप्त वर्ष समझना ॥३२॥

वार्हस्पत्य वर्षों के नाम—

विजय	विश्वावसु	पिंगल	शुक्ल	वृष	मेघ
जय	पराभव	कालयुक्त	प्रमोद	चित्रभानु	वृष
मन्मथ	प्लवंग	सिद्धार्थी	प्रजापति	सुभानु	मिथुन
दुर्मुख	कीलक	रौद्र	अंगिरा	तारग	कर्क
हमलम्ब	सौम्य	दुर्मति	श्रीमुख	पार्थिव	सिंह
विलम्ब	साधारण	दुन्दुभी	भाव	व्यय	कन्या
विकारी	विरोधकृत्	रुधिरादगारी	युवा	सर्वजित्	तुला
शर्वरी	परिवादी	रक्ताक्ष	धाता	सर्वधारी	वृश्चिक
प्लव	प्रमादी	क्रोधन	ईश्वर	विरोधी	धनु
शुभकृत्	आनन्द	क्षय	बहुधान्य	विकृत	मकर
शोभकृत्	राक्षस	प्रभव	प्रमाथी	खर	कुम्भ
क्रोधी	नल	विभव	विक्रम	नन्दन	मीन

संवत्सरो के फल

प्रभव—

कृषीणामीतयश्चाग्निकोपश्च व्याधयो भुवि ।

प्रभवाब्दे मन्दवृष्टिस्तथापि सुखिनो जनाः ॥१॥

प्रभव नाम के संवत्सर में खेती को सूखा, राजाओं का दण्ड और टिड्डीदल आदि के द्वारा बाधा पहुँचती है। आग ज्यादा लगती है, बीमारी भी फैलती है। वर्षा कम होती है फिर भी लोग सुखी रहते हैं ॥१॥

विभव—

दण्डनीतिपरा भूपा बहुसस्यार्घवृष्टयः ।

विभवाब्देऽखिला लोकाः सुखिनः स्युर्विवैरिणः ॥२॥

विभव नाम के संवत्सर में राजा प्रजा के साथ दण्डनीति का विशेष प्रयोग करते हैं। अन्न खूब होता है और वृष्टि भी अच्छी होती है। इस वर्ष में सभी लोग सुखी और शत्रुरहित रहते हैं ॥२॥

शुक्ल—

शुक्लाब्दे निखिला लोकाः सुखिनः स्वजनैः सह ।

राजानो युद्धनिरताः परस्परजयैषिणः ॥३॥

शुक्ल नाम के संवत्सर में सब लोग अपने कुटुम्बियों के साथ-साथ सुखी रहते हैं। राजा लोग एक दूसरे को जीतने की इच्छा से लड़ाई-झगड़े में लगे रहते हैं ॥३॥

प्रमोद—

प्रमोदाब्दे प्रमोदन्ते राजानो निखिला जनाः ।

वीतरोगा वीतभया जायन्ते नात्र संशयः ॥४॥

प्रमोद नाम के संवत्सर में राजा-प्रजा सभी आनन्द से रहते हैं। न किसी को किसी प्रकार का रोग सताता है। और न किसी को किसी प्रकार का भय ही रहता है ॥४॥

प्रजापति—

न चलन्ति चला लोकाः स्वस्वमार्गात्कथञ्चन ।

अब्दे प्रजापतौ नूनं बहुसस्यार्घवृष्टयः ॥५॥

प्रजापति नाम के संवत्सर में सब लोग अपने-अपने मार्ग से चलते रहते हैं, कोई किसी तरह विचलित नहीं होता। इस वर्ष में पानी अच्छा बरसता है और अन्न भी पर्याप्त होता है ॥५॥

अङ्गिरा—

अन्नाद्यं भुज्यते शश्वज्जनैरतिथिभिः सह ।

अङ्गिराब्देऽखिला लोका भूपाश्च कलहोत्सुकाः ॥६॥

अङ्गिरा नाम के संवत्सर में लोग स्वयं मजे से खाते-पीते हैं और अतिथियों का भी सत्कार होता है। इस वर्ष में सभी राजे कलह के लिये उत्सुक रहते हैं ॥६॥

श्रोमुख—

श्रीमुखाब्देऽखिला धात्री बहुसस्यार्घसंयुता ।

अध्वरे निरता विप्रा वीतरागा विवैरिणः ॥७॥

श्रोमुख नाम के संवत्सर में सारे भूमण्डल में अन्न खूब होता है। ब्राह्मण यज्ञ में लगे रहते हैं और लोगों के हृदय से द्वेषभाव दूर हो जाता है, जिससे कोई किसी का शत्रु नहीं रह जाता ॥७॥

भाव—

भावाब्दे प्रचुरा रोगा मध्यसस्यार्घवृष्टयः ।

राजानो युद्धनिरतास्तथापि सुखिनो जनाः ॥८॥

भाव नाम के संवत्सर में रोग विशेष फैलता है। अन्न साधारण भाव का रहता है, उसी तरह पानी भी कम बरसता है। राजा लोग लड़ाई में लगे रहते हैं। फिर भी प्रजा सुखी रहती है ॥८॥

युवा—

प्रभूतपयसो गावः सुखिनः सर्वजन्तवः ।

सर्वकामक्रियायुक्तो युवाब्दे युवतीजनः ॥९॥

युवा नाम के संवत्सर में गौयें दूध विशेष देती हैं, सब जीव सुखी रहते हैं। इस वर्ष स्त्रियों में जागृति होती है और वे अपने धर्मानुसार अच्छे-अच्छे काम करती हैं ॥९॥

घाता—

धातुवर्षेऽखिला भूपाः सदा युद्धपरायणाः ।

सम्पूर्णा धरणी भाति बहुसस्यार्घवृष्टिभिः ॥१०॥

घाता नाम के संवत्सर में सभी राजे लड़ जाते हैं और पूरे साल तक लड़ते ही रहते हैं। लेकिन पृथ्वी पर बहुत अन्न होता है और वृष्टि भी अच्छी ही होती है ॥१०॥

ईश्वर—

ईश्वराब्देऽखिलाङ्गीवान् पृथ्वी धात्रीव सर्वदा ।

पोषयत्यतुलैरन्नैः फलतोयैश्च व्रीहिभिः ॥११॥

ईश्वर नाम के संवत्सर में पृथ्वी माता की तरह प्रजा को अन्न, फल और जल से सदा संतुष्ट करती है ॥११॥

बहुधान्य—

अनीतिरतुला वृष्टिर्बहुधान्याख्यवत्सरे ।

विविधान्नचयः क्षेत्रे सुखपूर्णाखिला धरा ॥१२॥

बहुधान्य नाम के संवत्सर में अनीति विशेष होती है और विविध प्रकार के अन्नों से पूर्ण सारी पृथ्वी सुखी रहती है ॥१२॥

प्रमाथी—

न मुञ्चति पयोवाहः कुत्रचित्कुत्रचिज्जलम् ।

मध्यमा वृष्टिर्घञ्च अन्नमब्दे प्रमाथिनि ॥१३॥

प्रमाथी नाम के संवत्सर में मेघ ठीक से नहीं बरसते । कहीं वृष्टि होती है कहीं नहीं । इस तरह बहुत हल्की वृष्टि होती है । अन्न महँगा हो जाता है ॥१३॥

विक्रम—

विक्रमाब्दे धराधीश-विक्रमाक्रान्तभूमयः ।

सर्वत्र सर्वदा मेघा मुञ्चन्ति प्रचुरं जलम् ॥१४॥

विक्रम नाम के संवत्सर में राजाओं के बल से सारी पृथ्वी त्रस्त रहती है और मेघ हमेशा बहुत ज्यादा जल बरसाते हैं । इस कारण इस वर्ष में बाढ़ आने का भय रहना स्वाभाविक है ॥१४॥

वृष—

वृषाब्दे निखिलाः क्षमेशा युद्धयन्ति वृषभा इव ।

विद्याप्रसक्ता धिप्रेन्द्राः पूज्यन्ते सततं भुवि ॥१५॥

वृष नाम के संवत्सर में सब राजे साँड़ की तरह आपस में कटते-मरते हैं, ब्राह्मण विद्याध्ययन में लगे रहते हैं और सारी पृथ्वी में वे पूजे जाते हैं ॥१५॥

चित्रभानु—

वित्तार्धवृष्टिसस्याद्यैर्विचित्रा निखिला धरा ।

निराकुलाखिला लोकाश्चित्रभान्वाख्यवत्सरे ॥१६॥

चित्रभानु नाम के संवत्सर में धन, अन्न और अच्छी वृष्टि होने के कारण सारी पृथ्वी विचित्र मालूम पड़ती है और इस वर्ष लोगों में किसी प्रकार का आतंक नहीं रहता ॥१६॥

सुभानु—

सुभानुवत्सरे भूमौ भूमिपानां च विग्रहः ।

भाति भूर्भूरिसस्याद्या भयं क्वापि भुजङ्गमैः ॥१७॥

सुभानु नाम के संवत्सर में राजे लड़ते हैं । पृथ्वी पर अन्न खूब होता है । इस वर्ष में साँपों का उपद्रव विशेष रहता है ॥१७॥

तारण—

कुतश्चिन्निखिला लोकाः सरन्ति प्रतिपन्नताम् ।

नृपाहवे क्षताद्रोगाद् भैषज्यं तारणाब्दके ॥१८॥

तारण संवत्सर में लोग किसी तरह अपना गुजर-बसर कर लेते हैं । इस वर्ष राजा का भी प्रजा पर कोप रहता है । रोग भी ज्यादा उभड़ते हैं । लोगों को साल भर दवाई ही करते बीतता है ॥१८॥

पार्थिव—

पार्थिवाब्दे तु राजानः सुखिनः सुप्रजा भृशम् ।

बहुभिः फलपुष्पाद्यैर्विधिधैश्च पयोधरैः ॥१९॥

पार्थिव नाम के संवत्सर में राजे और प्रजा सब सन्तुष्ट रहते हैं । इस में फल, पुष्प विशेष होते हैं और वर्षा भी मजे की होती है ॥१९॥

व्यय—

व्ययाब्दे निखिला लोका बहुव्ययपरा भृशम् ।

विरमन्तीह तुरगै रथैर्भैतानि सर्वदा ॥२०॥

व्यय नाम के संवत्सर में सब लोगों का खर्च बढ़ जाता है । इस साल में खर्च के बोझ से दबे रहने के कारण लोग रथ और घोड़े आदि सवारियों का आनन्द लेने से बाज आते हैं ॥२०॥

सर्वजित्—

सर्वजिद्वत्सरे सर्वे जनास्त्रिदशरात्रिकाः ।

राजानो विलयं यान्ति भीमसंग्रामभूमयः ॥२१॥

सर्वजित् नाम के संवत्सर में सभी लोग त्रस्त रहते हैं । दिन कठिनाई से कटता है । एक-एक रात्रि देवताओं की रात्रि की तरह लम्बी मालूम पड़ती है, दुनियाँ में युद्ध जोरों से होता है, जिससे कितने ही राजे चौपट हो जाते हैं ॥२१॥

सर्वधारी—

सर्वधार्यब्दके भूपाः प्रजापालनतत्पराः ।

प्रशान्तवैराः सर्वत्र बहुसस्यार्घावृष्टयः ॥२२॥

सर्वधारी नाम के संवत्सर में राजे धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करते हैं । लोगों के हृदय से वैरभाव दूर हो जाता है और अन्न खूब होता है । वृष्टि भी अच्छी ही होती है ॥२२॥

विरोधी—

विरोधिवत्सरे भूपाः परस्परविरोधिनः ।

भूरिभूतियुता भूमिर्भूरिवारिसमाकुला ॥२३॥

विरोधी नाम के संवत्सर में सब राजे आपस में विरुद्ध रहते हैं । अन्न अच्छी तरह होता है और पानी भी खूब बरसता है ॥२३॥

विकृति संवत्सर का फल

प्रकृतिर्विकृतिं याति विकृतिः प्रकृतिं तथा ।
तथापि सुखिनो लोकाश्चास्मिन्विकृतिवत्सरे ॥२४॥

विकृति नाम का संवत् जिस साल पड़े, उस वर्ष प्रकृति भी विकृत रूप धारण कर लेती है और बहुतेरे विकृत भाव भी प्रकृति अवस्था को प्राप्त हो जाते हैं । फिर भी संसार के लोग सुखी रहते हैं ॥२४॥

खर—

खराब्दे निःस्वना लोका अन्योऽन्यसमरोत्सुकाः ।
मध्यमा वृष्टिरत्युग्रै रोगैर्भूयात्प्रकम्पनम् ॥२५॥

जिस वर्ष खर नाम का संवत् पड़ जाय तो उस वर्ष में सब देश के राजे किसी को न सुनकर लड़ने पर उतारू हो जाते हैं । वृष्टि मध्यम होती है और बड़े-बड़े भयानक रोगों से दुनियाँ थर्रा उठती है ॥२५॥

नन्दन—

नन्दनाब्दे सदा पृथ्वी बहुसस्यार्घवृष्टयः ।
नन्दनाख्ये खलानां च जन्तूनां समहीभुजाम् ॥२६॥

जिस वर्ष नन्दन नाम का संवत् पड़ता है तो पृथ्वी में अनाज विशेष उत्पन्न होता है । उस वर्ष सब राजे और खल प्राणी तक सुखी रहते हैं । किसी को कोई कष्ट नहीं होता ॥२६॥

विजय—

विजयाब्दे तु राजानः सदा विजयकांक्षिणः ।
सुखिनो जन्तवः सर्वे बहुसस्यार्घवृष्टयः ॥२७॥

जिस वर्ष विजय संवत् पड़ता है तो सभी राजे विजय की अभिलाषा करने लगते हैं । उस वर्ष में पृथ्वीतल के जीव सुखी रहते हैं । वृष्टि अच्छी तरह होती है और अन्न खूब होता है ॥२७॥

जय—

जयमङ्गलघोषाद्यैर्धरणी भाति सर्वादा ।
जयाब्दे धरणीनाथाः संग्रामजयकांक्षिणः ॥२८॥

जय नाम का संवत् जिस वर्ष पड़ता है उस साल समस्त पृथ्वी-मण्डल जयघोष की ध्वनि से गुञ्जित हो उठता है और सभी राजे युद्ध के इच्छुक हो जाते हैं ॥२८॥

मन्मथ—

मन्मथाब्दे जनाः सर्वे तास्कर्यं यान्ति लोलुपाः ।

शालीक्षुयवगोधूमैर्नयेनाभिनवा धरा ॥२६॥

जब मन्मथ संवत् पड़ता है तो उस वर्ष में सब लोग चोर तथा छालची विशेष हो जाते हैं । धान, ईख, जौ और गेहूँ से भरी पूरी पृथ्वी देखने में बड़ी ही सुन्दर मालूम होती है ॥२९॥

दुर्मुख—

दुर्मुखाब्दे महावृष्टिरीतिचौराकुला धरा ।

महावैरा महीनाथा वीरवारणवाजिभिः ॥३०॥

जिस वर्ष दुर्मुख संवत् पड़ता है तो महावृष्टि होता है । टिट्टोदल और चोरों से पृथ्वी के सभी मनुष्य व्याकुल हो जाते हैं और राजाजन परस्पर शत्रुता करते हैं ॥३०॥

हेमलम्बी—

हेमलम्बे त्वीतिभातिर्मध्यसस्यार्घ वृष्टयः ।

भाति भूर्भूपतिशोभात्खड्गविद्युल्लतादिभिः ॥३१॥

हेमलम्बी नाम का संवत् जिस वर्ष पड़ता है उस साल सूखा और दुर्भिक्षादि तरह-तरह के उपद्रव होते हैं । राजाओं के द्वन्द्व से तलवारें चमक उठती हैं, कहीं-कहीं विजली गिरती है और रक्तपात भी होता है ॥३१॥

विळम्बी—

विलम्बवत्सरे भूपाः परस्परविरोधिनः ।

प्रजापीडा त्वनर्घत्वं तथापि सुखिनो जनाः ॥३२॥

जिस वर्ष विळम्बी नाम का संवत् पड़ता है तो राजाओं में परस्पर विरोध बढ़ जाता है । प्रजा को तकलीफ विशेष होती है । सब चीजें महुँगी हो जाती हैं, फिर भी लोग सुखी ही रहते हैं ॥३२॥

विकारी—

विकार्यब्देऽखिला लोकाः सरोगा वृष्टिपीडिताः ।

पूर्णसस्यफलं स्वल्पं बहुलं चापरं फलम् ॥३३॥

जिस वर्ष विकारी नाम का संवत् पड़ता है तो उस साल सभी लोग रोगी विशेष हो जाते हैं । अति वृष्टि से भी कष्ट होता है । अन्न कम होता है लेकिन और-और कामों में लोगों को अच्छा लाभ होता है ॥३३॥

शर्वरी—

शर्वरीवत्सरे पूर्णा धरा सस्यार्घवृष्टिभिः ।

जनाश्च सुखिनः सर्वे राजानः स्युर्विवैरिणः ॥३४॥

जिस साल शर्वरी नाम का संवत् पड़ता है तो पृथ्वी धान्य से भरी-पूरी रहती है, आर्थिक अवस्था सुधरी होती है, वृष्टि भी अधिक होती है, साधारण लोग सुखी रहते हैं और राजाओं का तो कोई शत्रु होता ही नहीं ॥३४॥

प्लव—

प्लवाब्दे निखिला धात्री वृष्टिभिः परिपूरिता ।

प्रभवन्ति तथा रोगव्याकुला त्वीतिभीतिभिः ॥३५॥

जिस वर्ष प्लव नाम का संवत् पड़ता है उस साल सारी पृथ्वी जलमयी हो जाती है। तरह-तरह के रोग होते हैं और भूमि दुर्भिक्ष तथा भय से व्याकुल रहती है ॥३५॥

शुभकृत्—

शुभकृद्वत्सरे पृथ्वी राजते विविधोत्सवैः ।

आतङ्कचौराभयदा राजानः समरोत्सुकाः ॥३६॥

जिस साल शुभकृत् संवत्सर पड़ता है, उस समय पृथ्वी विविध प्रकार के उत्सवों से सुशोभित हातो है। न किसी को किसी तरह का आतंक रहता है और न चोर हो सताते हैं। हाँ, राजे लड़ाई के लिए उत्सुक रहते हैं ॥३६॥

शोभन—

शोभने वत्सरे धात्री प्रजानां रोगशोकदा ।

तथापि सुखिनो लोका बहुसस्यार्धवृष्टयः ॥३७॥

शोभन नाम के संवत्सर में पृथ्वी भर में रोग-शोक विशेष दिखाई देता है। फिर भी वर्षा अच्छी होने और अन्न विशेष होने से लोग सुखी हा रहते हैं ॥३७॥

क्रोधी—

क्रोधवद्दे त्वखिला लोकाः क्रोधलोभपरायणाः ।

ईतिदोषेण सततं मध्यसस्यार्धवृष्टयः ॥३८॥

क्रोधी नाम के संवत्सर में संसार के सब लोग क्रोध और लोभ के आश्रित हो जाते हैं। टिड्डी आदि दोष से इस साल अन्न कम उत्पन्न होता है और वृष्टि भी मामूली ही होती है ॥३८॥

विश्वावसु—

अब्दे विश्वावसोः शश्वद्घोररोगा धरासु च ।

सस्यार्धवृष्टयो मध्या भूपाला नातिभूतयः ॥३९॥

विश्वावसु संवत् में पूरे वर्ष भर भयानक रोगों का आक्रमण होता है।

अन्न कम होता है, वृष्टि भी कम ही होती है, यहाँ तक कि राजे भी वन के लिए दुःखी रहते हैं ॥३९॥

पराभव—

पराभवाब्दे राजानो युद्धयन्ते सह शत्रुभिः ।

आमयाः क्षुद्रसस्यानि प्रभूतान्यल्पवृष्टयः ॥४०॥

पराभव नाम के संवत्सर में राजे अपने-अपने शत्रुओं से लड़ते हैं; रोग भी थोड़ा-बहुत फैल जाता है। तुच्छ अन्न ज्यादा होता है। वृष्टि कम होती है ॥४०॥

प्लवंग—

प्लवङ्गाब्दे मध्यवृष्टी रोगचौराकुला धरा ।

अन्योन्यसमरे भूपाः शत्रुभिर्हृतभूतयः ॥४१॥

प्लवंग नाम के संवत्सर में साधारण वृष्टि होती है। पृथ्वी रोग और चोरों से व्याकुल रहती है, राजे आपस में लड़कर कंगाल हो जाते हैं ॥४१॥

कीलक—

कीलकाब्दे त्वीतिभीतिः प्रजाक्षोभः नृपाय भीः ।

तथापि वर्द्धते लोका समा धान्यार्धावृष्टयः ॥४२॥

कीलक नाम के संवत्सर में अकाल का भय रहता है। प्रजा में राजा की तरफ से और राजा को प्रजा से भय तथा क्षोभ दोनों होते हैं। फिर भी साधारण तौर से वृष्टि अच्छी होने और अन्न सस्ता रहने के कारण लोग उन्नति करते हैं ॥४२॥

सौम्य—

सौम्याब्दे त्वखिला लोका बहुसस्यार्धावृष्टिभिः ।

विधैरिणो धराधीशा विप्राश्चान्धपरम्पराः ॥४३॥

सौम्य नाम के संवत् में सब लोग अन्न अधिक होने, सस्ती का समय रहने और वृष्टि अच्छी होने के कारण प्रसन्न रहते हैं। राजाओं के वैर नहीं रह जाते और ब्राह्मण अन्धपरम्परा के अनुसार चलते रहते हैं ॥४३॥

साधारण—

साधारणाब्दे वृष्ट्यर्द्धं भयं च मरणं सतः ।

मध्यसम्पद्गराधीशाः प्रजाः स्युः स्वस्थचेतसः ॥४४॥

साधारण नाम के संवत्सर में वृष्टि आधी होती है। साधु लोगों में किसी-न-किसी तरह का आतंक छाया रहता है। धनियों को मामूली आमदनी होती है और प्रजा प्रसन्न रहती है ॥४४॥

विरोधकृत्—

विरोधकृद्बत्सरे तु परस्परविरोधिनः ।

सर्वे जना नृपाश्चैव मध्यसस्यार्धवृष्टयः ॥४५॥

विरोधकृत् नाम के संवत्सर में परस्पर विरोध बढ़ जाता है । दुनियाँ के साधारण आदमियों से लेकर राजाओं तक में मनमुटाव पैदा हो जाता है । अन्न का मूल्य मध्यम रहता है और वृष्टि भी मध्यम ही होती है ॥४५॥

परिधावी—

भूपाहवो महारोगो मध्यसस्यार्धवृष्टयः ।

दुःखिनो जन्तवः सर्वे वत्सरे परिधाविनि ॥४६॥

परिधावी नाम के संवत्सर में राजाओं में युद्ध होता है । रोग फैलता है । अन्न का भाव मध्यम रहता है । वृष्टि भी साधारण होती है और सभी लोग दुःखी रहा करते हैं ॥४६॥

प्रमाथी—

प्रमाथिवत्सरे तत्र मध्यसस्यार्धवृष्टयः ।

प्रजानां जीवदुःखं स्यात् समात्सर्याः क्षितीश्वराः ॥४७॥

प्रमाथी नाम के संवत्सर में अन्न का भाव मध्यम होता है और वृष्टि भी मध्यम होती है । लोग दुःखी रहते हैं और राजाओं में ईर्ष्या बढ़ जाती है ॥४७॥

आनन्द—

आनन्दाब्देऽखिला लोकाः सर्वदानन्दचेतसः ।

राजानः सुखिनः सर्वे बहुसस्यार्धवृष्टिभिः ॥४८॥

आनन्द नाम के संवत्सर में सभी लोग सुखी रहते हैं । राजे भी सुखी रहते हैं । अन्न खूब होता है । वृष्टि भी अच्छी होती है ॥४८॥

राक्षस—

स्वस्वकार्ये रताः सर्वे मध्यसस्यार्धवृष्टयः ।

राक्षसाब्देऽखिला लोका राक्षसा इव निष्क्रियाः ॥४९॥

राक्षस नाम के संवत्सर में सब लोग अपने-अपने काम में लगे रहते हैं । अन्न का भाव मध्यम रहता है और वृष्टि भी मध्यम होती है और इस वर्ष में सब लोग राक्षसों के समान आलसी होकर कोई सराहनीय कार्य नहीं कर पाते ॥४९॥

नल—

नलाब्दे मध्यसस्यार्धवृष्टिभिः प्रवरा धरा ।

नृपसंक्षोभसंजाता भू रितस्करभीतयः ॥५०॥

नल नाम के संवत्सर में साधारण वृष्टि होने और साधारण तौर से अन्न होने से पृथ्वीतल के सब लोग मजे में रहते हैं। राजाओं में क्षोभ बढ़ जाता है और चोरों का भय रहा करता है ॥५०॥

पिंगल—

पिंगलाब्दे त्वीतिभीतिर्मध्यसस्यार्घवृष्टयः ।

राजानो विक्रमाक्रान्ता भुञ्जते शत्रवो धराम् ॥५१॥

पिंगल नाम के संवत् में अकाल का भय बना रहता है। अन्न और वृष्टि मध्यम होती है। राजाओं में लड़ाई होती है और शत्रुगण पृथ्वी पर राज्य करते हैं ॥५१॥

काल—

वत्सरे कालयुक्ताख्ये सुखिनः सर्वजन्तवः ।

सन्त्यथापि च सस्यानि प्रचुराणि तथा गदाः ॥५२॥

काल नाम के संवत्सर में सदा जीव सुखी रहते हैं। अन्न खूब होता है। साथ ही वीमारियाँ भी विशेष होती हैं ॥५२॥

सिद्धार्थ—

सिद्धार्थवत्सरे भूपा ज्ञानवैराग्यभागिनः ।

सम्पूर्णा वसुधा भाति बहुसस्यार्घवृष्टिभिः ॥५३॥

सिद्धार्थ नाम के संवत्सर में राजा तथा प्रजा इन दोनों में ज्ञान-वैराग्य का प्रकाश दिखाई देता है। सारी पृथ्वी विशेष अन्न से पूर्ण होने के कारण सुन्दर दीखती है ॥५३॥

रोद्र—

रोद्राब्दे नृपसंभूत-संक्षोभवलेश-भागिनः ।

सततं त्वखिला लोका भूपा मध्यसस्यार्घवृष्टयः ॥५४॥

रोद्र नाम के संवत्सर में प्रजा को राजा की तरफ से क्षोभ तथा क्लेश ज्यादा मिलता है। अन्न मध्यम उत्पन्न होता है और मध्यम ही वृष्टि भी होती है ॥५४॥

दुर्मति—

दुर्मत्यब्देऽखिला लोका भूपा दुर्मतयः सदा ।

तथापि सुखिनः सर्वे संग्रामाः सन्ति चेदपि ॥५५॥

दुर्मति नाम के संवत्सर में राजा और प्रजा की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, यद्यपि इस वर्ष लड़ाइयाँ ज्यादा होती हैं, फिर भी लोग सुखी रहते हैं ॥५५॥

दुन्दुभी—

संवसस्ययुता धात्री पालिता धरणोधरैः ।

पूर्वदेशविनाशः स्यादस्मिन् दुन्दुभिवत्सरे ॥५६॥

दुन्दुभी नाम के संवत्सर में पृथ्वी सब प्रकार के धान्य से पूर्ण रहती है और राजे शासन अच्छा करते हैं। किन्तु पूर्व देश का विनाश हो जाता है ॥ ५६ ॥

रुधरोद्गारी—

आहवे निहताः सर्वे भूपा रोगैस्तथा जनाः ।

यथाकथञ्चिज्जीवन्ति रुधरोद्गारिवत्सरे ॥५७॥

रुधरोद्गारी नाम के संवत् में सब राजे छड़ाई से ध्वस्त हो जाते हैं और प्रजा रोग से मर मिटती है। लोग किसी तरह जीवन की रक्षा कर पाते हैं ॥ ५७ ॥

रक्ताक्षी—

रक्ताक्षिवत्सरे सस्यवृद्धिर्वृष्टिरनुत्तमा ।

प्रेक्षते सर्वदाऽन्योन्यं राजानो रक्तलोचनाः ॥५८॥

रक्ताक्ष नाम के संवत्सर में साधारण वृष्टि होती है। इस वर्ष भर में हमेशा राजे आँख लाल किये एक दूसरे को देखते हैं ॥ ५८ ॥

क्रोधन—

क्रोधनाव्दे मध्यवृष्टिः सर्वदेशे च वृष्टयः ।

सम्पूर्णमितरे सर्वे भूपाः क्रोधपरायणाः ॥५९॥

क्रोधन नाम के संवत्सर में वृष्टि तो साधारण होती है, पर होती सर्वत्र है। इस वर्ष राजा और प्रजा सभी लोग क्रोधपरायण रहते हैं ॥ ५९ ॥

क्षय—

कार्पास-गन्ध-तैलेक्षु-मधु-सस्यविनाशनम् ।

क्षीयमाणाश्चापि नरा जीवन्ति क्षयवत्सरे ॥६०॥

क्षय नाम के संवत् में रूई, मुगन्ध की चोंजें, तैल, ऊख, शहद और अन्न नष्ट हो जाता है। इस तरह विनष्ट होते हुए किसी प्रकार इस वर्ष लोग जीते हैं ॥ ६० ॥

अयन—

मकरादिकषट्भस्थे सूर्ये सौम्यायनं तथा ।

कर्कादिराशिषट्कस्थे बुधैर्याम्यायनं स्मृतम् ॥१॥

मकर आदि ६ राशि में सूर्य के रहने से सौम्यायन और कर्क आदि ६ राशि में याम्यायन कहलाता है ॥ १ ॥

गोलज्ञान—

मेषादिराशिषट्के च सौम्यगोलः प्रकीर्तितः ।

तुलादिराशिषट्के तु याम्यगोलस्तथैव च ॥२॥

मेष आदि ६ राशि सौम्य गोल और तुला आदि ६ राशि दक्षिण गोल कहलाता है ॥ २ ॥

ऋतुज्ञान—

मृगादिराशिद्वयभानुभोगात् पडर्तवः स्युः शिशिरो वसन्तः ।

ग्रीष्मश्च वर्षाश्च शरच्च तद्वद्वेमन्तनामा कथितोऽपि षष्ठः ॥३॥

मकर और कुम्भ में सूर्य के रहने पर शिशिर; मीन, मेष में वसन्त; वृष, मिथुन में ग्रीष्म; कर्क, सिंह में वर्षा; कन्या, तुला में शरद्; वृश्चिक, धनु में हेमन्त ऋतु होता है ॥ ३ ॥

अथ मासप्रकरण

मासास्तु व्यवहारार्थं चतुर्धा परिकीर्तिताः ।

दर्शादर्शावधिश्चान्द्रः संक्रान्त्या सौर उच्यते ॥१॥

नाक्षत्रो भदिनैरेवं सावनः सावनैर्दिनैः ।

मेषादिस्थे रवौ यो यो मासश्चान्द्रः प्रपूर्यते ॥२॥

राशीनां द्वादशत्वात्ते चैत्राद्या द्वादशैव हि ।

३० दिन (अहोरात्र) का एक मास होता है, वह चार प्रकार का है—जैसे अमावस्या से अमावस्या तक ३० तिथियों का चान्द्रमास तथा संक्रान्ति से संक्रान्ति तक सौर मास । नक्षत्र दिन से ३० दिन का नाक्षत्र मास और ३० सावन दिन का सावनमास होता है । मेषादि द्वादश राशियों में सूर्य के रहने से जो-जो चान्द्रमास पूरा होता है वही चैत्रादि नामसे १२ मास होते हैं ॥१-२॥

मासनाम—

मासश्चैत्रश्च वैशाखो ज्येष्ठश्चाषाढसंज्ञकः ॥३॥
 श्रावणश्चैव भाद्राख्य आश्विनः कार्तिकस्तथा ।
 मार्गशीर्षश्च पौषश्च माघश्च फाल्गुनस्तथा ॥४॥

चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ, श्रावण, भाद्र, आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ और फाल्गुन ये बारहों महीनों की संज्ञा है ॥ ३-४ ॥

अधिकमास—

यस्मिन् चान्द्रे न संक्रान्तिः सोऽधिमासो निगद्यते ।

तत्र मंगलकार्याणि नैव कुर्यात् कदाचन ॥५॥

जिस चान्द्रमास में सूर्य को संक्रान्ति न हो वह अधिमास कहलाता है, उसमें कदापि विवाहादि शुभ कार्य न करें ॥ ५ ॥

अधिक (मल) मास पलटने के समय—

द्वात्रिंशता गतैर्मासैर्दिनैः षोडशभिस्तथा ।

वटिकानां चतुष्केण पतत्येकोऽधिमासकः ॥६॥

मध्यम सौरमान से ३२ मास १६ दिन ४ घड़ी पर एक-एक अधिमास हुआ करता है ॥ ६ ॥

क्षयमास—

यस्मिन् मासे द्विसंक्रान्तिः क्षयमासः स कथ्यते ।

तस्मिन् शुभानि कार्याणि यत्नतः परिवर्जयेत् ॥७॥

जिस चान्द्रमास में सूर्य की दो संक्रान्ति हो वह क्षयमास होता है, उसमें शुभ कार्य वर्जित है ॥ ७ ॥

विशेष—

तिथ्यर्थे प्रथमे पूर्वो द्वितीयेऽर्थे तथोत्तरः ।

मासाधिति बुधैर्ज्ञेयौ क्षयमासस्य मध्यगौ ॥८॥

क्षयमास में तिथि के पूर्वार्ध में पूर्वमास और तिथि के उत्तरार्ध में अग्रिम-मास जानना चाहिये । अर्थात् क्षयमास में तिथि के पूर्वार्ध में किसी का मरणादि हो तो उसकी एकोद्दिष्टादिक क्रिया उस मास की उसी तिथि में और उत्तरार्ध में मरणादि हो तो अग्रिम मास में उसका मरण समझा जायेगा तथा अग्रिम मास में ही उसकी एकोद्दिष्टादि क्रिया होगी ॥ ८ ॥

अधिमास जानने की रीति—

शाकः षट्सभूपकैर्विरहितो नन्देन्दुभिर्भाजितः
शेषेऽग्नौ च मधुः शिवे तदपरो ज्येष्ठोऽम्बरे चाऽष्टके ।

आषाढो नृपतौ नभश्च शरके विश्वे नभस्यस्तथा
बाहौ चाश्विनसंज्ञको मुनिवरैः प्रोक्तोऽधिमासः क्रमात् ॥६॥

शाके की संख्या में १६६६ घटाकर शेष में १९ के भाग देने से ३ शेष बचे तो चैत्र, ११ शेष बचे तो वैशाख, १० या ८ शेष बचे तो ज्येष्ठ, १६ शेष बचे तो आषाढ़, ५ शेष में श्रावण, १३ शेष में भाद्रपद, और २ शेष बचे तो आश्विन में अधिमास समझना । अन्य शेष बचे तो उस शाके में अधिमास नहीं कहना चाहिये ॥ ९ ॥

उदाहरण—शाके १८८० में अधिमास देखना है तो इसमें १६६६ घटाने से २१४ बचा इसमें १९ के भाग देने से शेष ५ बचता है, अतः श्रावण में अधिमास की सम्भावना समझनी चाहिये ।

शाके में अधिमास जानने का चक्र—

शाके	अधिमास	शाके	अधिमास	शाके	अधिमास
१८८०	श्रावण	१९१०	ज्येष्ठ	१९४०	ज्येष्ठ
१८८३	ज्येष्ठ	१९१३	वैशाख	१९४२	आश्विन
१८८५	आश्विन	१९१५	भाद्रपद	१९४५	श्रावण
१८८८	श्रावण	१९१८	आषाढ़	१९४८	ज्येष्ठ
१८९१	आषाढ़	१९२१	ज्येष्ठ	१९५०	कार्तिक
१८९४	वैशाख	१९२३	आश्विन	१९५३	भाद्रपद
१८९६	भाद्रपद	१९२६	श्रावण	१९५६	आषाढ़
१८९९	आषाढ़	१९२९	ज्येष्ठ	१९५९	ज्येष्ठ
१९०२	ज्येष्ठ	१९३२	वैशाख	१९६१	आश्विन
१९०४	आश्विन, फाल्गुन	१९३४	भाद्रपद	१९६४	भाद्रपद
१९०७	श्रावण	१९३७	आषाढ़	१९६७	ज्येष्ठ

पक्षे—

मासे शुक्लश्च कृष्णश्च द्वौ पक्षौ परिकीर्तितौ ।

सायं दृश्यधुः शुक्लः कृष्णः पक्षोऽपरः स्मृतः ॥१०॥

एक मास में दो पक्ष होते हैं, जिसमें सायंकाल से ही चन्द्रमा दृश्य हो वह शुक्ल और दूसरा कृष्णपक्ष कहलाता है ॥ १० ॥

अथ तिथिप्रकरणम्

तिथिनाम —

प्रतिपच्च द्वितीया च तृतीया तदनन्तरम् ।

चतुर्थी पञ्चमी षष्ठी सप्तमी चाष्टमी तथा ॥१॥

नवमी दशमी चैकादशी च द्वादशी तथा ।

त्रयोदशी ततः प्रोक्ता ततो ज्ञेया चतुर्दशी ॥२॥

तिथिः पञ्चदशी शुक्ले पूर्णिमा परिकीर्त्यते ।

कृष्णे पञ्चदशी या च साऽमावस्या निगद्यते ॥३॥

प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी, चतुर्दशी और पंचदशी, (शुक्लपक्ष की पञ्चदशी पूर्णिमा और कृष्णपक्ष की पञ्चदशी अमावस्या कहलाती है) ॥१-३॥

तिथियों के स्वामी—

तिथीशोऽग्निविधिगौरी गणेशोऽहिर्गुहो रविः ।

शिवो दुर्गान्तको विश्वे हरिः कामः शिवः शशी ॥४॥

प्रतिपदा के अग्नि, २ के ब्रह्मा, ३ के गौरी, ४ के गणेश, ५ के सर्प, ६ के कार्तिकेय, ७ के सूर्य, ८ के शिव, ९ के दुर्गा, १० के यम, ११ के विश्वेदेव, १२ के विष्णु, १३ के कन्दर्प, १४ के महादेव, १५ के चन्द्रमा और अमावस्या के स्वामी पितर भी हैं ॥ ४ ॥

तिथि की नन्दादिक संज्ञा—

नन्दाख्या प्रतिपत् षष्ठी तथा चैकादशी स्मृता ।

भद्रासंज्ञा द्वितीया च सप्तमी द्वादशी तथा ॥५॥

जयाख्या च तृतीया स्यादष्टमी च त्रयोदशी ।

तथा रिक्ता चतुर्थी च नवमी च चतुर्दशी ॥६॥

पूर्णा पञ्चदशी प्रोक्ता पञ्चमी दशमी तथा ।

एवं पञ्चविधास्तिथयो नामतुल्यफलप्रदाः ॥७॥

दोहा—प्रतिपद और एकादशी, षष्ठी नन्दा जान ।

दूज, सप्तमी, द्वादशी, ये भद्रातिथि मान ॥ ५ ॥

जया तृतीया अष्टमी, त्रयोदशी ये तीन ।

नवमी चौथ चतुर्दशी, है रिक्ता फलहीन ॥ ६ ॥

पंचदशी अरु पंचमी, दशमी पूर्णा नाम ।

सब तिथियों के नाम सम, जानो फल परिणाम ॥ ५-७ ॥

अथ नन्दादि तिथियों के कतंव्य—

नन्दासु चित्रोत्सववास्तुतन्त्र क्षेत्रादि कुर्वीत तथैव नृत्यम् ।

विवाहभूषाशकटाध्वयाने भद्रासु चैतान्यपि पौष्टिकानि ॥८॥

नन्दातिथि में चित्रकर्म, उत्सव, वास्तु, तन्त्र, खेती, नाच-तमाशा, विवाह तथा गाड़ी आदि वाहनों पर चढ़ना शुभ है। भद्रातिथि में उपरोक्त कार्य शुभ है तथा पौष्टिककर्म भी करे ॥ ८ ॥

जयासु संग्रामवल्लोपयोगिकार्याणि सिद्ध्यन्ति विनिर्मितानि ।

रिक्तासु तद्धृद्वधवन्धनादि विषाग्निशस्त्राणि च यान्ति सिद्धम् ॥९॥

जयातिथि में संग्राम के लिए उपरोक्त कार्य सब सिद्ध होते हैं तथा रिक्ता में वध, बन्धन आदि, विष अग्नि सम्बन्धी और शस्त्र बनाये हुए शुभ होते हैं ॥ ९ ॥

पूर्णासु मांगल्यविवाहयात्रासपौष्टिकं शान्तिकर्म कार्यम् ।

सदैव दर्शे पितृकर्म मुक्त्वा नान्यद्विदध्याच्छुभमङ्गलानि ॥१०॥

पूर्णातिथि में माङ्गल्य, विवाह, यात्रा तथा पौष्टिक सहित शान्तिकर्म करे। परंच अमावस्या में केवल पितृकर्म छोड़कर और कोई कार्य न करे ॥ १० ॥

अमावस्या के भेद—

सिनीवाली-कुहूभेदादमावास्या द्विधा भवेत् ।

सा दृष्टेन्दुः सिनीवाली सा नष्टेन्दुकला कुहूः ॥११॥

अमावस्या के दो भेद हैं जिसमें चन्द्रमा की कला दृष्ट हो वह सिनीवाली और जिसमें चन्द्रमा की कला नष्ट रहे वह कुहू कहलाती है ॥ ११ ॥

सत्-असत्तिथियाँ—

द्वादशी चैव दशश्च रिक्ता पष्ठी तथाऽष्टमी ।

असत्तिथ्यो बुधैः प्रोक्ताः शेषाः सत्तिथयः स्मृताः ॥१२॥

१२, ३०, ४, ९, १४, ६, ८ ये असत्तिथियाँ हैं और बाकी (१, २, ३, ५, ७, १०, ११, १३, १५) ये सत्तिथियाँ हैं ॥ १२ ॥

पर्वदिन—

अमावास्याष्टमी चैव पूर्णिमा च चतुर्दशी ।

एतानि पञ्च पर्वाणि रविसंक्रान्तिगं दिनम् ॥१३॥

अमावस्या, अष्टमी पूर्णिमा, चतुर्दशी, रविसंक्रान्ति वा दिन ये ५ पर्व दिन हैं ॥ १३ ॥

तिथि की संज्ञा आदि जानने का चक्र—

तिथि	१	२	३	४	५		
संज्ञा	नन्दा	भद्रा	जया	रिक्ता	पूर्णा		
स्वामी	अग्नि	ब्रह्मा	गौरी	गणेश	सर्प		
शुक्ल			अशुभ				
कृष्ण			शुभ				
तिथि	६	७	८	९	१०		
संज्ञा	नन्दा	भद्रा	जया	रिक्ता	पूर्णा		
स्वामी	कार्तिकेय	सूर्य	शिव	दुर्गा	यम		
शुक्ल			मध्यम				
कृष्ण			मध्यम				
तिथि	११	१२	१३	१४	१५	३०	
संज्ञा	नन्दा	भद्रा	जया	रिक्ता	पूर्णा	पूर्णा	
स्वामी	विश्वे	विष्णु	कंदर्प	शिव	चन्द्र	पितर	
शुक्ल				शुभ			
कृष्ण				अशुभ			

अथ सिद्धियोग—

शुक्रे नन्दा बुधे भद्रा शनौ रिक्ता कुजे जया ।

गुरौ पूर्णा च दैवज्ञैः सिद्धियोगाः प्रकीर्तिताः ॥१४॥

शुक्र में नन्दा, बुध में भद्रा, मङ्गल में जया, शनि में रिक्ता और गुरुवार में पूर्णा होने से सिद्धि योग होता है ॥ १४ ॥

अथ अमृतयोग—

रवौ सोमे तथा पूर्णा कुजे भद्रा गुरौ जया ।

तथा बुधे शनौ नन्दा शुक्रे रिक्तामृताऽह्वया ॥१५॥

रवि और सोम में पूर्णा, मङ्गल में भद्रा, बृहस्पति में जया, शुक्र में रिक्ता तथा बुध और शनि में नन्दा ये अमृतयोग हैं ॥ १५ ॥

अथ अमृत और मतान्तर मे मृत्यु योग—

नन्दा रवौ कुजे चैव भद्रा भार्गवसोमयोः ।

बुधे जया गुरौ रिक्ता शनौ पूर्णा च मृत्युदा ॥१६॥

रवि आर मङ्गल में नन्दा, शुक्र और सोम में भद्रा, बुध में जया, बृहस्पति में रिक्ता, शनिवार में पूर्णा ये अमृत तथा मतान्तर से मृत्युयोग हैं ॥ १६ ॥

तिथियों में वर्ज्य—

तैलं विवर्जयेत् पृष्ठ्यामष्टम्यां मांसमेव च ।

क्षौरक्रिया चतुर्दश्यां दर्शे स्त्रीसेवनं तथा ॥१७॥

षष्ठी में तैल, अष्टमी में मांस, चतुर्दशी में क्षौर, अमावस्या में स्त्री-प्रसंग न करे ॥ १७ ॥

दोष परिहार—

शनौ षष्ठ्यां स्मृतं तैलं महाष्टम्यां पलाशनम् ।

क्षौरं शुक्लचतुर्दश्यां दीपमाल्यां च मैथुनम् ॥१८॥

शनिवार में षष्ठी हां तो तैल लगाने में, आश्विन शुक्ल महाष्टमो में मांस खाने में, शुक्लपक्ष की चतुर्दशी में क्षौर कराने में और दीपमालिका की अमावस्या में स्त्री संभोग करने में दोष नहीं है ॥ १८ ॥

अथ दग्ध तिथि—

मीने चापे द्वितीया च चतुर्थी वृषकुम्भयोः ।

मेषकर्कटयोः षष्ठी कन्यायां मिथुनेऽष्टमी ॥१९॥

दशमी वृश्चिके सिंहे द्वादशी मकरे तुले ।

एताश्च तिथयो दग्धाः शुभे कर्मणि वर्जिताः ॥२०॥

मीन और धनुराशि में सूर्य रहें तो द्वितीया, वृष कुम्भ में ४, मेष कर्क में ६, कन्या मिथुन में ८, वृश्चिक सिंह में १०, मकर तुला में १२ ये दग्ध तिथियाँ शुभ कार्य में वर्जित हैं ॥ १९-२० ॥

इति तिथिप्रकरणम् ।

अथ नक्षत्र प्रकरण

नक्षत्रों के नाम—

अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, अश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, (अभिजित्) ❀ श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा, रेवती ।

अश्विन्यादि नक्षत्रों के स्वामी—

दस्रो यमोऽनलो ब्रह्मा शशी रुद्रोऽदितिर्गुरुः ।

सर्पश्च पितरश्चैव भगश्चाथोऽर्यमा रविः ॥१॥

त्वष्टा वायुश्च शक्राग्नी मित्रः शक्रश्च राक्षसः ।

जलं विश्वे विधिश्चैव विष्णुश्च वसुरम्बुजः ॥२॥

अजपादस्त्वहिर्बुध्न्यः पूषा चैते यथाक्रमम् ।

अश्विन्यादिकभानां हि स्वामिनः परिकीर्तिताः ॥३॥

अश्विनी के स्वामी दस्र (अश्विनी कुमार), भरणी के यम, कृत्तिका के अग्नि, रोहिणी के ब्रह्मा, मृगशिरा के चन्द्रमा, आर्द्रा के शिव, पुनर्वसु के अदिति, पुष्य के गुरु, श्लेषा के सर्प, मघा के पितर, पूर्वाफाल्गुनी के भग (सूर्य विशेष), उत्तराफाल्गुनी के अर्यमा (सूर्य विशेष), हस्त के रवि, चित्रा के त्वष्टा, स्वाती के वायु, विशाखा के इन्द्र और अग्नि दोनों, अनुराधा के मित्र, ज्येष्ठा के इन्द्र, मूल के राक्षस, पूर्वाषाढ के जल, उत्तराषाढ के विश्वेदेव, अभिजित् के विधि, श्रवण के विष्णु, धनिष्ठा के वसु, शतभिषा के वरुण, पूर्वाभाद्रपदा के अजपाद, उत्तराभाद्रपदा के अहिर्बुध्न्य, रेवती के स्वामी पूषा हैं ॥ १-३ ॥

अथ नक्षत्रों की ध्रुवादि संज्ञा—

उत्तरात्रयरोहिण्यो भास्करश्च ध्रुवं स्थिरम् ।

तत्र स्थिरं वीजगेहशान्त्यारामादिसिद्धये ॥४॥

तीनों उत्तरा, रोहिणी और त्रिवार ये ध्रुव और स्थिर संज्ञक हैं, इनमें स्थिर कार्य बीजवपन, शान्ति, बगीचा लगाना और आदि शब्द से मृदुसंज्ञक नक्षत्रोक्त कर्म सिद्ध होता है ॥ ४ ॥

* टिप्पणी—ताराविचार, राशि विचार आदि में अभिजित् की गणना नहीं होती है इसलिये नक्षत्र की संख्या २७ ही प्रसिद्ध है । कहा भी है, “उत्तराषाढतुर्थांशः श्रुति-पञ्चदशांशकः । कथितः चाभिजिन्मानं पुराणगणकोत्तमैः ॥” अर्थात् उत्तराषाढ के अंतिम चतुर्थांश श्रवण के पंचदशांश अभिजित् का मान है ।

स्वात्थादित्ये श्रुतेस्त्रीणि चन्द्रश्चापि परं चलम् ।

तस्मिन् गजादिकारोहो वाटिका गमनादिकम् ॥५॥

स्वातो, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा और सोमवार ये चर और चल् संज्ञक हैं, इनमें हाथी आदि पर चढ़ना, वाटिका लगाना, यात्रा करना, आदि शब्द से लघुसंज्ञक नक्षत्र में कहा हुआ कर्म भी शुभ है ॥ ५ ॥

पूर्वात्रयं याम्यमघे उग्रं क्ररं कुजस्तथा ।

तस्मिन् घाताग्निशाख्यानि विषशस्त्रादि सिद्धयति ॥६॥

तीनों पूर्वा (पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ, पूर्वाभाद्र), भरणी, मघा और मङ्गल-वार ये उग्र, क्रूरसंज्ञक हैं, इनमें घात कर्म, अग्निदाह, शठता, विष सम्बन्धी कर्म, शस्त्र आदि शब्द से दारुण नक्षत्रोक्त कर्म शुभ हैं ॥ ६ ॥

विशाखाग्नेयमे सौम्यो मिश्रं साधारणं स्मृतम् ।

तत्राग्निकार्यं मिश्रश्च वृषोत्सर्गादि सिद्धये ॥७॥

विशाखा, कृत्तिका और बुधवार ये मिश्र और साधारण संज्ञक हैं, इनमें अग्नि सम्बन्धी कर्म, पवित्रत कार्य, वृषोत्सर्ग आदि शब्द से उग्र नक्षत्रोक्त कर्म शुभ हैं ॥ ७ ॥

हस्ताश्विपुष्याभिजितः क्षिप्रं लघु गुरुस्तथा ।

तस्मिन् पण्यरतिज्ञानं भूषाशिल्पकलादिकम् ॥८॥

हस्त, अश्विनो, पुष्य, अभिजित् और गुरुवार ये क्षिप्र और लघुसंज्ञक हैं, इनमें दुकान, रति, ज्ञान, शिल्प (चित्रकारी) कला कर्म आदि और चर नक्षत्रोक्त कर्म शुभ हैं ॥ ८ ॥

मृगान्त्यचित्रा मित्रक्षं मृदु मैत्रं मृदुस्तथा ।

तत्र गीताम्बरक्रीडामित्रकार्यं विभूषणम् ॥९॥

मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा और शुक्रवार ये मृदु और मैत्रनामक हैं। इनमें गीत, वस्त्र क्रीडा, मित्र के कार्य, भूषण धारण करना शुभ है ॥ ९ ॥

मूलेन्द्राद्राहिभं सौरिस्तीक्ष्णं दारुणसंज्ञकम् ।

तत्राभिचारघातोग्रभेदाः पशुदमादिकम् ॥१०॥

मूल, ज्येष्ठा, आर्द्रा, श्लेषा और शनिवार, ये तीक्ष्ण और दारुण संज्ञक हैं, इनमें अभिचार, घात, पापकर्म, चुगलपन, पशुओं को शिक्षा आदि शब्द से बन्धन आदि शुभ होते हैं ॥ १० ॥

नक्षत्रों की अन्धादि संज्ञा -

अन्धाक्षं वसुपुष्यधातुजलभद्रीशायमान्त्याभिधं
मंदाक्षं रविविश्वमित्रजलपाश्लेषाश्वि चान्द्रं भवेत् ।

मन्दाक्षं शिवपित्रजैकचरणत्वाष्ट्रैन्द्रविध्यन्तकम् ।

स्वक्षं स्वात्यदितिश्रवोदहनभाहिर्वुध्न्यरक्षोभगम् ॥११॥

धनिष्ठा, पुष्य, रोहिणी, पूर्वाषाढा, विशाखा, उत्तराफाल्गुनी, रेवती, ये अन्धसंज्ञक हैं। हस्त, उत्तराषाढा, अनुराधा, शतभिषा, आश्लेषा, अश्विनो, मृगशिरा ये मन्दाक्ष हैं। आर्द्रा, मघा, पूर्वभाद्र, चित्रा, ज्येष्ठा, अभिजित्, भरणी ये मध्यनेत्र हैं। स्वाती, श्रवण, कृत्तिका, उत्तरभाद्र, मूल, पूर्वाफाल्गुनी ये सुलोचन संज्ञक हैं ॥ ११ ॥

प्रयोजन नष्ट लाभ ज्ञान —

विनष्टार्थस्य लाभोऽन्धे शीघ्रं मन्दे प्रयत्नतः ।

स्याद् दूरे श्रवणं मध्ये श्रुत्याप्ती न सुलोचने ॥१२॥

अन्ध नक्षत्र में नष्ट हुई चीज शीघ्र मिलती है, मन्द नक्षत्रों में यत्न करने से, मध्य नक्षत्र में नष्ट वस्तु की खबर मात्र हो प्राप्ति नहीं हो, और सुलोचन नक्षत्रों में नष्ट हुई चीजों की खबर और प्राप्ति कुछ भी नहीं होती है ॥ १२ ॥
अथ पञ्चक (भदवा) —

पञ्च भानि धनिष्ठातः पञ्चकं परिकीर्त्यते ।

गृहार्थं तृणकाष्ठानां संग्रहं तत्र वर्जयेत् ॥१३॥

धनिष्ठादि पाँच नक्षत्र पञ्चक कहलाता है, इन नक्षत्रों में गृह बनाने के लिये तृण, काष्ठ का संग्रह आदि न करे ॥ १३ ॥

पञ्चक में मतान्तर —

न गच्छेदक्षिणामाशां पट्के च श्रवणादिके ।

गृहार्थं तृणकाष्ठादेः शय्यादेः संग्रहं त्यजेत् ॥१४॥

श्रवण आदि ६ नक्षत्रों में दक्षिण दिशा की यात्रा, गृह के लिये तृण, काष्ठ का संग्रह और शय्या आदि बनवाना त्याग करे ॥ १४ ॥

अथ परिहार —

वस्वादौ शतभे मध्ये पूर्वादौ चोत्तरान्तके ।

पञ्च पञ्च घटीः प्राज्ञो रेवतीं सकलां त्यजेत् ॥१५॥

धनिष्ठा के आदि को, शतभिषा के मध्य को, पूर्वभाद्रपद के आदि को, उत्तरभाद्रपद के अन्त की पाँच-पाँच घटी त्याज्य हैं और रेवती सम्पूर्ण त्याज्य है ॥ १५ ॥

अथ वारनक्षत्रभव अमृतयोग —

हस्तः सूर्ये मृगश्चन्द्रे रेवती कुजवासरे ।

अनुराधा बुधे पुष्यो गुरुवारे तथैव च ॥१६॥

अश्विनी भृगुवारे च रोहिणी शनिवासरे ।

योगञ्चामतसंज्ञोऽयं प्राचीनैः परिकीर्तितः ॥१७॥

रविवार में हस्त, सोम में मृगशिरा, मंगल में रेवती, बुध में अनुराधा, गुरुवार में पुष्य, शुक्र में अश्विनी, शनि में रोहिणी ये अमृतयोग हैं ॥१६-१७॥

अथ शुभयोग

मूलं रवौ पुष्यकरोत्तराणि वेधा मृगाङ्कः श्रवणश्च सोमे ।

कृशानुपुष्योत्तरभानि भौमे बुधेऽनुराधा वरुणः कृशानुः ॥१८॥

बृहस्पतौ पुष्यपुनर्वसु च भगोऽश्विनी च श्रवणश्च शुक्रे ।

शनैश्चरे स्वातिपितामहौ च योगाः क्लिप्तैश्च शुभदायिनः स्युः ॥१९॥

रवि में मूल, पुष्य, तीनों उत्तरा, सोम में रोहिणी, मृगशिरा और श्रवण, तथा मंगल में कृत्तिका पुष्य तीनों उत्तरा, बुध में अनुराधा शतभिषा कृत्तिका, बृहस्पति में पुष्य पुनर्वसु, शुक्र में पूर्वाफाल्गुनी अश्विनी श्रवण, शनैश्चर में स्वाती रोहिणी ये शुभ योग हैं ॥ १८-१९ ॥

अथ सर्वार्थसिद्धियोग —

सूर्येऽकमूलोत्तरपुष्यदास्रं चन्द्रे श्रुतिब्राह्मशशीज्यमैत्रम् ।

भौमेऽश्व्यहिर्बुध्न्यकृशानुसार्पं ज्ञे ब्रह्ममैत्रार्ककृशानुचान्द्रम् ॥२०॥

जीवेऽन्त्यमैत्राश्व्यदितीज्यधिष्ण्यं शुक्रेऽन्त्यमैत्राश्व्यदितिश्रवोभम् ।

शनौ श्रुतिब्राह्मसमीरभानि सर्वार्थसिद्धयै कथितानि पूर्वैः ॥२१॥

रविवार में हस्त मूल तीनों उत्तरा पुष्य अश्विनी, सोम में श्रवण, रोहिणी, मृगशिरा और अनुराधा, मंगलवार में अश्विनी उत्तराभाद्र कृत्तिका आश्लेषा, बुधवार में रोहिणी अनुराधा कृत्तिका हस्त मृगशिरा, बृहस्पति में अनुराधा अश्विनी पुनर्वसु पुष्य, शुक्र में रेवती अनुराधा अश्विनी पुनर्वसु, श्रवण, शनि में रोहिणी स्वाती श्रवण ये प्राचीनाचार्यों ने सर्वार्थसिद्धियोग कहे हैं ॥२०-२१॥

अथ भवारोत्थ मृत्युयोग —

त्याज्यं रविमनुराधे वैश्वदेवे च सोमं शतभिषजिचभौमं चंद्रजं चापि दस्रं

मृगशिरसि सुरेज्यं सर्पदेवे च शुक्रं रविसुतमपिहस्तेमृत्युयोगाभिधानम्

रविवार में अनुराधा, सोम में उत्तराषाढ, मंगल में शतभिषा, बुध में अश्विनी, बृहस्पति में मृगशिरा, शुक्र में आश्लेषा, शनि में हस्त ये मृत्युयोग हैं । इसलिये इनका त्याग करना चाहिये ॥ २२ ॥

अथ यमघंटयोग —

स्वाती मघा रवौ चन्द्रे पुष्यः श्लेषा तथैव च ।

मंगले भरणी मैत्रं बुधे चार्द्रा तथायमा ॥२३॥

गुरौ च रेवती मूलं शुक्रे स्वाती च रोहिणी ।

यमघण्टो बुधैः प्रोक्तः शतभं श्रवणः शनौ ॥२४॥

रवि में स्वाती, मघा, सोम में पुष्य, श्लेषा, मंगल में भरणी, अनुराधा, बुध में आर्द्रा, उत्तराफाल्गुनी, बृहस्पति में रेवती, मूल, शुक्र में स्वाती, रोहिणी, शनि में शतभिषा, श्रवण ये यमघण्ट हैं ॥ २३-२४ ॥

अथ अशुभयोग परिहार—

यमघण्टे त्यजेदष्टौ मृत्यौ द्वादशनाडिकाः ।

अन्येषु पापयोगेषु मध्याह्नात्परतः शुभम् ॥२५॥

यमघण्ट में आरम्भ को ८ घड़ी, मृत्युयोग में १२ घड़ी त्याग करे और दूसरे पापयोगों में मध्याह्न से पश्चात् शुभ होता है ॥ २५ ॥

आनन्दादि अष्टविंशतियोग जानने का प्रकार —

दासादर्के मृगादिन्दौ सर्पाङ्गौमैः कराद्बुधे ।

मैत्राद् गुरौ भृगौ वैश्वाद् गण्या मन्दे च वारुणात् ॥२६॥

रविवार में अश्विनी आदिक अभाजित सहित २८ नक्षत्र आनन्द आदि २८ योग होते हैं, सोमवार में मृगशिरा से, मंगल में आश्लेषा से, बुध में हस्त से, गुरुवार में अनुराधा से, शुक्रवार में उत्तराषाढा से, और शनिवार में शतभिषा से गणना करनी चाहिये ॥ २६ ॥

अथ आनन्दादि योगों के नाम—

आनन्दाख्यः कालदण्डश्च धूम्रो धाता सौम्यो ध्वांक्षकेतू क्रमेण ।

श्रीवत्साख्यो वज्रकं मुद्गरश्च छत्रं मित्रं मानसं पद्मलुम्बौ ॥२७॥

उत्पातमृत्यु किल काणसिद्धिः शुभोऽमृताख्यो मुसलं गदश्च ।

मातङ्गरक्षश्चरसुस्थिराख्यप्रवर्धमानाः फलदाः स्वनाम्ना ॥२८॥

आनन्द, कालदण्ड, धूम्र, धाता, सौम्य, ध्वांक्ष, केतु, श्रीवत्स, वज्र, मुद्गर, छत्र, मित्र, मानस, पद्म, लुम्ब, उत्पात, मृत्यु, काण, सिद्धि, शुभ, अमृत, मुसल, गद, मातङ्ग, रक्ष, चर, सुस्थिर, प्रवर्धमान ये २८ योग अपने नाम के तुल्य फल देनेवाले हैं ॥ २७-२८ ॥

आनन्दादि योगों का फल—

सिद्धिमृत्युभेयं सौख्यं शुभं चारिष्टमेव च ।

सिद्धिः शुभं कलिर्घातो मनोवाञ्छितजं फलम् ॥२९॥

सौख्यं धनं शुभं कर्महानिर्विघ्नं मृतिस्तथा ।

धनक्षतिर्धनप्राप्तिः सर्वसौख्यं तथैव च ॥३०॥

शुभं मानक्षयो रोगो वाहनं चाशुभं तथा ।

चालनं तोषणं वृद्धिरानन्दादिफलं क्रमात् ॥३१॥

ये क्रम से नन्दादि योगों के फल हैं ॥ २९-३१ ॥

जैसे—सोमवार में पुष्य नक्षत्र है तो आनन्दादि योगों में कौनसा योग होगा? तो यहाँ 'मृगादिन्दी' इस उपरोक्त नियम के अनुसार मृगशिरा से पुष्य तक गिनने से चार हुआ तो आनन्दादि से चौथा धाता नामक योग हुआ । इसका फल सौख्य है, इसलिये सोमवार का पुष्य नक्षत्र शुभ हुआ । इसी प्रकार सब वारों में समझना ॥२९-३१॥

इति नक्षत्र प्रकरण ।

— : ० : —

योग जानने का उदाहरण—

अथ योगप्रकरण

योग जानने की रीति—

यस्मिन्नक्षे स्थितो भानुर्यत्र तिष्ठति चन्द्रमाः ।

एकीकृत्य त्यजेदेकं योगा विष्कम्भकादयः ॥१॥

जिस नक्षत्र में सूर्य हो और जिस नक्षत्र में चन्द्रमा हो दोनों की संख्या के जोड़ने में एक घटाकर विष्कम्भादिक योग होते हैं, संख्या यदि २७ से अधिक हो तो २७ घटाकर शेष विष्कम्भादि योग समझना ॥ १ ॥

विष्कम्भ योगों के नाम—

विष्कम्भः प्रीतिरायुष्मान्सौभाग्यः शोभनस्तथा ।

अतिगण्डः सुकर्माख्यो धृतिः शूलस्तथैव च ॥२॥

गण्डो वृद्धिर्ध्रुवश्चैव व्याघातो हर्षणस्तथा ।

वज्रः सिद्धिर्व्यतीपातो वरीयान्परिघः शिवः ॥३॥

सिद्धः साध्यः शुभः शुक्लो ब्रह्मैन्द्रो वैधृतिस्तथा ।

सप्तविंशतियोगास्ते स्वनामफलदाः स्मृताः ॥४॥

विष्कम्भ, प्रीति, आयुष्मान्, सौभाग्य, शोभन अतिगण्ड, सुकर्मा, धृति, शूल, गण्ड, वृद्धि, ध्रुव, व्याघात, हर्षण, वज्र, सिद्धि, व्यतीपात, वरीयान्, परिघ, शिव, सिद्ध, साध्य, शुभ, शुक्ल, ब्रह्म, ऐन्द्र, वैधृति ये २७ योग अपने-अपने नाम के सदृश फलदायक हैं ॥ २-४ ॥

अशुभ योग परिहार -

विरुद्धयोगेषु सदाद्यपादः शुभेषु कार्येषु विवर्जनीयः ।

सवैधृतिस्तु व्यतिपातयोगः सर्वोऽप्यनिष्टः परिघस्य चाधम् ॥५॥

तिस्रस्तु विष्कम्भकवज्रयोश्च व्याघातसंज्ञे नव पञ्च शूले ।

गण्डातिगण्डे च षडेव नाड्यः शुभेषु कार्येषु विवर्जनीयाः ॥६॥

शुभकार्य में अशुभ योग का प्रथम चरण त्याग करना चाहिये, वैधृति और व्यतीपात समस्त वर्जनीय है। परिघ योग का पूर्वार्ध, तथा विष्कम्भ और वज्रयोग के आदि की तीन-तीन घड़ी; व्याघात में ९ घड़ी, शूल में ५ घड़ी, गण्ड अतिगण्ड में ६ घड़ी त्याग करना चाहिये ॥ ५-६ ॥

इति योग प्रकरण ।

— : ० : —

अथ करणप्रकरण

चलकरणानयन—

गततिथ्यो द्विनिध्न्यश्च सप्तभक्ताश्च शेषकम् ।

ववाद्यं करणं पूर्वे भागे सैकं तथोत्तरे ॥१॥

शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से गिनकर गत तिथि को २ गुना करके सात का भाग देने से जो शेष बचे वे ववादिक करण वर्तमान तिथि के पूर्वार्ध में होते हैं और १ जोड़ने से उत्तरार्ध में करण होता है ॥ १ ॥

अथ करण नाम—

ववाह्वयं बालवकौलवाख्ये ततो भवेत्तैतिलनामधेयम् ।

गराभिधानं वणिजं च विष्टिरित्याहुरार्याः करणानि सप्त ॥२॥

वव, बालव, कौलव, तैतिल, गर, वणिज और विष्टि ये सात चल करण हैं ॥ २ ॥

अथ स्थिर करण -

स्थिराणि शकुनिनागि तृतीयं तु चतुष्पदम् ।

किंस्तुघ्नं तु चतुर्दश्याः कृष्णायाश्चापराधतः ॥३॥

कृष्णपक्ष की चतुर्दशी के उत्तरार्ध में शकुनि, अमावस्या के पूर्वार्ध में नाग, उत्तरार्ध में चतुष्पद और शुक्लपक्ष की प्रतिपदा के पूर्वार्ध में किंस्तुघ्न नामक करण होता है, ये चार स्थिर करण हैं ॥ ३ ॥

बवादीनि ततः सप्त चराख्यकरणानि च ।
तिथ्यर्धभोगं सर्वेषां करणानां प्रकल्पयेत् ॥४॥

शुक्लपक्ष की प्रतिपदा के उत्तरार्ध से कृष्णपक्ष की चतुर्दशी के पूर्वार्ध पर्यन्त बवादिक सातों चल करण महीने में आठ आवृत्ति करके भोग करते हैं । और तिथि के आधे सब करणों का मान है ॥ ४ ॥

स्पष्टार्थ के लिये नीचे चक्र देखिये—

कृष्णपक्ष तिथि करण ज्ञान चक्र—

कृष्णपक्ष तिथि	१	२	३	४	५	६	७	
पूर्वार्ध—	बाल	तैति	वणि	बव	कौल	गर	विष्टि	
उत्तरार्ध—	कौल	गर	विष्टि	बाल	तैति	वणि	बव	
कृष्णपक्ष तिथि—	८	९	१०	११	१२	१३	१४	३०
पूर्वार्ध—	बाल	तैति	वणि	बव	कौल	गर	विष्टि	चतु
उत्तरार्ध—	कौल	गर	विष्टि	बाल	तैति	वणि	शकु	नाग

शुक्लपक्ष तिथि करण —

शुक्लपक्ष तिथि—	१	२	३	४	५	६	७	८
पूर्वार्ध—	फितु	बाल	तैति	वणि	बव	फौल	गर	विष्टि
उत्तरार्ध—	बव	कौल	गर	विष्टि	बाल	तैति	वणि	बव
शुक्लपक्ष तिथि—	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	
पूर्वार्ध—	बाल	तैति	वणि	बव	कौल	गर	विष्टि	
उत्तरार्ध—	कौल	गर	विष्टि	बाल	तैति	वणि	बव	

इन करणों में विष्टि (भद्रा) सर्वथा त्याज्य है, जैसे—बृहस्पति का वचन—

विष्टिस्तु सर्वथा त्याज्या क्रमेणैवागता तु या ।
अक्रमेणागता भद्रा सर्वकार्येषु शोभना ॥५॥

क्रम से आई हुई भद्रा (अर्थात् पूर्वार्ध की भद्रा दिन में और परार्ध की भद्रा रात्रि में) सब शुभ कार्यों में त्याज्य है तथा अत्रम से आई हुई (अर्थात् पूर्वार्ध की भद्रा रात्रि में और उत्तरार्ध की भद्रा दिन में) सब कार्यों में शुभ होती है ॥५॥

भद्राज्ञान—

शुक्ले पूर्वार्धेऽष्टमीपञ्चदशोर्भद्रैकादश्यां चतुर्थ्या परार्द्धे ।
कृष्णेऽन्त्यार्धे स्यात्तृतीयादशम्योः पूर्वभागे सप्तमीशम्भुतिथ्योः ॥६॥

शुक्लपक्ष की अष्टमी और पूर्णिमा के पूर्वार्ध में और एकादशी चतुर्थी के उत्तरार्ध में भद्रा रहती है। तथा कृष्णपक्ष की तृतीया दशमी के उत्तरार्ध में और सप्तमी चतुर्दशी के पूर्वार्ध में भद्रा रहती है ॥६॥

विष्टिपुच्छ प्रशंसा—

पृथिव्यां यानि कर्माणि शुभान्यप्यशुभानि वा ।
तानि सर्वाणि सिद्ध्यन्ति विष्टिपुच्छे न संशयः ॥७॥

पृथिवीस्थित मानव समाज के जितने कार्य (शुभ या अशुभ) हैं वे सब विष्टि (भद्रा) के पुच्छ समय में करने से सिद्ध होते हैं ॥७॥

भद्रा के मुख और पुच्छ समय का ज्ञान—

पञ्चद्व्यद्रिकृताष्टरामारसभूयामादिघट्ट्यः शराः ।

विष्टेरास्यमसद्गजेन्दुरसारामाद्रचश्विवाणाब्धिषु ॥८॥

यामेष्वन्त्यघटीत्रयं शुभकरं पुच्छं तथा वासरे ।

विष्टिस्तिथ्यपरार्धजा शुभकरी रात्रौ च पूर्वार्धजा ॥९॥

शुक्लपक्ष की ४, ८, ११ और पूर्णिमा १५ इन चार तिथियों में और कृष्ण-पक्ष की ३, ७, १० और चतुर्दशी इन चार तिथियों में एवं मास में आठ तिथियों में जो भद्रा कही गई है—उनमें क्रम से ५, २, ७, ४, ८, ६, १ इन प्रहरों के आरम्भ की ५ घटी मात्र भद्रा का मुख होता है, जो सब शुभ कार्यों में अशुभप्रद हैं तथा उन्हीं आठ तिथियों में क्रम से ८, १, ६, ३, ७, २, ५,

४ प्रहरों के अन्तिम ३ घटी विष्टि की पुच्छ होती है, जो सब कार्यों में शुभप्रद कही गयी है। इस तिथि के उत्तरार्ध की भद्रा दिन में और पूर्वार्ध की भद्रा रात्रि में हो तो सब कार्यों में शुभप्रद कही गई है ॥८-९॥

स्पष्ट ज्ञानार्थ चक्र—

	शुक्ल				कृष्ण				
तिथि	४	८	११	१५	३	७	१०	१४	
प्रहर	५	२	७	४	८	३	६	१	
आदि मुख घटी	५	५	५	५	५	५	५	५	मुख घटी अशुभ
प्रहर	८	१	६	३	७	२	५	४	
घटी	३	३	३	३	३	३	३	३	अन्त पुच्छ घटी शुभ

भद्रा में अवश्य वर्जनीय—

“भद्रायां द्वे न कर्तव्ये, श्रावणी फाल्गुनी तथा ।

श्रावणी नृपतिं हन्ति ग्रामं दहति फाल्गुनी ॥१०॥”

भद्रा में श्रावणी (रक्षाबन्धन आदि) और फाल्गुनी (होलिकादाहादि) न करे। क्योंकि भद्रा में श्रावणी करने से राजाओं का नाश और फाल्गुनी करने से ग्राम में अग्निभय होता है ॥१०॥

परिहार—

“कुम्भकर्कद्वये मर्त्ये स्वर्गेऽब्जेऽजात् त्रयेऽसिगे ।

स्त्रीधनुर्जकनक्रेऽथो भद्रा तत्रैव तत्फलम् ॥११॥

कुम्भ, मीन, कर्क, सिंह इन राशियों के चन्द्रमा में मृत्युलोक में और मेष, वृष, मिथुन और वृश्चिक के चन्द्रमा में स्वर्ग में तथा कन्या, धन, तुला और मकर के चन्द्रमा में पाताल में भद्रा रहती है। जहाँ रहती है वहाँ ही फल देती है ॥११॥

इति करण प्रकरण ।

❀ वार प्रकरण ❀

वारों के नाम —

वाराः सप्त रविः सोमो मंगलश्च बुधस्तथा ।

बृहस्पतिश्च शुक्रश्च शनिश्चैव यथाक्रमम् ॥१॥

सावन सात दिन है—जैसे रवि, सोम, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि ये यथाक्रम से होते हैं ॥१॥

रविवार में कृत्य —

राज्याभिषेकोत्सवयान-सेवा-गोवह्निमन्त्रौषधिशस्त्रकर्म ।

सुवर्णताम्रौर्णिकचर्मकाष्ठसंग्रामपण्यादि रवौ विदध्यात् ॥२॥

राज्याभिषेक, उत्सव, यात्रा, नौकरी, गोक्रय-विक्रय, अग्नि सम्बन्धी कार्य, मन्त्र, औषध-निर्माण, औषध-भक्षण, शस्त्र सम्बन्धी कार्य, सोना, ताँबा, ऊन, काष्ठ सम्बन्धी कार्य, युद्ध और व्यापार सम्बन्धी सब कार्य रविवार में करना चाहिये ॥२॥

सोमवार में कृत्य—

शंखाब्जमुक्तारजतेक्षुभोज्य-स्त्रीवृक्ष-कृष्यम्बु-विभूषणानि ।

गीतक्रतुक्षीरविकारशृङ्गी पुष्पाक्षरारम्भणमिन्दुवारे ॥३॥

शंख आदि जलोत्पन्न वस्तु, मुक्ता, चाँदी, ऊख रस से उत्पन्न गुड़, चीनी आदि भोज्यपदार्थ, स्त्री, वृक्षारोपणादि, कृषि, जल सम्बन्धी, आभूषण, गीत-नृत्य, यज्ञ, दूध-दही, घृत-सम्बन्धी, पशु-सम्बन्धी, फूल तथा अक्षरारम्भ ये कार्य सोमवार में करना चाहिए ॥३॥

भौमवार में कृत्य—

भेदानृतस्तेय-विषाग्निशस्त्र-बन्धानि-घाताहवशाढ्यदम्भान् ।

सेनानिवेशाकरधातुमेह-प्रवालकार्यादि कुजेऽह्नि कुर्यात् ॥४॥

चुगुलखोरी, असत्य, चोरी, विष सम्बन्धी, अग्नि सम्बन्धी, शस्त्र-बन्धन, घात, संग्राम, शठता, दंभ-पाखण्ड, सेना-सम्बन्धी, खान, धातु, सोना तथा मूंगा आदि सम्बन्धी कार्य मंगलवार में करना चाहिए ॥४॥

बुधवार में कृत्य—

नैपुण्य-पण्याऽध्ययनं कलाश्च शिल्पादि सेवाल्लिलेखनानि ।

धातुक्रिया काञ्चनयुक्तिसन्धि-व्यायामवादाश्च बुधे विधेयाः ॥५॥

ट्रेनिङ्ग, व्यापार, अध्ययन, कला, शिल्प, खेल, चित्रकारी, धातु सम्बन्धी, सोना, काँसा, सन्धि, व्यायाम और विवाहादि कार्य बुधवार में करना चाहिये ॥५॥

गुस्वार में कृत्य—

धर्मक्रिया पौष्टिककर्म यज्ञ-माङ्गल्यहेमाम्बरवेशमयात्राः ।
रथाश्वभैषज्यविभूषणाद्यं कार्यं विदध्यात् सुरमन्त्रिणोऽहि ॥६॥

धर्मानुष्ठानादि कार्य, पौष्टिक, यज्ञ, विद्या, मांगल्य, सोना सम्बन्धी, गृह-कर्म, वस्त्र, यात्रा, रथ आदि सवारी, घोड़ा-सम्बन्धी, औषध, आभूषण आदि का कार्य गुस्वार में करना चाहिये ॥६॥

शुक्रवार में कृत्य—

स्त्रीगीतशय्यामणिरत्नगन्धं वस्त्रोत्सवालंकरणादि कर्म ।
भूषण्यगोकोश-कृषिक्रियाश्च सिद्धयन्ति शुक्रस्य दिने समस्तम् ॥७॥

स्त्री सम्बन्धी, शय्या, मणि, रत्न, सुगन्ध, वस्त्र, उत्सव, आभूषण, भूमि, व्यापार, गोसम्बन्धी, कृषिकर्म आदि कार्य शुक्रवार में करने से सिद्ध होते हैं ॥७॥

शनिवार के कृत्य—

लोहारमसीसत्रपुरस्त्रदास्य-पापानृतस्तेयविपासवाद्यम् ।
गृहप्रवेशो द्विपवन्ध-दीक्षा-स्थिरं च कर्मार्कसुतेऽहि कुर्यात् ॥८॥

लोहा, पत्थर, सीसा, राँगा-सम्बन्धी, अस्त्र-शस्त्र, नौकरी, पापकर्म, चोरी, मिथ्या, विषसम्बन्धी आसव, गृहप्रवेश, हाथी को बझाना, दीक्षा (मंत्र-ग्रहण) आदि स्थिर कर्म शनिवार में करना चाहिये ॥८॥

रवि आदि की स्थिरादि संज्ञा—

रविः स्थिरः शीतकरश्चरश्च महीज उग्रः शशिश्च मिश्रः ।
लघुः सुरेज्यो भृगुजो मृदुश्च शनिश्च तीक्ष्णः कथितो मुनीन्द्रैः ॥९॥

रवि स्थिर, चन्द्र (सोम), चर, मङ्गल उग्र, बुध मिश्र, गुरु लघु, शुक्र मृदु और शनि तीक्ष्ण है ॥९॥

विशेष — ग्रहों के नामानुसार कार्य ग्रहों के वार में करने से सिद्ध होता है ॥९॥

शुभ और अशुभ वार—

सोमशुक्रगुरुसौम्यवासराः सर्वकर्मसु भवन्ति सिद्धिदाः ।

भानु-भौम-शनिवासरेषु तु प्रोक्तमेव खलु कर्म सिद्ध्यति ॥१०॥

सोम, शुक्र, गुरु और बुध ये वार सभी कार्यों में सिद्धिप्रद होते हैं । रवि, मंगल और शनि ये वार उपरोक्त कार्य में ही प्रशस्त हैं । सब कार्यों में विशेष कर विवाहादि शुभकार्यों में नहीं ॥१०॥

विशिष्ट वारादि कथन—

वारे प्रोक्तं कालहोरासु तस्य धिष्ण्ये प्रोक्तं स्वामितिथ्यंशकेऽस्य ।

कुर्याद्विशूलादि चिन्त्यं क्षणेषु नैवोल्लंघ्यः परिघश्चापि दण्डः ॥११॥

इससे पूर्व और आगे—वार में जो कार्यविधि या निषेध कहा गया है उस कार्य को उसकी (होरा-क्षण) वार में करना चाहिए । तथा जिस नक्षत्र में जो कर्म विधि अथवा निषेध कहा गया है वह उसके स्वामी के मुहूर्त में करना चाहिए । दिक्शूल आदि का विचार क्षणवारादि में करना एवं आगे कहे हुए परिघ दण्ड का उल्लंघन क्षण-नक्षत्र (मुहूर्त) में नहीं करना चाहिए ॥११॥

तिथ्यां प्रोक्तं कर्म तिथ्यंशकेषु योगे वा योगांशकेष्वेवमेव ।

स्थूलात् प्राबल्यं सदा सूक्ष्मकस्य प्रोक्तं तस्मात् सूक्ष्ममेव प्रधानम् ॥१२॥

इसी प्रकार तिथियों में जो कार्य कहे हैं वे उस तिथि के तिथ्यंश में ही समझना और करना एवं योगों में कहे हुए कार्य योग के योगांश (२७वें भाग) में ही करना चाहिये । क्योंकि मुनियों ने स्थूल से सूक्ष्म को ही प्रबल होने के कारण प्रधान माना है ॥१२॥

यथा सूक्ष्म (क्षण) वार—

वारप्रवृत्तघटिका द्विनिघ्नाः कालाख्यहोरापतयः शराप्ताः ।

दिनाधिपाद्या रवि-शुक्र-सौम्य-शशाङ्कसौरैज्यकुजाः क्रमेण ॥१३॥

किस दिन किस समय में किसकी होरा (क्षणवार) है—यह जानना हो तो वारप्रवेशकाल से जितनी गतेष्टघटी हो उसको दूना करके गुणनफल में ५ के

भाग देने से छद्म-दिनपति के क्रम से कालहोरापति (क्षणवारेश) होता है। यहाँ होरेश को गणना में रवि, शुक्र, बुध, सोम, शनि, बृहस्पति, मंगल इस प्रकार क्रम है ॥१३॥

जैसे रविवार में—रवि, शुक्र, बुध इत्यादि। सोमवार में सोम, शनि, गुरु इत्यादि इस प्रकार समझना चाहिये ॥१३॥

इसी विषय को स्पष्ट रूप से कहते हैं—

यस्मिन् वारे क्षणे वार इष्टस्तद्वासराधिपः।
 आद्यः षष्ठो द्वितीयोऽस्मात् तस्मात् षष्ठस्तृतीयमः ॥१४॥
 षष्ठः षष्ठस्तथान्येषां कालहोराधिपाः स्मृताः।
 सार्धनाडीद्वयेनैव दिवारात्रं यथाक्रमात् ॥१५॥

जिस वार में—क्षणवार (होरा) जानना हो उस वार में वार प्रवेश काल से प्रथम होरा (क्षणवार—२॥-२॥ घड़ी प्रमित) उसी वारेश की होती है। दूसरी होरा, उससे छठे की, तृतीय होरा फिर उससे छठे की एवं अहोरात्र में २४ होरा के स्वामियों का ज्ञान करना चाहिये। १ होरा अढ़ाई घड़ी की होती है उसको क्षणवार भी कहते हैं ॥१४-१५॥

इसका प्रयोजन—

यस्य ग्रहस्य वारे यत् कर्म किञ्चित् प्रकीर्तितम्।
 तत् तस्य क्षणवारेषु कर्तव्यं सर्वदा बुधैः ॥१६॥

जिस ग्रह के वार में जो कर्म विहित कहा गया है वह उस ग्रह के क्षणवार में करना चाहिये ॥१६॥

कारण यह है कि—बहुत से कार्य ऐसे हैं जो प्रत्येक दिन में आवश्यक होते हैं। जैसे यात्रा, कृषि आदि। यथा—किसी को रविवार में पश्चिम जाने की आवश्यकता हुई तो रविवार में दिशाशूल कहा गया है। इसलिये उसको रविवार में यात्रा नहीं करने से कार्य की क्षति होगी, इसलिये स्थूल रविवार रहने पर भी शनि या सोम का क्षणवार हो, उसमें स्थूल रविवार रहने पर भी जब शनि या सोमवार होने के कारण पश्चिम जाने में दिशाशूल का दोष नहीं होकर कार्य की सिद्धि होगी। ऐसे ही तिथि-नक्षत्रादि में भी समझना।

१६ आर्द्रा, १७ पूर्वभाद्र, १८ उत्तराभाद्र, १९ रेवती, २० अश्विनी, २१ भरणी, २२ कृत्तिका, २३ रोहिणी, २४ मृगशिरा, २५ पुनर्वसु, २६ पुष्य, २७ श्रवण, २८ हस्त, २९ चित्रा, ३० स्वाती । इस प्रकार सूक्ष्म नक्षत्रों का प्रति दिन ज्ञान करके नक्षत्रों के कर्म करना चाहिये ॥१६॥

क्षण तिथि—

तिथेः पञ्चदशो भागः ब्रह्माच्च प्रतिपादितः ।

क्षणसंज्ञा तिथिः प्रोक्ता शुभाऽशुभफलप्रदाः ॥१७॥

प्रत्येक तिथि में उसी तिथि से प्रारम्भ करके ५ तिथियों के अंतर भोग होने हैं । वे क्षण तिथि (सूक्ष्म तिथियाँ) कहलाती हैं । उनका प्रमाण तिथि भोग घटी के पञ्चदशांश तुल्य होता है ॥१७॥

उदाहरण यथा—प्रतिपदा का पूर्णभोगमान ६० घटी है तो उसका पञ्चदशांश ४ घटी एक-एक क्षणतिथि का मान होगा । इसलिये प्रतिपदा के आरम्भ से ४ घड़ी तक प्रतिपदा, उसके बाद ४ घड़ी द्वितीया, उसके बाद ४ घड़ी तृतीया एवं आगे सब तिथियों के भोगमान समझना । तिथियों में कहे हुए कर्म उसी क्षण तिथियों में करना चाहिये ॥१७॥

क्षण योग—

योगस्य सप्तविंशति सूक्ष्मयोगो भवेदिति ।

एकस्मिन्नपि योगो च सर्वे योगा भवन्ति हि ॥१८॥

एक-एक विष्कंभादि योग में—उसी-उसी योग में प्रारम्भ करके २७ योगों के भोग होते हैं, जो सूक्ष्म योग कहलाते हैं । स्थूल योग के पूर्णमान का २७वाँ भाग एक-एक सूक्ष्म योग का मान होता है ॥१८॥

वार, तिथि, नक्षत्र और योग दो प्रकार के होते हैं । एक स्थूल, दूसरे सूक्ष्म । यदि स्थूल और सूक्ष्म दोनों ही विहित प्राप्त हो तो उस समय में कार्य का आरम्भ अत्युत्तम कहा गया है । यदि आवश्यक हो तो स्थूल वारादि के निषिद्ध होने पर भी विहित सूक्ष्म वारादि में कार्य करना श्रेष्ठ माना गया है ॥१८॥

रविवार में वर्जनीय—

तैलस्त्रीमद्यमांसानि यः करोति रवेदिने ।

सप्तजन्मसु रोगी स दरिद्रश्चैव जायते ॥१९॥

रविवार में जो कोई तैल, स्त्री, मद्य, मांस का सेवन करता है वह सात जन्म तक रोगी और दरिद्र होता है ॥१९॥

इति तिथ्यादि पञ्चांग निरूपण ।

❀ अथ अवकहडा चक्रोद्धार ❀

शतपदचक्रानुसार नक्षत्र चरण—

चू चे चो ला, पदा दास्ते ली लू ले लो, तु याम्यमे ।
 अ ई ऊ ऐ कृत्तिकायां, ओ वा वी वू च धातृमे ॥
 वे वो का की मृगे प्रोक्ताः कू घ ङ छ च रुद्रमे ।
 के को हा ही तथादित्ये, हू हे हो डा तु पुष्यमे ॥
 डो डू डे डो तथा सापें, मा मी मू मे तु पित्र्यमे ।
 मो टा टी टू पदा भाग्ये, टे टो पाप्यर्यमर्क्षके ॥
 पू ष ण ठ तथा हस्ते, पे पो रा रा तु त्वाष्ट्रमे ।
 रू रे रो ता पदा स्वाती ती तू ते तो द्विदैवते ॥
 ना नी नू ने पदा मैत्रे नो या यी यू तथैन्द्रमे ।
 ये यो भा भी पदा मूले, भू धा फा ढा जलर्क्षके ॥
 भे भो जा जी तु वैश्वर्क्षे जू जे जो खाऽभिजित्पदा ।
 खी खू खे खो श्रुतौ ज्ञेया गा गी गू गे तु वासवे ॥
 गो सा सी सू जलेशर्क्षे से सो दाद्यजपाद्भे ।
 दू थ भू जोत्तराभाद्रे दे दो चा ची तथाऽन्त्यमे ॥

चू चे चो ला अश्विनी, ली लू ले लो भरणी, अ ई उ ए कृत्तिका, ओ वा वि वू रोहिणी, वे वो का की मृगशिरा, कू घ ङ छ आर्द्रा, के को हा ही पुनर्वसु, हू हे हो डा पुष्य, डी डू डे डो आश्लेषा, मा मी मू मे मघा, मो टा टी टू पूर्वाफाल्गुनी, टे टो पा पी उत्तराफाल्गुनी, पू ष ण ठ हस्त, पे पो रा री चित्रा, रू रे रो ता स्वाती, ती तू ते तो विशाखा, ना नो नू ने अनुराधा, नो या यी यू ज्येष्ठा, ये यो भा भी मूल, भू धा फा ढा पूर्वाषाढा, भे भो जा जी उत्तराषाढा, जू जे जो खा अभिजित्, खी खू खे खो श्रवण, गा गी गू गे धनिष्ठा, गो सा सी सू शतभिषा, से सां दा दी पूर्वाभाद्रपदा, दू थ झ ज उत्तराभाद्रपदा, दे दो चा ची रेवती । इस प्रकार एक नक्षत्र में चार-चार चरण हैं ।

जिस नक्षत्र के जिम चरण में जन्म हो उस चरण में जो वणं पठित है वही अक्षर नाम के आदि में रखना चाहिये, जैसे—मृगशिरा नक्षत्र के तृतीय चरण में किसी का जन्म हुआ तो मृगशिरा के तृतीय चरण में ककार है

इसलिये ककारादि नाम रखना चाहिये, जैसे—‘कमलकान्त’, ‘कालीदत्त’, ‘कन्तलाल’ इत्यादि। ऐसे सब नक्षत्र में समझना।

कोई-कोई कहते हैं कि—‘आर्द्रा के तृतीय चरण, हस्त के तृतीय चरण और उत्तराभाद्रपदा के चतुर्थ चरण में किसी का जन्म हो तो क्रम से डकार, णकार तथा अकार नाम के आदि अक्षर में पड़ेंगे, परञ्च ऐशा नाम कोई नहीं मिलता है। इसलिये डकार के स्थान में गकार और अकार के स्थान में जकार और णकार के स्थान में डकार ग्रहण करना चाहिये अर्थात् आर्द्रा के तृतीय चरण में जन्म वाले का गकाराद्यक्षर (गजानन, गणपति इत्यादि) नाम रखना चाहिये, किन्तु उन लोगों का ऐसा कहना भ्रम है क्योंकि ऐसा करने से आर्द्रा के तृतीय चरण में जन्म वालों का धनिष्ठा के प्रथम चरण का सन्देह होगा। इसलिये आर्द्रा तृतीय चरण वाले का डकारादि, हस्त तृतीय चरण वाले का णकाराद्यक्षर ही जन्म नाम समझना तथा उत्तराभाद्र चतुर्थ चरण वाले का अकाराद्यक्षर ही जन्म नाम समझना चाहिये, पुकारने के लिये दूसरा नाम रख लेना चाहिये।

उपरोक्त भ्रम का मूल—

नरपतिजयचर्या आदि स्वरग्रंथ में नाम के आद्यन्ताक्षर से वर्ण स्वर, मात्रा स्वर आदि का विचार किया जाता है, वहाँ ‘ड, ज, ण’ इन तीनों वर्णों का ग्रहण नहीं किया गया है, क्योंकि ये पुकार नाम आदि में नहीं देखे जाते हैं इसलिये लिखा है—

न प्रोक्ता ड ज णा वर्णा नामादौ सन्ति तेन हि ।

चेद्भवन्ति तदा ज्ञेया गजडास्ते यथाक्रमम् ॥१॥

वर्ण स्वर में ‘ड ज ण’ ये वर्ण नहीं कहे गये हैं, क्योंकि ये तीनों वर्ण नाम के आदि में नहीं पाये जाते हैं, अगर किसी नाम के आदि में हो तो वहाँ डकार के जगह गकार जकार के स्थान में जकार तथा णकार के स्थान में डकार समझना चाहिये। यह स्वर विचार में कहे हैं।

किन्तु इसका अर्थ जितने अनभिज्ञ उल्टा समझ कर शतपद चक्रानुसार नामकरण में लगाते हैं, वह मानने योग्य नहीं है ॥१॥

नाम के आदि अक्षर से नक्षत्र का ज्ञान —

यन्नामाद्यक्षरं यस्य नक्षत्रस्य पदे भवेत् ।

तदेव तस्य नक्षत्रं विज्ञेयं गणकोत्तमैः ॥२॥

नाम का प्रथम नक्षत्र जिस नक्षत्र के चरण में हो वही उसका नक्षत्र समझना चाहिये ॥२॥

उदाहरण—जैसे 'गजानन' का नक्षत्र कौन है? यहाँ नाम के आदि में 'ग'कार है, जो धनिष्ठा के प्रथम चरण में है, इसलिये 'गजानन' नाम का धनिष्ठा नक्षत्र हुआ ॥२॥

यदि नाम्नि भवेद्वर्णः संयुक्ताक्षरलक्षणः ।
ग्राह्यस्तदादिमो वर्ण इत्युक्तं ब्रह्मयामले ॥३॥

यदि नाम के आदि में संयुक्ताक्षर हो तो उनमें प्रथम वर्ण का ग्रहण करना चाहिये ॥३॥

उदाहरण—जैसे 'श्रीपति' नाम के आदि में संयुक्ताक्षर वर्ण 'श्र' के प्रथम वर्ण 'श'कार है । वह शतभिषा के द्वितीय चरण में है इसलिये श्रीपति का नक्षत्र शतभिषा हुआ ॥३॥

सनुक्त्वाट्टकारस्य रेफो ग्राह्यो विचक्षणैः ।
ऋद्धिनाथस्य नक्षत्रं यथा चित्राख्यमेव हि ॥४॥

शतपद चक्र में ऋकार नहीं कहा गया है इसलिये ऋकार के स्थान में रेफ (र) ग्रहण करना चाहिये ॥४॥

जैसे—'ऋद्धिनाथ' नाम के आदि अक्षर 'ऋ'कार के स्थान में 'र' ग्रहण करने से चित्रा नक्षत्र का तृतीय चरण सिद्ध हुआ ॥४॥

तथा च—

अ आ, इ ई, उ ऊ, ए ऐ, ओ औ, द्वौ द्वौ मिथः समौ ।
ब बौ, श सौ तथैवात्र ज्ञेयो दैवविदा सदा ॥५॥

शतपद चक्र में अकार और आकार, इकार और ईकार, उकार और ऊकार एकार और ऐकार एवं ओकार और औकार परस्पर तुल्य समझे जाते हैं तथा बकार और वकार, शकार और सकार ये दो-दो अक्षर तुल्य समझना चाहिये । जैसे—'अमरनाथ' और 'आदित्य प्रसाद' दोनों का एकही (कृत्तिका) नक्षत्र का प्रथम चरण हुआ । ऐसे ही 'शक्तिनाथ' और 'सन्तलाल' का शतभिषा नक्षत्र का द्वितीय चरण हुआ । ऐसे ही और समझना ॥५॥

अथ राशिपरिभाषा—

कला स्याद्विकलापृष्ठा तत्पृष्ठा चांश उच्यते ।
त्रिंशदंशैर्भवेद्राशिर्भगणो द्वादशैव ते ॥६॥

६० विकला की १ कला, ६० कला का १ अंश ३० अंश की १ राशि और १२ राशियों का १ भगण होता है ॥६॥

राशि नाम—

मेषो वृषोऽथ मिथुनं कर्कः सिंहश्च कन्यका ।

तुला च वृश्चिकश्चैव धनुश्च मकरस्तथा ॥७॥

कुम्भो मीनस्तथा ज्ञेया राशिसंज्ञा यथाक्रमम् ।

मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ, मीन ये क्रम से बारहों राशि के नाम हैं ॥७॥

नक्षत्र से राशि जानने का प्रकार—

एकैकस्मिस्तथा राशौ नक्षत्रचरणा नव ॥८॥

एक-एक राशि में नौ-नौ चरण होते हैं ॥८॥

यथा—

मेषोऽश्विनी च भरणी कृत्तिकैकपदन्तथा ।

कृत्तिकाङ्घ्रित्रयं ब्राह्मं मृगार्धं वृष उच्यते ॥९॥

मिथुनं मृगार्धमार्द्रा च पुनर्वसुपदत्रयम् ।

पुनर्वसुपदैकं तु पुष्यः श्लेषा च कर्कटः ॥१०॥

सिंहो मघा च पूर्वा स्यादुत्तरैकपदं तथा ।

उत्तराङ्घ्रित्रयं हस्तश्चित्रार्धं चैव कन्यका ॥११॥

तुला चित्रादलं स्वाती विशाखा चरणत्रयम् ।

विशाखैकपदं मैत्रं ज्येष्ठा सर्वा च वृश्चिकः ॥१२॥

मूलं पूर्वोत्तराषाढपदमेकं धनुस्तथा ।

उत्तराङ्घ्रित्रयं कर्णो धनिष्ठार्धं मृगस्तथा ॥१३॥

धनिष्ठार्धं शतभिषा पूर्वाषाढत्रयं घटः ।

मीनः पूर्वापदैकं स्यादुत्तरा रेवती तथा ॥१४॥

अश्विनी भरणी पद निःशेष ॥ कृत्तिका एक चरण है मेष ।
 कृत्तिका तीन रोहिणी चार ॥ दो पद मृगशिर वृषभ उचार ॥९॥
 मृगशिर दोपद आर्द्रा चार ॥ तीन पुनर्वसु मिथुन विचार ।
 एक पुनर्वसु पुष्यश्लेष ॥ जानो कर्कट राशि विशेष ॥१०॥
 मघा पूर्व उत्तर पद एक ॥ सिंह राशि का करो विवेक ।
 उत्तर तीन सकल पद हस्त ॥ दो चित्रा कन्या परशस्त ॥११॥

दो चित्रा स्वाती सम तूल ❀ तीन विशाखा पद है तूल ।
 एक विशाखा पद अनुराध ❀ ज्येष्ठा है वृश्चिक निर्वाध ॥१२॥
 मूल पूर्व उत्तर पद एक ❀ धनुष राशि पर करो विवेक ।
 उत्तर तीन श्रवण पद वेद ❀ दोय धनिष्ठा मकर विभेद ॥१३॥
 दोय धनिष्ठा शतभिष चार ❀ पूर्वा तीन कुम्भ निर्धार ।
 पूर्वा एक उत्तरपद चार ❀ सकल रेवती मीन विचार ॥१४॥

उदाहरण—जैसे विचार करना है कि “अनिरुद्ध चौधरी” की कौन राशि है ? तो यहाँ नाम के आदि का अक्षर अकार है तथा अकार कृत्तिका के प्रथम चरण में है, उपरोक्त पद्यानुसार कृत्तिका के प्रथम चरण की मेष राशि है इसलिये “अनिरुद्ध चौधरी” की मेष राशि हुई, इसी प्रकार सर्वत्र समझना, शेष स्पष्ट जानने के लिये नीचे चक्र देखकर समझ लेना ॥१४॥

राशि को पुं-स्त्री आदि संज्ञा—

पुंस्त्री क्रूराक्रूरी चरस्थिर-द्विस्वभावसंज्ञाः स्युः ।

क्षत्रिय-वैश्यक-शूद्र-ब्राह्मवर्णाः क्रमादजायास्तो ॥१५॥

मेधादिक बारहों राशियाँ क्रम से पुरुष, स्त्री अशुभ-शुभ तथा चर, स्थिर द्विस्वभाव और क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, ब्राह्मण वर्ण हैं ॥१५॥

नाम के आदि अक्षर से राशि जानने का चक्र—

	१।	२।	३।	४।	५।	६।	७।	८।	९।	१०।	११।	१२।
अक्षर	चू	इ	क	हि	मा	टो	रा	तां	ये	भो	गु	दी
	चे	उ	कि	हु	मि	प	रि	न	यो	जजी	गे	हू
	चो	ए	कु	हे	सू	पिरू	नि	भ	जूजे	गो	थ	
	ला	ओ	घ	हो	मे	पु	रे	तू	भो	जोखा	सा	झ
	लि	वा	ङ	डा	मो	ष	रो	ने	भु	खि	सि	व
	लू	वि	ल्ल	डि	टा	ण	ता	नो	धा	खु	सू	दे
	ले	वू	के	हू	टि	ठ	ति	या	फा	खे	से	दो
	लो	वे	को	डे	ट्ट	पे	तू	यि	डा	खोग	सो	चा
	अवो	ह	डो	टे	पो	ने	यू	भे	गि	दा	ची	

शुभाशुभ	पुं० स्त्री	चरादिसंज्ञा	स्वामी	राशि
अशुभ	पुरुष	चर	मंगल	मेष
शुभ	स्त्री	स्थिर	शुक्र	वृष
अशुभ	पुरुष	द्विस्वभाव	बुध	मिथुन
शुभ	स्त्री	चर	चन्द्र	कर्क
अशुभ	पुरुष	स्थिर	रवि	सिंह
शुभ	स्त्री	द्विस्वभाव	बुध	कन्या
अशुभ	पुरुष	चर	शुक्र	तुला
शुभ	स्त्री	स्थिर	मंगल	वृश्चिक
अशुभ	पुरुष	द्विस्वभाव	बृहस्पति	धन
शुभ	स्त्री	चर	शनि	मकर
अशुभ	पुरुष	स्थिर	शनि	कुम्भ
शुभ	स्त्री	द्विस्वभाव	बृहस्पति	मीन

विशेष— राशि-विचार में अभिजित की गणना नहीं की जाती है क्योंकि अभिजित का भोग उत्तराषाढ़ और श्रवण के अन्तर्गत है। इसलिये अभिजित के 'जू जे जो' ये तीनों चरण उत्तराषाढ़ा में और चौथा चरण (ख) श्रवण में मानकर मकर राशि मानी है ॥१५॥

अथ राशि स्वामी—

सिंहस्याधिपतिः सूर्यः कर्कस्याधिपतिः शशी ।

मेषवृश्चिकयोर्भौमः कन्यामिथुनयोर्बुधः ॥१६॥

जीवो मीनधनुःस्वामी शुक्रो वृषतुलाधिपः ।

मृगकुम्भपतिः सौरिः कथितो गणकौत्तमैः ॥१७॥

सिंह के स्वामी सूर्य, कर्क के चन्द्रमा, मेष, वृश्चिक के मंगल, मिथुन कन्या के बुध, धनु, मीन के बृहस्पति, वृष, तुला के शुक्र और मकर, कुम्भ के स्वामी शनि हैं ॥१६-१७॥

शंका—यहाँ शंका है कि ग्रहों में सूर्य और चन्द्रमा प्रधान होकर एक-एक राशि के स्वामी और कुजादि पाँचों ग्रह दो-दो राशियों के स्वामी क्यों हुए ?

इसके उत्तर में प्राचीन वचन हैं—

सिंहादिषट्कस्य पतिर्दिनेशः कर्कादिषट्कस्य पतिर्निशेशः ।

ताभ्यां प्रदत्तं च कुजादिकेभ्यः एकैकमस्माद् द्विगृहाधिपास्ते ॥१८॥

सिंह से (आगे की) ६ राशियों के स्वामी सूर्य, कर्क से लेकर (पीछे की) ६ राशियों के स्वामी चन्द्रमा थे। ये दोनों मंगलादिक पाँच ग्रहों को एक-एक राशि दे दिये। इसलिए सूर्य और चन्द्रमा को एक-एक राशि बची और मंगलादिक को दो-दो राशियाँ हुई ॥१८॥

अथ ताराविचार —

जन्मभादिनभं यावत् सङ्ख्यैव नवतथिता ।

तारा तत्राद्यपञ्चाद्वित्रिसंख्या न शुभप्रदाः ॥१९॥

जन्म नक्षत्र से दिन नक्षत्र पर्यन्त गिनकर जो संख्या हो उसमें नौ का भाग देने से जो शेष बचे वही तारा होती है। उसमें १, ३, ५ ७वीं तारायें शुभ नहीं होतीं अर्थात् २, ४, ६, ८, ९वीं तारायें शुभ हैं ॥१९॥

उदाहरण—जैसे बाबू “शिवशंकर” चौधरी को पुनर्वसु नक्षत्र में पश्चिम दिशा की यात्रा करनी है तो—यहाँ नाम के आद्य अक्षर (शि) के अनुसार जन्म नक्षत्र शत-भिषा हुआ, इसलिये शतभिषा से दिन के नक्षत्र (पुनर्वसु) तक गिनने से ११ हुए, इनमें ९ का भाग देने से २ बचा अर्थात् दूसरी तारा हुई, दूसरी शुभ है। इसी प्रकार और समझना ॥१९॥

यथा तारानाम—

जन्माख्यसम्पद्विपदः क्षेमप्रत्यरिसाधकाः ।

वधमैत्रातिमैत्राख्यास्तारा नामसद्वक्त्रफलः ॥२०॥

जन्म, सम्पत्, विपत्, क्षेम, प्रत्यरि, साधक, वध, मैत्र, अतिमैत्र ये तारायें अपने-अपने नाम तुल्य फल देती हैं ॥२०॥

विशेष—

प्रथमे च द्वितीये च पर्यये प्रत्यरिः शुभः ।

जन्मतारा विवाहादौ साङ्गल्ये च शुभा स्मृता ॥२१॥

प्रथम और द्वितीय आवृत्ति की प्रत्यरि ५वीं तारा शुभ है, और जन्म को तारा तीनों आवृत्ति को विवाहादि शुभ कार्य में शुभ है ॥ २१॥

दुष्ट तारा की शान्ति—

प्रत्यरौ लवणं दद्यात् शाकं दद्यात् त्रिजन्मसु ।

गुडं विपत्तितारायां वधे च तिलकाञ्चनम् ॥२२॥

(आवश्यक कार्य में) प्रत्यरि (५) तारा में लवणदान करे । जन्म (१) तारा में शाक विपत् (३) तारा में गुड और वध (७) तारा में तिल और सुवर्ण दान करे, तो शुभ हो जाती है ॥२२॥

चन्द्र विचार—

जन्मराशिं समारभ्य या सङ्ख्या चन्द्रभावधि ।

चन्द्रस्तत्सङ्ख्यको ज्ञेयस्तथा च तत्फलं वदेत् ॥२३॥

जन्मराशि से इष्ट दिन की चन्द्र राशि पर्यन्त गिनने से जो संख्या हो तत्संख्यक चन्द्रमा समझना और तदनुसार फल कहना ॥२३॥

यथा चन्द्रफल—

आद्ये चन्द्रे शुभं ज्ञेयं मनस्तोषं द्वितीयके ।

तृतीये धनसम्पत्तिश्चतुर्थे कलहागमः ॥२४॥

पञ्चमे ज्ञानवृद्धिः स्यात्पष्ठे धान्यधनागमः ।

सप्तमे राजसम्मानमष्टमे प्राणसंशयः ॥२५॥

नवमे धर्मलाभः स्यात् सिद्धिस्तु दशमे भवेत् ।

एकादशे जयो नित्यं द्वादशे सर्वथा क्षतिः ॥२६॥

प्रथम चन्द्र में शुभ, २ में मानस तुष्टि, ३ में धन सम्पत्ति, ४ में कलह (लड़ाई), ५ में ज्ञान की वृद्धि, ६ में धन-धान्य प्राप्ति, ७ में राजा से सम्मान, ८ में प्राणसंग्रह, ९ में धर्मलाभ, १० में सिद्धि, ११ में जय लाभ और १२ वें चन्द्रमा में सर्वथा हानि होती है ॥२४-२६॥

चन्द्रमा जानने का उदाहरण—जैसे बाबू "जगन्नाथ" चौधरी की रोहिणी नक्षत्र वृषराशि के चन्द्रमा में पूर्वदिशा की यात्रा करनी है तो नामाद्यक्षर (ज) के अनुसार जन्म राशि मकर हुई । मकर से इष्ट दिन की वृष राशि पर्यन्त गिनने से ५ वाँ चन्द्रमा सिद्ध हुआ । पाँचवें चन्द्रमा का फल ज्ञान की वृद्धि है । इसलिये शुक्लपक्ष में पाँचवाँ शुभ हुआ । ऐसे ही सर्वत्र जानना ।

विशेष—

कृष्णपक्षे द्वितीयस्तु पञ्चमो नवमोऽशुभः ।

कृष्णे बलवती तारा शुक्लपक्षे बली शशी ॥२७॥

कृष्ण पक्ष में २, ५, ६ वें चन्द्र अशुभ हैं। कृष्ण पक्ष में तारा बलवती होती है, शुक्लपक्ष में चन्द्रमा बली होता है ॥ २७ ॥

राजिवश से पूर्वादि दिशाओं में चन्द्रमा—

मेघे च सिंहे धनुषीन्द्रभागे वृषे सुतायां मकरे च याम्ये ।

कुम्भे तुलायां मिथुने प्रतीच्यां कर्कालिनीनेषु तथोत्तरस्याम् ॥२८॥

मेघ सिंह धनु प्रव चन्द्र * दक्षिण कन्या वृष मकरन्द ।

घट तुल मिथुन पश्चिमाधीन * उत्तर कर्कट वृश्चिक मोन ॥ २८ ॥

चन्द्रमा का वर्ण और फल—

“अलौ मेघसिंहेऽरुणो युद्धकारी सितो गोवणिककर्कटक्षेपु सिद्धिः ।

धनुर्मीनयुग्मेषु पीतः शशीः श्रोघटस्त्रीमृगास्थेषु कृष्णोभयं च ॥२९॥

मेघ, सिंह, वृश्चिक के चन्द्रमा अरुण (लाल) वर्ण और युद्धकारक होते हैं, वृष कर्क तुला के श्वेत वर्ण और सिद्धिदायक होते हैं, मिथुन, धन, मीन में पीत वर्ण और लाभदायक होते हैं, तथा कन्या कुम्भ मकर में कृष्ण वर्ण और भयकारक होते हैं ॥ २९ ॥

सम्मुख आदि चन्द्र का फल—

सम्मुखे चार्थलाभः स्याद् दक्षिणे सुखसम्पद ।

पृष्ठे च शोकमन्तापौ वामे चन्द्रे धनक्षतिः ॥३०॥

सम्मुख चन्द्रमा में धन लाभ दक्षिण (दाहिने) भाग में सुख और सम्पत्ति, पृष्ठ दिशा के चन्द्रमा में शोक, सन्ताप और वाम चन्द्र में धन-क्षति होती है ॥ ३० ॥

अथ घात-चन्द्र-वार-नक्षत्र—

जन्मेन्दुनन्दार्कमघाश्च मेघे वृषे शनिः पञ्चमहस्तपूर्णाः ।

स्वाती च युग्मे नरचन्द्रमद्राः कर्केऽनुराधाबुधयुग्ममद्राः ॥३१॥

सिंहे जया पट्टरविजश्च मूलं पूर्णाशनिर्दिक श्रवणः ख्रियां च ।

गुरुत्रिरिकाः शतभं तुलायां नन्दालिके रेवतिसप्तशुक्राः ॥३२॥

षापे चतुः शुक्रजयामरणो मृगेऽष्टमो रोहिणिर्भौमरिकाः ।

कुम्भेजयाद्रा गुरुशम्भुवातो ऋषे भृगुश्चान्त्यभुजङ्गपूर्णा ॥३३॥

प्रथम चन्द्र, नन्दातिथि, रविवार, मघा नक्षत्र ये मेघराशि के घातक हैं। इसी प्रकार वृषराश्यादि के घात चन्द्र आदि समझना। सप्तार्थ नीचे चक्र देखिये ॥ ३१-३३ ॥

घात चन्द्रादि चक्र-

पे.	वृ.	मिथुन	कर्क	सि	क.	तु.	वृ	ध.	म.	कुम्भ	मीन	राशि
१	५	९	२	६	१०	३	७	४	८	११	१२	घातचन्द्र
र.	श.	चं.	वृध	श.	श.	वृ.	शु.	शु.	मं	गुरुवार	शु.	घातवार
म	ह	स्वा.	अनु	मू	श्र.	श.	रे.	म.	रो.	आर्द्रा	श्ले.	घात नक्षत्र
१	५	२	२	३	५	४	१	३	४	३	५	घात
६	१०	७	७	८	१०	९	६	८	९	८	१०	तिथि
११	१५	२१	१२	१३	१५	१४	११	१३	१४	१३	१५	

महीनागशौलाङ्कवेदाग्नितर्काकराशाशिवा पाण्डवाश्चित्रभानुः ।
 क्रुङ्गीनृदृशां घातचन्द्रस्त्वजादेर्नृ-नार्योः समं घाततिथ्यादिकं च ॥३४॥

मेष आदि राशिवाली स्त्री के कर्म से १, ८, ७, ६, ४, ३, ६, २, १०, ११, ५, १२ ये घात चन्द्र होते हैं ॥ ३४ ॥

विशेष-

तीर्थयात्राविवाहान्नप्राशनोपनयादिषु ।
 सर्वमाङ्गल्यकार्येषु घातचन्द्रं न चिन्तयेत् ॥३५॥

तीर्थयात्रा, विवाह, अन्नप्राशन, उपनयन आदि सर्व मंगलकार्यों में घात चन्द्र का दोष नहीं होता है ॥ ३५ ॥

युद्धे चैव विवादे च कुमारीपूजने तथा ।
 राजसेवा प्रयाणादौ घातचन्द्रं विवर्जयेत् ॥३६॥

युद्ध में, विवाद में, कुमारी पूजन में, राजसेवा में तथा यात्रादि में घात चन्द्र वर्जित है ॥ ३६ ॥

अथ दुष्टचन्द्रादि शांति-

चन्द्रे शंखं च तारासु लवणं तण्डुलांस्तथौ ।
 धान्यं दुष्टर्क्षवारे च दद्यात्लग्ने तिलांस्तथा ॥३७॥

दुष्टचंद्र में शंख, *दुष्टतारा में लवण, × अशुभ तिथि में चावल, तथा अशुभ नक्षत्र और वार में धान्य, अनिष्ट लग्नादि में तिल दान करके आवश्यक कार्य करे ॥ ३७ ॥

अथ दिशा विचार—

यत्रोदेत्यस्ततां गच्छेदकस्ते पूर्वपश्चिमे ।

ध्रुवो यत्रोत्तरादिक सा तद्विरुद्धा च दक्षिणा ॥३८॥

जिघर सूर्यका उदय होता है वह पूर्वदिशा है । जिघर अस्त होता है वह पश्चिम दिशा है तथा जिघर ध्रुवतारा है वह उत्तर दिशा है और उससे विरुद्ध भाग में दक्षिण दिशा है ॥ ३८ ॥

स्पष्टदिक साधन—

सायनाकजसंक्रान्तौ काले सूर्योदये नरैः ।

मास्कराभिमुखैर्ज्ञेया दिशोऽथ विदिशः स्फुटाः ॥३९॥

सायन मेष संक्रान्ति में सूर्योदय काल में सूर्याभिमुख होकर स्पष्ट दिशा और विदिशाओं का ज्ञान करे ॥ ३९ ॥

यथा—(जैसे)

सम्मुखे पूर्वदिग् ज्ञेया पश्चाज्ज्ञेया च पश्चिमा ।

उत्तरा वामभागे या दक्षिणे सा च दक्षिणा ॥४०॥

सम्मुख जो दिशा हो पूर्वा, पीछे जो दिशा पड़े वह पश्चिमा, बायें भाग में जो दिशा पड़े वह उत्तर दिशा और दाहिने भाग में दक्षिण दिशा होती है ॥ ४० ॥

विदिशा विचार—

अग्निऋणस्तथाग्नेयी पूर्वदक्षिणमध्यगा ।

नैऋतो निऋतेः कोणो दक्षिणापरमध्यगा ॥४१॥

पश्चिमोत्तरमध्यस्था वायवी वायुकोणकः ।

ईशानऋण ऐशानी विदिक पूर्वोत्तरान्तरे ॥४२॥

* “शंखाभावे महत्स्वच्छं तण्डुलं वा नवं दधि ।”

× दुष्ट तारा की शान्ति पृथक्-पृथक् पहले कही गयी है, उन वस्तुओं के अभाव में लवण मात्र भी दान करना चाहिए ।

पूर्व दिशा के बीच में अग्निकोण (आग्नेयी) कहलाती है तथा दक्षिण-पश्चिम के मध्य में नैऋतिकोण (नैऋती), पश्चिम-उत्तर के मध्य में वायुकोण (वायवी), और उत्तर-पूर्व के बीच में ईशान कोण (ऐशानी) विदिक कहलाती है ॥ ४१-४२ ॥

इस प्रकार—पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, आग्नेय, नैऋत्य, वायव्य, ऐशानी, ऊर्ध्व (ऊपर), और अधः (नीचे) ये दश दिशाएँ हैं ॥ ४१-४२ ॥

निर्णय—

आग्नेयी पूर्वदिग्ज्ञेया दक्षिणादिक् च नैऋती ।

वायवी पश्चिमादिक् स्यादैशानी च तथोचरा ॥४३॥

अग्निकोण को गणना पूर्वदिशा में, वायुकोण की उत्तर दिशा में, नैऋत्यकोण की दक्षिण दिशा में, ईशानकोण की उत्तर दिशा में गणना होती है ॥ ४३ ॥

अथ दिशाशूल—

नैव पूर्वदिशं गच्छेज्ज्येष्ठायां शनिसोमयोः ।

तथैव दक्षिणामाशां नैवाजपदमे गुरौ ॥४४॥

पश्चिमाशां व्रजेन्नैव रोहिण्यां रविशुक्रयोः ।

कुजे बुधेऽर्यमर्शे च नो व्रजेदुत्तरां दिशम् ॥४५॥

ज्येष्ठा नक्षत्र, शनि और सोमवार में पूर्व दिशा न जाय, पूर्वमाद्रपदा और गुरुवार में दक्षिण दिशा न जाय, रोहिणी और रवि शुक्रवार में पश्चिम न जाय, उत्तराफाल्गुनी और मंगल बुधवार में उत्तर दिशा न जाय ॥ ४४-४५ ॥

दिक्शूलपरिहार—

रविवारे घृतं भुक्त्वा सोमवारे पयस्तथा ।

गुडं मंगलवारे तु बुधवारे तिलानपि ॥४६॥

बृहस्पतौ दधि प्राश्य शुक्रवारे यवांस्तथा ।

माषान् भुक्त्वा शनौ गच्छेत् शूलदोषोपशान्तये ॥४७॥

रविवार में घृत, सोम में दूध, मंगल में गुड़, बुध में तिल, बृहस्पति में दही, शुक्र में जव, शनिवार में माष भोजन करके यात्रा करे तो शूल का दोष नहीं होता है ॥ ४६-४७ ॥

अथ योगिनीवास-

पूर्वस्यां योगिनी ज्ञेया नवम्यां प्रतिपद्यपि ।
 अग्निकोणे तृतीयायामेकादश्यां तथैव च ॥४८॥
 त्रयोदश्यां च पंचम्यां दक्षिणायां शिवा स्मृता ।
 द्वादश्यां च चतुर्थ्यां च नैऋत्यां चैव योगिनी ॥४९॥
 चतुर्दश्यां च षष्ठ्यां च पश्चिमायां च योगिनी ।
 सप्तम्यां पूर्णिमायां च वायव्यां पार्वती स्मृता ॥५०॥
 दशम्यां च द्वितीयायामुत्तरस्यां शिवप्रिया ।
 ऐशान्यां च तथाऽष्टम्यां दर्शे च योगिनी स्मृता ॥५१॥

प्रतिपदा और नवमी में पूर्व दिशा में, ३, ११ में अग्निकोण में, ५, १३ तिथि में दक्षिण में, १२, ४ में नैऋत्यकोण में, १४, ६ में पश्चिम में, पूर्णिमा, सप्तमी में वायुकोण में, १०, २ में उत्तर में और अष्टमी अमावस्या में ईशानकोण में योगिनी रहती है ॥ ४८-५१ ॥

अथ योगिनी कल-

मुखदा योगिनी वाये पृष्ठे वाञ्छितदायिनी ।
 दक्षिणे धनहन्त्री च सम्मुखे मरणप्रदा ॥५२॥

यात्रा में वाम भाग में योगिनी मुख देती है । पृष्ठ भाग में वाञ्छित पदार्थ देती है । दाहिने भाग में योगिनी पड़े तो धन को नाश करती है । सम्मुख भाग में पड़े तो मरण देती है ॥ ५२ ॥

अथ कालवास-

शनौ शुक्रे गुरौ ज्ञे च भौमे सोमे रवौ क्रमात् ।
 पूर्वादिषु दिशास्त्र कालवासो निगद्यते ॥५३॥

शनि में पूर्व दिशा में, शुक में अग्निकोण में, बृहस्पति में दक्षिण, बुध में नैऋत्यकोण, मंगल में पश्चिम, सोम में वायुकोण और रविवार में उत्तर दिशा में काल रहता है ॥ ५३ ॥

अथ राहुनिवास-

धनुरलिप्रकारार्के राहुरास्ते च पूर्वे
 सघटसफरमेघे दक्षिणे दिग्बिभागे ॥

वृषमिथुनकुलीरे पश्चिमस्थश्च कालो

हरियुवतितुलायामुत्तरे

सैहिकेयः ॥५४॥

वृश्चिक धनु मकर के सूर्य में पूर्व, कुम्भ मीन मेष के सूर्य में दक्षिण, वृष मिथुन कर्क के सूर्य में पश्चिम तथा सिंह कन्या तुला के सूर्य में उत्तर दिशा में राहु (काल) रहता है ॥ ५४ ॥

सम्मुखे दक्षिणे राहौ स्त्री यात्रां परिवर्जयेत् ।

गृहारम्भप्रवेशौ च सम्मुखे चैव वर्जयेत् ॥५५॥

सम्मुख और दक्षिण राहु मे स्त्री यात्रा न करे और गृहारम्भ, गृहप्रवेश में केवल सम्मुख राहु त्याग करे ॥ ५५ ॥

इति अवकहडा चक्रोद्धारादि ।

—:०:—

अथ वर्ज्य प्रकरण

विवाहादि शभ कार्यों में वर्ज्य—

गुर्वादित्ये व्यतीपाते वक्रातीचारगे गुरौ ।

नष्टे शशिनि शुक्रे वा बाले वृद्धेऽथवा गुरौ ॥१॥

पौषे चैत्रे च वर्षासु क्षये वाधिकमासके ।

केतूद्गमे निरंशेऽर्के सिंहे नक्रेऽथवा गुरौ ॥२॥

विवाहव्रतयात्रादि - पुरहर्म्य - गृहादिकम् ।

क्षौरं विद्योपविद्यां च यत्नतः परिवर्जयेत् ॥३॥

गुर्वादित्य (गुरु और सूर्य एक राशिस्थ), व्यतीपात (क्रान्तिसाम्यरूप) नामतः विष्कुम्भादियोग में पठित, दुष्टयोग, गुरु के वक्र अतिचार इनमें तथा चन्द्रमा, शुक्र या बृहस्पति ये अस्त हों या बाल हों या वृद्ध हों तो उस समय में, पौष, चैत्रमास में, वर्षा समय (आषाढ शकल ११ से कार्तिक शुक्ल ११ तक चातुर्मास्य), क्षय और अधिक मास में जिस समय केतुका उदय देखने में आवे उस समय में जिस दिन सूर्य निरंश हो अर्थात् सूर्य के संक्रान्ति दिन और बृहस्पति सिंह या मकर में हो तो इन समयों में विवाह, उपनयन, यात्रा, नगर-निर्माण, गृह-निर्माण-प्रवेश, प्रासाद-निर्माण, चूड़ाकरण, वेदादि विद्या या शस्त्रादि विद्या, दीक्षादिकर्म यत्न से त्याग कर देना चाहिये ॥ १-३ ॥

सर्वस्मिन् विधुपापयुक्तनुलवावर्द्धे निशाह्वोर्घटी-

त्र्यशं वै कुनवांशकं ग्रहणतः पूर्वं दिनानां त्रयम् ।

उत्पातग्रहतोऽद्रघहानि शुभदोत्पातैश्च दुष्टं दिनं

षण्मासं ग्रहभिन्नभं त्यज शुभे यौद्धं तथोत्पातमम् ॥४॥

पापग्रह से युक्त राशि-लग्न और नवांश सब शुभ कार्यों में त्याज्य है । मध्य रात्रि और मध्य दिन के समय २० पल त्याज्य हैं । पाप ग्रह को राशियों (मेष, वृश्चिक, मकर, कुम्भ, सिंह) के नवांश, सूर्यग्रहण, चन्द्र-ग्रहण से पूर्व के ३ दिन, भूकम्पादि उत्पात तथा ग्रहण के बाद ७ दिन तथा शुभप्रद उत्पात (असमय में फल-पुष्पादि होने) से दुष्ट दिन, इन सबों को सभी शुभ कार्यों में त्याग देना चाहिये । एवं ग्रह से भेदित नक्षत्र और जिसमें दो ग्रहों का युद्ध (राशिअंश कला बराबर) हो उन नक्षत्रों को सब शुभ कार्यों में ६ मास तक त्याग करना चाहिये ॥ ४ ॥

जन्मर्क्षमासतिथयो व्यतिपातभद्रा-

वैधृत्यमा पितृदिनानि तिथिक्षयधी ।

न्यूनाधिमास-कुलिक-प्रहरार्धपाता

विष्कम्भवज्रवटिकात्रयमेव वर्ज्यम् ॥५॥

परिघ र्धं पञ्च शूले षट् च गण्डातिगण्डयोः ।

व्याघाते नव नाड्यश्च वर्ज्याः सर्वेषु कर्मसु ॥६॥

जन्म नक्षत्र, जन्ममास, जन्म तिथि, व्यतिपात योग, भद्रा, वैधृति योग, अमावस्या, माता-पिता के क्षय दिन, तिथिक्षय, तिथिवृद्धि, क्षयमास, मलमास, कुलिक, अर्धयाम और पात (रवि चन्द्र की क्रान्ति को समता) को सब शुभकार्यों में त्याग कर देना चाहिये । परिघ योग का पूर्वाधि, शूल योग के आरम्भ की ५ घड़ी, गण्ड, अति गण्ड योग के आरम्भ की ६ घड़ी, व्याघात योग के आरम्भ की ६ घड़ी सब शुभकार्यों में त्याग देना चाहिये और जिस प्रकरण में जो त्याज्य कहे गये हैं उनका भी त्याग करके कार्यों का आरम्भ करना चाहिये ॥ ५-६ ॥

अथ विवाह प्रकरण

वर कन्या की वर्षशुद्धि—

कन्याया दशमे वर्षे नवमेऽप्यष्टमेऽपि वा ।

वरस्य षोडशादूर्ध्वं विवाहो यौवने शुभः ॥१॥

दशवें, नवमें, आठवें वर्ष में कन्या का और वर का १६ वर्ष के अनन्तर युवावस्था में (अर्थात् ४० वर्ष के भीतर) विवाह शुभ है ॥ १ ॥

कन्या की संज्ञा—

अष्टवर्षा भवेद् गौरी नववर्षा च रोहिणी ।

दशवर्षा च कन्या स्यादत ऊर्ध्वं रजस्वला ॥२॥

आठवें वर्ष गौरी, नवम वर्ष में रोहिणी, दशम वर्ष में कन्या कहलाती है, दश वर्ष के बाद रजस्वला कहलाती है ॥ २ ॥

गौरीं ददन्नागलोकं लभते स्वश्च रोहिणीम् ।

कन्यां ददन्मर्त्यलोकं गौरवं तु रजस्वलाम् ॥३॥

गौरी दान करने से नागलोक, रोहिणी दान करने से स्वर्गलोक, कन्यादान करने से मृत्युलोक और रजस्वला दान करने से रौरव (नरक) पाता है ॥ ३ ॥

गुरुशुद्धिवशेन कन्यकानां समवर्षेषु षडब्दकोपरिष्ठात् ।

रविशुद्धिवशाच्छुभौ वराणामुभयोश्चन्द्रविशुद्धितो विवाहः ॥४॥

६ वर्ष के ऊपर सम (८ । १०) वर्ष में गुरुशुद्धि होने पर कन्या का और रवि शुद्धि से वर का तथा कन्या और वर की चन्द्र शुद्धि से विवाह शुभ होता है ॥ ४ ॥

रविशुद्धि

जन्मराशेऽस्त्रिषष्टायदशमेषु रविः शुभः ।

पश्चात् त्रयोदशांशेभ्यो द्विपञ्जनवमेष्वपि ॥ ५ ॥

जन्मराशि से ३, ६, १०, ११ वें रवि शुभ हैं । यदि रवि १३ अंश से अधिक हो जाय तो २, ५, ९वीं राशि में भी शुभ होते हैं ॥ ५ ॥

चन्द्र शुद्धि—

जन्मराशे ख्लिषष्ठाद्य-सप्तमायखसंस्थितः ।

शुद्धश्चन्द्रो द्विकोणस्थः शुक्ले चाऽन्यत्र निन्दितः ॥६॥

जन्मराशि से ३, ६, १, ७, ११, १० वें स्थान में चन्द्रमा शुभ होते हैं, २, ५, ९ वें शुक्लपक्ष में शम् हैं । ४, ८, १२ वें में अशुभ होते हैं ॥६॥

गुरु शुद्धि—

बटुकन्याजन्मराशे ख्लिकोणाद्यद्विसप्तमः ।

श्रेष्ठो गुरुः स्वषट्त्रयाद्ये पूजयान्यत्र निन्दितः ॥ ७ ॥

बालक और कन्या की जन्म राशि में २, ५, ९, ७, ११ वें स्थान में गुरु शम् होते हैं । तथा १०, ६, ३, १ इनमें शांति (जपदान) से शुद्ध होते हैं । ४, ८, १२ में अशुभ हैं ॥ ७ ॥

विशेष—

स्वोच्चे स्वमे स्वमैत्रे वा स्वांशे वर्गोत्तमे गुरुः ।

अशुभोऽपि शुभो ज्ञेयो नीचारिस्थः शुभोऽप्यसन् ॥ ८ ॥

अपने उच्च में, अपनी राशि में, मित्र की राशि में, अपने नवांश में गुरु रहे तो अशुभ भी शुभ होता है और नीच तथा शत्रु की राशि में रहे तो शुभ भी अशुभ होता है । यहाँ गुरु उपलक्षण हैं—सब ग्रह रवि चन्द्र आदि अपने उच्चादि स्थान में रहने पर अनिष्ट स्थान में भी शुभ होते हैं ॥८॥

अथ वरवरण (तिलक मुहूर्त)—

कन्याभ्राताऽथवा विप्रो वस्त्रालङ्कारादिना ।

ध्रुवपूर्वानिलैः कुर्याद्वरवृत्तिं शुभे दिने ॥ ९ ॥

कन्या के सहोदर भाई अथवा कोई ब्राह्मण वस्त्र, अलंकार आदि से शुभ दिन में ध्रुव संज्ञक, तीनों पूर्वा और कृत्तिका नक्षत्र में वर को तिलक चढ़ावे ॥ ९ ॥

अथ कन्यावरण मुहूर्त—

विवाहोक्तैश्च नक्षत्रैः शुभे लगने शुभे दिने ।

वस्त्रालंकाराद्यैश्च कन्यकावरणं शुभम् ॥ १० ॥

विवाहोक्त नक्षत्र, शुभ दिन, शुभ लगन में वस्त्र, अलंकार, फल, पुष्प आदि से कन्यावरण शुभ होता है ॥ १० ॥

वर कन्या की कुण्डली विचार—

लग्ने व्यये चतुर्थे च सप्तमे वाऽष्टमे कुजः ।

भर्तारं नाशयेद् भार्या भर्ता भार्या विनाशयेत् ॥ ११ ॥

यदि लग्न, द्वादश, चतुर्थ, सप्तम, अष्टम इन भावों में स्त्री की कुण्डली में, मंगल हो तो स्वामी का नाश होता है और पुरुष की कुण्डली में हो तो स्त्री का नाश करता है ॥ ११ ॥

परिहार—

भौमतुल्यो यदा भौमो पापो वा तादृशो भवेत् ।

वरवध्वोर्मिघस्तत्र भौमदोषो न विद्यते ॥ १२ ॥

उक्त स्थानों में वर के जन्मपत्र में मंगल हो तो वर मांगलिक (स्त्री नाशक) तथा कन्या के जन्मपत्र में कन्या मंगला कहलाती है। उसका यह परिहार है कि यदि उक्त स्थान में वर की कुण्डली में मंगल हो तथा कन्या की कुण्डली में भी उन्हीं स्थानों में से किसी में मंगल हो तो परस्पर दोषों का नाश होकर विवाह सम्बन्ध शुभप्रद हो जाता है। यदि एक के जन्मपत्र में मंगल हो और दूसरे के जन्मपत्र में उन स्थानों में मङ्गल न हो, कोई अन्य पापग्रह भी हो तथापि अनिष्ट भौम का दोष नहीं होता है ॥ १२ ॥

मतान्तर—

सप्तमे च यदा सौरिलग्नौ वापि चतुर्थके ।

अष्टमे द्वादशे चैव तदा भौमो न दोषकृत् ॥ १३ ॥

यदि सप्तम, लग्न, चतुर्थ, अष्टम, द्वादश इन भावों में शनैश्चर हो तो परस्पर भौम का दोष नहीं होता है ॥ १३ ॥

पुनः विशेष—

उक्तस्थानेषु चन्द्राच्च गणयेत् पापखेरान् ।

पापाधिक्ये वरे श्रेष्ठं विवाहं प्रवदेद् बुधः ॥ १४ ॥

जैसे लग्न से ४, ७, ८, १२ वें मंगल या अन्य पापग्रह अनिष्ट कहे गये हैं उसी प्रकार चन्द्रमा से भी उक्त स्थान में पापग्रह अनिष्ट होते हैं। इस लिये वर की कुण्डली में लग्न और चन्द्रमा से युक्त स्थान में पापग्रह की संख्या गिने एवं कन्या का कुण्डली में भी लग्न और चन्द्रमा से युक्त

स्थानों में पापग्रह की संख्या गिने, यदि कन्या से वर की पापसंख्या अधिक हो तो विवाह सम्बन्ध श्रेष्ठ समझना चाहिये ॥ १४ ॥

अथ मेलापक (आठ प्रकार के कूट)—

वर्णो वश्यं तथा तारा योनिश्च ग्रहमैत्रकम् ।

गणकूटं भकूटं च नाडी चैते गुणाधिकाः ॥ १५ ॥

१ वर्ण, २ वश्य, ३ तारा, ४ योनि, ५ ग्रहमैत्री, ६ गणकूट, ७ राशिकूट, ८ नाडी ये आठ प्रकार के कूट हैं। इनमें क्रम से एक-एक गुण अधिक होते हैं ॥ १५ ॥

यथा—वर्ण में १, वश्य में २, तारा में ३, योनि में ४, ग्रहमैत्री में ५, गण मैत्री में ६, भकूट में ७, नाडी में ८ गुण होते हैं। सबका योग ३६ होता है।

अथ वर्णज्ञान—

कर्कमीनालयो विप्राः सिंहो मेषो धनुर्नृपाः ।

कन्यावृषमृगा वैश्याः शूद्रा युग्मतुलाघटाः ॥ १६ ॥

कर्क, मीन, वृश्चिक ये ब्राह्मण वर्ण हैं। मेष, सिंह, धनु ये क्षत्रिय, कन्या, वृष, मकर ये वैश्य और मिथुन, तुला कुम्भ ये शूद्र वर्ण हैं ॥ १६ ॥

वर्णगुण संख्या—

एको गुणः सदृग्वर्णे तथा वर्णोत्तमे वरे ।

हीनवर्णे वरे शून्यं केऽप्याहुः सदृशे दलम् ॥ १७ ॥

वर और कन्या एक वर्ण हो अथवा कन्या से वर का वर्ण उत्तम हो तो एक गुण, हीन वर्ण वर हो तो शून्य गुण होता है। कोई समान वर्ण में आधा गुण कहते हैं ॥ १७ ॥

वर्णगुण संख्या चक्र—

वर्णज्ञान चक्र—

वरवर्ण

	मीन	मेष	वृष	मिथुन		ब्राह्मण	क्षत्रिय	वैश्य	शूद्र
राशि	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	कन्या वर्ण	१	०	०	०
	वृश्चिक	धन	मकर	कुम्भ		१	१	०	०
						१	१	१	०
वर्ण	ब्राह्मण	क्षत्रिय	वैश्य	शूद्र		१	१	१	१

अथ वश्यज्ञान—

द्वित्वा मृगेन्द्रं नरराशिवश्याः सर्वे तथैषां जलजाश्च भक्ष्याः ।

सर्वेऽपि सिंहस्य वशे विनालिं ज्ञेयं नराणां व्यवहारतोऽन्यत् ॥ १८ ॥

सिंहराशि को छोड़ कर सब राशि नरराशि के वश्य होती हैं और जलचर राशि भक्ष्य हैं और वृश्चिक को छोड़कर सब राशि सिंह के वश में हैं । और राशियों के वश्यावश्य को व्यवहार से समझना ॥ १८ ॥

वश्यज्ञानार्थ-द्विपदादिसंज्ञा—

वृषसिंहधनुर्मेषा मकरार्धं चतुष्पदाः ।

मृगोत्तरार्धं कुम्भश्च मीनश्चैते जलचराः ॥ १९ ॥

नरा मिथुनकन्ये च धनुःपूर्वार्धकं तुला ।

कीटस्तु कर्कटः प्रोक्तो वृश्चिकश्च सरोसृपः ॥ २० ॥

मेष, वृष, सिंह, धन के उत्तरार्ध और मकर के पूर्वार्ध ये चतुष्पद हैं । मकर के उत्तरार्ध, कुम्भ, मीन ये जलचर हैं । मिथुन, तुला, कन्या, धन के पूर्वार्ध ये द्विपद हैं । कर्कट, कीट और वृश्चिक सरोसृप हैं ॥ १९-२० ॥

वश्यगुणबोधक चक्र

वरराशि—

	चतुष्प	द्विपद	जलचर	वनचर	कीट
चतुष्पद	२	१	१	॥	०
द्विपद	१	२	॥	०	०
जलचर	१	॥	२	१	२
वनचर	०	०	१	२	०
कीट	१	१	१	०	२

कन्याराशि

वश्य गुण विभाग—

मुख्यं वैरं च भक्ष्यं च वश्यमाहुस्त्रिधा बुधाः ।

वैरभक्ष्ये गुणामावो द्वयोः सख्ये गुणद्वयम् ॥ २१ ॥

वश्यवैरे गुणस्त्वेको वश्यभक्ष्ये गुणार्धकम् ।

सख्य (मैत्री) वैर, भक्ष्य, ये तीन प्रकार के वश्य कीट होते हैं ।
यदि वर कन्या की राशि में परस्पर वैर भक्ष्य हो तो शून्य गुण और
दोनों में मैत्री हो तो २ गुण, वश्य वैर हो तो १ गुण, वश्य भक्ष्य हो तो
आधा (॥) गुण होता है ॥ २१ ॥

अथ ताराकूट-

कन्यर्थाद्वरं यावत् कन्यां वरमादपि ॥ २२ ॥

गणयेन्नवहृच्छेषे त्रीष्वद्विभसत्स्मृतम् ।

कन्या के नक्षत्र से वर के नक्षत्र तक और वर के नक्षत्र से कन्या के
नक्षत्र तक गिनकर पृथक् ६ का भाग देने से ७, ५, ३ बचे तो अशुभ
अर्थात् १, २, ४, ६, ८, ९ बचे तो शुभ है ॥ २२ ॥

तारा गुणविभाग-

एकतश्चेच्छुभा तारा परतश्चाशुभा तदा ॥ २३ ॥

सादृशचैको गुणो ग्राह्यस्ताराशुद्ध्या मिथस्त्रयः ।

उभयोर्न शुभा तारा तदा शून्यं समादिशेत् ॥ २४ ॥

एक से शुभ तारा दूसरे से अशुभ हो तो डेढ़ (१॥) गुण, दोनों से
यदि शुभ तारा हो तो ३ गुण । दोनों से अशुभ तारा हो तो ० गुण
समझना ॥ २३-२४ ॥

तारागुणबोधकचक्र-

वरतारा संख्या-

संख्या	१	२	३	४	५	६	७	८	९
१	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥		३
२	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३
३	१॥	१॥	०	१॥	०	१॥	०	१॥	१॥
४	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३
५	१॥	१॥	०	१॥	०	१॥	०	१॥	१॥
६	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३
७	१॥	१॥	०	१॥	०	१॥	०	१॥	१॥
८	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३
९	३	३	१॥	३	१॥	१॥	३	३	३

कन्या की तारा संख्या -

अथ योनिकूट-

अश्विन्यम्बुपयोर्हयो निगदितः

स्वात्यर्कयोः कासरः

सिंहो वस्त्रजपाद्भयोः समुदितो

याम्यान्त्ययोः कुञ्जरः ।

मेघो देवपुरोहितानलभयोः कर्णाम्बुनोर्वानरः ।

स्याद्वैश्वामिजितोस्तथैव वनकुश्वान्द्राब्जयोन्धोरहिः ॥२५॥

ज्येष्ठाभैत्रभयोः कुरङ्ग उदितो मूलार्द्रयोः श्वा तथा ।

मार्जारोऽदितिसार्पयोरथ मघायोन्धोस्तथैतोन्दुरुः ।

व्याघ्रो द्वीशमचित्रयोरपि च गौर्यम्णवुध्षयो-

योनिः पादगयोः परस्परमहावैरं भयोन्धोस्त्यजेत् ॥२६॥

अश्विनी, शतभिषा की अश्व योनि, स्वाती हस्त की महिष, घनिष्ठा पूर्वभाद्रपदा की सिंह, भरणी रेवती की हस्तो, पुष्य कृत्तिका की मेघ, श्रवण पूर्वाषाढ की वानर, उत्तराषाढ अभिजित् की नकुल, मृगशिरा पूर्वाफाल्गुनी को सर्प, ज्येष्ठा अनुराधा की हरिण, मूल आर्द्रा की कुत्ता, पनर्वसु आश्लेषा की मार्जार, मघा पूर्वाफाल्गुनी की मूषक, विशाखा चित्रा की व्याघ्र, उत्तराफाल्गुनी उत्तराभाद्रपदकी गौ योनि है । श्लोक के एक-एक चरण में जो दो-दो योनि पठित हैं उनमें परस्पर महावैर है इसलिये त्याज्य है ॥ २५-२६ ॥

अथ योनिगुण विभाग-

महावैरे च वैरे च समे चैव यथाक्रमम् ।

मैत्रे चैवातिमैत्रे च खैकद्वित्रिचतुर्गुणा ॥ २७ ॥

परस्पर महावैर में ० (शून्य), वैर में १, सम में २, मैत्री में ३, अति मैत्री में ४, ४, ग्रहण करना चाहिये ॥ २७ ॥

योनिगुणबोधक चक्र-

अथ ग्रहमैत्री-

	अ.	गज	मेघ	सपं	शवा	मा	मू	गी	म.	व्या	मृग	वा.	न.	सि.
बध्व	४	२	३	२	२	२	२	०	१	३	२	२	१	
गज	२	४	३	३	२	२	२	३	२	२	३	२	०	
मेघ	३	३	४	३	२	२	३	३	१	३	२	२	१	
सपं	२	२	३	४	२	२	१	१	०	२	२	०	२	
शवान	२	०	१	२	४	१	०	०	२	१	०	२	१	
मार्जार	२	२	३	२	१	४	०	०	२	१	२	२	२	
मूषक	२	०	२	१	१	०	४	२	२	२	२	२	१	
गो	३	२	३	१	२	४	२	४	३	२	३	३	१	
महिष	०	३	३	२	२	२	०	३	४	१	०	२	३	
व्याघ्र	१	०	१	१	१	१	०	१	४	१	१	१	२	
मृग	३	१	३	०	०	२	२	३	२	४	१	२	२	
वानर	२	२	०	०	२	२	२	२	१	२	४	२	३	
सकल	२	२	१	०	२	२	२	१	२	२	२	२	३	
सिंह	१	०	१	२	१	२	१	०	२	१	१	२	४	

रवेः समो ज्ञो मित्राणि चन्द्रारेज्याः परावरी ।

इन्द्रोर्न शत्रवो मित्रे रविज्ञावितरे समाः ॥ २८ ॥

समौ कुजस्य शुक्रार्की बुधोऽरिः सुहृदः परे ।

ज्ञस्य चन्द्रो रिपुमित्रे शुक्रार्कावितरे समाः ॥ २९ ॥

आराकज्ञा गुरोर्मित्राण्याकिर्मध्यः परावरी ।

भृगौ समावीज्यकुजौ मित्रे ज्ञार्की परौ रिपू ॥ ३० ॥

शनेर्गुरुः समो मित्रे शुक्रज्ञौ शत्रवः परे ।

कश्यपोक्त्याऽनया विज्ञो ग्रहमैत्रीं विचारयेत् ॥ ३१ ॥

रवि के बुध सम, चन्द्रमा मंगल बृहस्पति मित्र, शक्र, शनि शत्रु हैं । चन्द्रमा के शत्रु नहीं हैं, रवि बुध मित्र, मंगल बृहस्पति शक्र शनि सम हैं । मंगल के शक्र शनि सम, बुध शत्रु चन्द्र रवि बृहस्पति मित्र, बुध के चन्द्रमा शत्रु, सूर्य शक्र मित्र, मंगल, बृहस्पति शनि सम हैं ।

बृहस्पति के रवि मंगल बुध मित्र, शनि सम, चन्द्र शुक्र शत्रु हैं। शुक्र के मंगल बृहस्पति सम, बुध शनि मित्र, रवि चन्द्र शत्रु हैं। शनि के गुरु सम, बुध शुक्र मित्र, रवि चन्द्र मंगल शत्रु हैं। इस काश्यप मुनि की उक्ति से ग्रहमैत्री विचार करना चाहिये ॥ २८-३१ ॥

ग्रहमैत्री गुणविभाग-

ग्रहमैत्रं सप्तविधं गुणाः पञ्च प्रकीर्तिताः ।

तत्रैकाधिपतित्वे च मित्रत्वे गुणपञ्चकम् ॥ ३२ ॥

चत्वारः सममित्रत्वे द्वयोः साम्ये त्रयो गुणाः ।

मित्रवैरे गुणश्चैकः समवैरे गुणाद्द्वयम् ॥ ३३ ॥

परस्परं खेटवैरे गुणशून्यं विनिदिशेत् ।

असद्भूमे सममित्रादौ व्येकां ग्राह्या यथोदिताः ॥ ३४ ॥

ग्रहमैत्री कूट सात प्रकार के हैं और ५ गुण हैं। इनमें यदि वर कन्या की राशि में एकाधिपत्य वा मैत्री हो तो ५ गुण, सम मित्रता हो तो ४ गुण, दोनों में समता हो तो ३ गुण, मित्र शत्रुत्व हो तो १ गुण, सम शत्रुता हो तो अर्ध (१/२) गुण और परस्पर शत्रुता हो तो शून्य गुण होता है। मित्रादि होने पर भी यदि नीच आदि में हो तो प्राप्त गुण में एक अल्प करके ग्रहण करना चाहिये ॥ ३२-३४ ॥

अथ ग्रहमैत्री गुण बोधक चक्र-

	सूर्य	चंद्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
सूर्य	५	५	५	४	५		०
चंद्र	५	५	४	१	४	११	११
मंगल	५	४	५	११	५	३	११
बुध	४	१	११	५	११	५	४
गुरु	५	४	५	११	५	११	३
शुक्र	०	११	३	५	११	५	५
शनि	०	११	११	४	३	५	५

अथ गणकूट—

रक्षोनरामरगणाः क्रमतो मवाहि-

वस्विन्द्रमूलवरुण - नलतक्षराधाः ।

पूर्वोत्तरात्रय—विधातृयमेशभानि

मैत्रादितीन्दुहरिपौष्णमरुल्लघूनि ॥३५॥

मघा, श्लेषा, घनिष्ठा, ज्येष्ठा, मूल, शततारका, कृत्तिका, चित्रा, विशाखा ये राक्षसगण हैं। तीनों पूर्वा, तीनों उत्तरा, रोहिणी, भरणी, आर्द्रा ये नरगण हैं। अनुराधा, पुनर्वसु, मृगशिरा, श्रवण, रेवती, स्वाती और लघुसंज्ञक (हस्त, पुष्य, अश्विनी, अभिजित्) ये देवगण हैं ॥३५॥

अथ फल—

स्वगणे परमा प्रीतिर्मध्यमा नरदेवयोः ।

नरराक्षसयोर्मृत्युः कलहो देवराक्षसोः ॥३६॥

अपने गण में उत्तम प्रीति, देव मनुष्य गणमें मध्यम प्रीति होती है। नर राक्षस गण में मृत्यु और देव राक्षस गण में कलह होता है ॥३६॥

अथ गणकूट गुणविभाग—

स्वगणे षड्गुणः प्रोक्ताः पञ्च देवमनुष्ययोः ।

देवराक्षसयोश्चैकः शून्यं मनुजराक्षसोः ॥३७॥

स्वगण में ६ गुण, देव-नर में ५, देव-राक्षस में १, नर-राक्षस में शून्य० गुण होता है ॥३७॥

गण गुणबोधक चक्र—

वर

	देव	नर	राक्षस
देव	६	५	१
नर	५	६	०
राक्षस	१	०	६

गणादि दोष परिहार—

राशीशयोः सुहृद्भावे मित्रत्वे वांशनाथयोः ।

गणादिदौष्ट्येऽप्युद्वाहः पुत्रपौत्रप्रवर्धनः ॥३८॥

राशीश में मंत्री हो अथवा अंश के स्वामी में मंत्री हो तो गणादि दुष्ट रहने पर भी विवाह पुत्र-पौत्र को बढ़ानेवाला होता है ॥३८॥

अथ राशिकूट—

मृत्युः षट्काष्टके ज्ञेयोऽपत्यहानिर्नवात्मजे ।

द्विर्द्वादशे दरिद्रत्वं द्वयोरन्यत्र सौख्यकृत् ॥३९॥

वर की राशि से कन्या की राशि तक और कन्या की राशि से वर की राशि तक गिनने से ६।८ हो तो दोनों की मृत्यु, ९।५ हो तो सन्तान हानि, २,१२ हो तो दरिद्रता होती है ॥३९॥

दुष्टभकूटपरिहार—

एकाधिपत्ये राशाशमैत्र्यां दुष्टभकूटके ।

नाडी नक्षत्रशुद्धिश्चेद्विवाहः शुभदस्तदा ॥४०॥

वर और कन्या दोनों की राशि के स्वामी एक ही ग्रह हो अथवा दोनों राशीश में मंत्री हो और नाडी नक्षत्र शुद्ध रहे तो दुष्टभकूट में भी विवाह शुभ होता है ॥४०॥

राशिकूट गुणबोधक चक्र—

	मे.	वृ.	मि.	क.	सि.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी
मे.	७	०	७	७	०	७	०	७	०	७	७	०
वृ.	०	७	०	७	७	०	७	०	७	०	७	७
मि.	७	०	७	०	७	७	०	७	०	७	०	७
क.	७	७	०	७	०	७	७	०	७	०	७	०
सि.	०	७	७	०	७	०	७	७	०	७	०	७
क.	०	०	७	७	०	७	०	७	७	०	०	७
तु.	७	०	०	७	७	०	७	०	७	७	०	०
वृ.	०	७	०	०	७	७	७	७	०	७	७	०
ध.	०	०	७	०	०	७	७	०	७	०	७	७
म	७	०	०	७	०	०	७	७	०	७	०	७
कुं.	७	७	०	०	७	०	७	७	०	७	०	०
मी.	०	७	७	०	०	७	०	७	७	०	०	७

अथ नाड़ीकूट—

ज्येष्ठारौद्रार्यमाम्भःपतिभयुगयुगं दास्रभं चैकनाडी
पुष्येन्दुत्वाष्ट्रमित्रान्तकत्रसुजलभं योनिबुध्न्ये च मध्या ।
अश्वनिव्यालविश्वोडुयुगयुगमथो पौष्णभं चापरा स्या-
दम्पत्योरेकनाड्यां परिणयनमसन्मध्यनाड्यां च मृत्युः ॥४१॥

ज्येष्ठा, आर्द्रा, मूल, पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, शतभिषा, पूर्वभाद्र, अश्वनी ये आदि नाड़ी और पुष्य, मृगशिरा, चित्रा, अनुराधा, भरणी, घनिष्ठा, पूर्वाषाढ, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराभाद्र ये मध्यनाड़ी तथा स्वाती, विशाखा, कृत्तिका, रोहिणी, आश्लेषा, मघा, उत्तराषाढा, श्रवण, रेवती ये अन्त्यनाड़ी हैं । वर कन्या की एक नाड़ी में विवाह अशुभ है, मध्यनाड़ी में मृत्यु होती है अर्थात् भिन्न नाड़ी शुभ होती है ॥४१॥

नाड़ी बोधक चक्र—

आदि	अ.	आ.	पु.	उ.फा.	ह.	ज्ये.	मू.	श.	पू.
मध्य	भ.	मृ.	पु.	पू. फा.	चि.	अ.	पू.	घ.	उ.
अन्त्य	कृ.	रो.	श्ले.	म.	स्वा.	वि.	उ.	श्र.	रे.

नाड़ी गुणबोधक चक्र—

वरनाड़ी

	आदि	मध्य	अन्त्य
कन्यानाड़ी	०	८	८
	८	०	८
	८	८	०

विशेष—

नाडीदोषोऽस्ति विप्राणां वर्णदोषोऽस्ति भृशुजाम् ।
वैश्यानां गणदोषः स्यात् शूद्राणां योनिदूषणम् ॥४२॥

ब्राह्मणों को नाडीदोष, क्षत्रियों को वर्ण राशिज वर्ण दोष, वैश्यों को गणदोष और शूद्रों को योनिदोष विशेष करके हैं ॥४२॥

परिहार—

राश्यैक्ये चेद्भिन्नमृक्षं द्वयोः स्यान्नक्षत्रैक्ये राशियुग्मं तथैव ।

नाडीदोषो नो गणानां न दोषो नक्षत्रैक्ये पादभेदे शुभं स्यात् ॥४३॥

वर कन्या की एक राशि हो और नक्षत्र भिन्न-भिन्न हो अथवा एक नक्षत्र और भिन्न राशि हो तो नाडीदोष और गणदोष नहीं होता है । तथा एक नक्षत्र में चरण के भेद होने से शुभ होता है ॥४३॥

ग्राह्य अग्राह्य गुण संख्या—

अशुभोऽष्टादशाल्पश्चेत् शुभोऽष्टादशतोऽधिकः ।

शुभोऽतिगुणयोगश्चेत्सप्तत्रिंशतितोऽधिकः ॥४४॥

आठों कूट के गुण का योग १८ से अल्प अशुभ, और १८ से अधिक शुभ है तथा २७ से अधिक हो तो अत्यन्त शुभ है ॥४४॥

अथ वर्गकट—

अवर्गो गरुडस्योक्तो मार्जारस्य कवर्गकः ।

सिंहस्यैवं चवर्गस्तु कुक्कुरस्य टवर्गकः ॥४५॥

सर्पस्योक्तस्तवर्गस्तु पवर्गो मूषकस्य च ।

यवर्गस्तु गजस्योक्तो मेषस्य तु शवर्गकः ॥४६॥

अवर्ग के स्वामी गरुड, कवर्ग के मार्जार, चवर्ग के सिंह, टवर्ग के कुक्कुर, तवर्ग के सर्प, पवर्ग के मूषक, यवर्ग के हरिण (मृग), शवर्ग के स्वामी मेष हैं ॥४५-४६॥

स्ववर्गात्पञ्चमः शत्रुश्चतुर्थो मित्रसंज्ञकः ।

उदासीनस्तृतीयः स्याद्र्गमेदस्त्रिधोदितः ॥४७॥

स्ववर्गे परमा प्रीतिर्मित्रवर्गेऽपि तादृशी ।

उदासीने प्रीतिरल्पा शत्रुवर्गे मृतिर्भवेत् ॥४८॥

अपने से ५ वाँ वर्गश शत्रु, ४ या मित्र और तृतीय उदासीन (सम) होते हैं । इस प्रकार तीन भेद हैं । एक वर्ग में अत्यन्त प्रीति, मित्र वर्ग में उत्तम प्रीति और उदासीन में थोड़ी प्रीति होती है । परस्पर शत्रुवर्ग में मृत्यु होती है ॥४७-४८॥

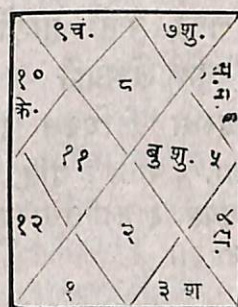
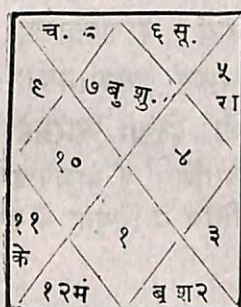
वर्ग चक्र—

	वर्ग	स्वामी	मित्र	सम	शत्रु	दिशा	स्वर
अवर्ग	अ इ उ ए ओ	गरुड	श्वान	सिंह	सर्प	पूर्व	८
कवर्ग	क ख ग घ ङ	माजरीर	सर्प	श्वान	मूषक	अग्निकोण	५
चवर्ग	च छ ज झ ञ	सिंह	मूषक	सर्प	मृग	दक्षिण	६
टवर्ग	ट ठ ड ढ ण	श्वान	मृग	मूषक	मेष	नैऋत्य	४
तवर्ग	त थ द ध न	सर्प	मेष	मृग	गरुड	पश्चिम	७
पवर्ग	प फ ब भ म	मूषक	गरुड	मेष	माजरीर	वायव्य	१
यवर्ग	य र ल व	मृग	माजरीर	गरुड	सिंह	उत्तर	३
शवर्ग	श ष स ह	मेष	सिंह	माजरीर	श्वान	ईशान	२

वरवधू मेलापक-उदाहरण—

वर कुण्डली

कन्या कुण्डली



संवत् १९६८ आश्विन शुक्ल पञ्चमी गुरुवासरे तुलालग्नोदये विशाखा चतुर्थ चरणे जन्म ।

संवत् २००१ आश्विन शुक्ल नवमी भौमवासरे वृश्चिकलग्नोदये पूर्वाषाढ तृतीय चरणे जन्म ।

ग्रहमेलापक—इसी प्रकार के ११वें श्लोकानुसार वर की कुण्डली में लग्न आदि अनिष्ट स्थान में मंगल नहीं है । एव चन्द्रमा से भी उक्त स्थान (१, ४, ७, ८, १२,) में मंगल नहीं है । अतः वर में मांगलिक दोष नहीं है ।

एवं कन्या की कुण्डली में भाव—लग्न से अथवा चन्द्रमा से उक्त स्थान में मंगल न होने से कन्या भी मंगली नहीं है। किन्तु कुछ आचार्यों के मत से—उक्त स्थान में अन्य पापग्रह होने से भी दोष कहा गया है। उसके अनुसार—वर की कुण्डली में—लग्न से अष्टम शनि, द्वादश सूर्य और चन्द्रमा से सप्तम शनि, चतुर्थ सूर्य हैं। एवं ४ अनिष्ट ग्रह संख्या हुई। तथा कन्या की कुण्डली में लग्न से अष्टम शनि, चन्द्रमा से सप्तम शनि, अष्टम राहु एवं ३ पापग्रह अनिष्ट हैं। यहाँ वर की अनिष्ट ग्रह संख्या से कन्या की अनिष्ट ग्रह संख्या अल्प है, अतः ग्रहमेलापक श्रेष्ठ हुआ।

वर	कन्या	गुण	नक्षत्र मेलापक के अनुसार गुण	
वर्ण	ब्राह्मण	वैश्य	१	नक्षत्र मेलापक के अनुसार गुण का १८ से अधिक और २७ से अल्प होने के कारण मध्यम है। अतः श्रेष्ठ और मध्यम मेलापक होने से इन दोनों में विवाह सम्बन्ध शुभप्रद सिद्ध होता है।
वश्य	कीट	चतुष्पद	१	
तारा	५	६	१॥	
योनि	व्याघ्र	वानर	२	
ग्रहसैत्री	मित्र	सम	५	
गणसैत्री	राक्षस	मनुष्य	०	फिर भी—वर और वधू के कुल और रूप गुण की अनुकूलता देख कर ही विवाह सम्बन्ध करना चाहिये।
भकूट	२	१२	०	
नाडी	अन्त	मध्य	८	
		गुण योग	१८॥	

विवाह में दशदोष—

लक्षा पातो युतिर्वेधो यामित्रं बाणपञ्चकम् ।

एकार्गलोपग्रहौ च क्रान्तिसाम्यं शशीनयोः ॥४६॥

दग्धा तिथिश्च विज्ञेया दश दोषाः करग्रहे ।

१ लक्षा, २ पात, ३ युति, ४ वेध, ५ यामित्र, ६ बाणपञ्चक, ७ एकार्गल, ८ उपग्रह, ९ क्रान्तिसाम्य, १० दग्धतिथि ये विवाह में मुख्य दशदोष होते हैं ॥४६॥

विशेष—

पञ्चाधिकेषु दोषेषु विवाहं परिवर्जयेत् ॥५०॥

क्रूरविद्धे कुर्यामित्रे मृत्युवाणे विशेषतः ।

सुविद्धमे सुयामित्रे केपीच्छन्ति करग्रहम् ॥५१॥

उक्त दोषों में ५ से अधिक दोष हो तो विवाह नहीं करना चाहिए, उनमें भी यदि क्रूरग्रह विद्धनक्षत्र, पापग्रहकृत यामित्र और मृत्युबाण

हो तो विशेषकर त्याग करना चाहिये । कुछ आचार्य शुभ ग्रह से विद्व नक्षत्र में और शुभ ग्रहकृत यामित्र दोष में विवाह शुभप्रद कहते हैं ॥ ५०३-५१ ॥

(१) लत्तादोष-

श्राहुपूर्णेन्दुमिताः स्वपृष्ठे भसप्त-गो-जाति-शरैर्मितं हि ।

संलक्ष्यन्तेऽर्क-शनीज्य-भौमाः सूर्याष्टर्काऽग्निमितं पुरस्तात् ॥५२॥

अपने आश्रित नक्षत्र से पीछे ६ठें को बुध, ९वें को राहु, २२वें को पूर्णचन्द्र, ५वें को शुक्र लक्षित (पद से मर्दिदत) करते हैं । तथा अपने आश्रित नक्षत्र से आगे-१२वें को सूर्य, ८वें को शनि, ६ठें को गुरु, ३ तृतीय नक्षत्र को मंगल लत्तादोष से युक्त बताते हैं । इसमें अभिजित की गणना नहीं होती है ॥ ५२ ॥

(२) पातदोष-

हर्षण-वैधृति-साध्य-व्यतिपातकशूलगण्डयोगानाम् ।

अन्ते यन्नक्षत्रं पातेन निपातितं तत् स्यात् ॥५३॥

हर्षण, वैधृति- साध्य, व्यतिपात, शूल, गण्ड इन ६ योगों के अन्त में जो नक्षत्र हो वह पातदोष युक्त होता है ॥५३॥

(३) युतिदोष

चन्द्रे सूर्यादिमंयुक्ते दारिद्र्यं मरणं शुभम् ।

सौख्यं सापत्न्यवैराग्ये पापद्वययुते मृतिः ॥५४॥

(चन्द्रमा-ग्रह से युक्त हो तो युति दोष कहलाता है ।)

चन्द्रमा यदि सूर्य से युक्त हो तो दरिद्रता, मंगल से युक्त हो तो मरण, बुध से युक्त हो तो शुभ, गुरु से युक्त हो तो सुख, शुक्र से युक्त हो तो शत्रुता, शनि से युक्त हो तो वैराग्य, यदि दो पापग्रहों से युक्त हो तो मरण होता है ॥ ५४ ॥

(४) विवाह में पञ्चशलाकावेध

वेधोऽन्योन्यमसौ विरञ्च्यभिजितोर्याभ्यानुराधर्क्षयो-

विश्वेन्द्रोर्हरिपित्र्ययोर्ग्रहकृतो हस्तोत्तरामाद्रयोः ।

स्वातीवारुणयोर्भवेन्निश्रुतिमादित्योस्तथोफान्त्ययोः

खेटे तत्र गते तुरीयचरणाद्योर्वा तृतीयद्वयोः ॥५५॥

यह पञ्चशलाकावेध-परस्पर रोहिणी अभिजित् में, भरणी अनु-राधा में, उत्तराषाढ मृगशिरा में, श्रवण मघा में, हस्त उत्तराभाद्र में,

स्वाती शतभिषा में, मूल पुनर्वसु में तथा उत्तरफाल्गुनी रेवती में होता है। अर्थात् परस्पर वेध के जो दो-दो नक्षत्र हैं इनमें एक में, कोई ग्रह हो तो दूसरा नक्षत्र विद्ध समझा जाता है, जो विवाह में त्याज्य कहा गया है। इस प्रकार का वेध गौण (साधारण) है। वास्तव में एक नक्षत्र के प्रथम चरण में ग्रह हो तो दूसरे का चतुर्थ चरण और चतुर्थ चरण में हो तो दूसरे का प्रथम चरण विद्ध होता है एवं द्वितीय और तृतीय चरण में परस्पर वेध होता है। पापग्रहकृत चरण वेध अवश्य त्याज्य कहा गया है ॥ ५५ ॥

प्रसंगवश अन्य कर्मों में सप्तशलाका वेध

शक्रेज्ये शतमानिले जलशिवे पौष्णार्यमर्षे वसुः

द्रीशे वैश्वसुधांशुमे ह्यमगे सार्पानुराधे तथा ।

हस्तोपान्तिममे कृशानुहरिमे मूलादिती त्वाष्ट्रमे-

ऽजाङ्घ्री याम्यमघे कृशानुहरिमे विद्धेऽद्विरेखे मिथः ॥५६॥

(जिस प्रकार विवाह में पञ्चशलाका चक्र में दो-दो नक्षत्रों में परस्पर वेध होता है, उसी प्रकार उपनयन आदि शुभ कर्मों में सप्तशलाका चक्र में दो-दो नक्षत्रों में परस्पर वेध होता है) जैसे ज्येष्ठा पुष्य में, शतभिषा स्वाती में, पूर्वाषाढ आर्द्रा में, रेवती उत्तर पूर्वफाल्गुनी में, आश्लेषा अनुराधा में, हस्त-उत्तरभाद्र में, रोहिणी अभिजित् में, मूल पुनर्वसु में, चित्रा पूर्वभाद्र में, भरणी मघा में, कृत्तिका श्रवण में परस्पर वेध समझना चाहिये। चरण वेध भी उसी प्रकार प्रथम चतुर्थ और द्वितीय में होता है ॥ ५६ ॥

(५) यामित्रदोष

लग्नाच्चन्द्रान्मदनमवनगे खेटे न स्यादिह परिणयनम् ।

किं वा बाणाशुगमितलवगे यामित्रं स्यादशुभकरमिदम् ॥५७॥

लग्न या चन्द्रमा से सप्तम स्थान में कोई ग्रह हो तो यामित्र (जामित्र) दोष होता है। यदि लग्नगत नवमांश या चन्द्रगत नवमांश से ५५वें नवमांश में ग्रह हो (अर्थात् लग्न ग्रह का अन्तर ६ राशि हो) तो पूर्ण यामित्र होता है। यह विवाह में अशुभप्रद होता है।

साधारण यामित्र अल्प दोषावह और पूर्ण यामित्र अधिक दोषप्रद होता है। एवं शुभग्रह कृत यामित्र स्वल्प दोषप्रद और पापग्रहकृत अधिक दोषप्रद होता है ॥ ५७ ॥

(६) बाणदोष-

रसगुण - शशिनागाब्धाढ्यसंक्रान्तियातां -

शकमिति - रथतष्टाऽङ्कैर्यदा पञ्च शेषः ।

रुगनल - नृप - चौरा - मृत्यु-संज्ञश्च बाणो

नवहृतशरशेषे शेषकैश्च सशय्यः ॥५८॥

तात्कालिकसूर्य के भुक्तांश को ५ स्थान में रखकर क्रम से ६, ३, १, ८, ४ जोड़कर सब में ६ के भाग देने से प्रथम स्थान में ५ शेष बचे तो रोगबाण, द्वितीय स्थान में अग्नि, तृतीय स्थान में राज, चतुर्थ स्थान में चोर और पञ्चम स्थान में मृत्युबाण होता है ॥ ५८ ॥

विन्ध्य से दक्षिण देश में बाणदोष-

लग्नेनाढ्या याततिथ्योऽङ्कतष्टाः

शेषे नाग - द्व्यब्धि - तर्केन्दुसंख्ये ।

रोगो बह्वा राजचौरो च मृत्यु-

वीणश्चायं दाक्षिणात्यप्रसिद्धः ॥५९॥

जिस तिथि में विवाह करना हो, उसके पूर्व की गत तिथि संख्या में लग्नराशि संख्या जोड़कर उसमें ६ के भाग से ८ शेष बचे तो रोग बाण, २ शेष में अग्निबाण, ४ शेष में राजबाण, ६ शेष में चोरबाण और ० शेष बचे तो मृत्यु बाण होता है ॥ ५९ ॥

समय और कृत्यों में त्याज्य बाण-

रात्रौ चोररुजौ दिवा नरपतिर्वह्निः सदा सन्ध्ययो-

मृत्युश्चाथ शनौ नृपो विदि मृतिभौमेऽग्निचौरी रवौ ।

रोगोऽथ व्रत - मेहगोप - नृप - सेवा - यान - पाणिग्रहे

वर्ज्याश्च क्रमतो बुधै रुगनलक्ष्मापाल-चौरा मृतिः ॥६०॥

चोर और रोग बाण रात्रि में, राज-बाण दिन में, अग्नि बाण सर्वदा और मृत्यु बाण सन्ध्या समय में त्याज्य है । शनिवार में रोग बाण, बुध में मृत्युबाण, मङ्गल में अग्निबाण और चोर बाण तथा रविवार में रोगबाण त्याज्य है । एवं उपनयन में रोगबाण, गृह कम में अग्निबाण, राजसेवा (नौकरो) में राजबाण, यात्रा मे चोरबाण और विवाह में मृत्युबाण त्याज्य है ॥ ६० ॥

(७) एकार्गल दोष (खाजूर)-

व्याघात - गण्ड - व्यतिपात - पूर्वे

शूलान्त्यवज्र परिघाति-गण्डे ।

एकार्गलाख्यो ह्यभिजित् - समेतो

दोषः शशा चेद् विषमर्क्षगोऽर्कात् ॥६१॥

व्याघात, गण्ड, व्यतिपात, वज्र, परिघ, अतिगण्ड इन योगों में कोई योग हो, उस दिन सूर्याश्रित नक्षत्र से चन्द्राश्रित नक्षत्र की संख्या विषम हो तो एकार्गल दोष होता है। यहाँ नक्षत्रों की गणना अभिजित् समेत होती है ॥ ६१ ॥

(८) उपग्रह दोष-

शराष्टदिक्-शक्रनगातिधृत्यस्तिथिर्धृतिश्च प्रकृतेश्च पञ्च ।

उपग्रहाः सूर्यमतोऽञ्जताराः शुभा न देशे कुरु-वाह्लिकानाम् ॥ ६२ ॥

यदि सूर्याश्रित नक्षत्र से-चन्द्र नक्षत्र तक गिनने से ५, ८, १०, १४, ७, १६, १५, १८, २१, २२, २३, २४, २५ इनमें कोई संख्या हो तो उपग्रह दोष कहलाता है। यह कुरु और वाल्लिक देश में शुभ नहीं होता है ॥ ६२ ॥

(९) क्रान्तिसाम्य दोष-

पञ्चास्याजो गोमृगौ तौलिङ्गुम्भौ कन्यामीनौ कर्क्यली चापयुग्मे ।

तत्रान्योन्यं चन्द्रभान्योर्निरुक्तं क्रान्तेः साम्यं नो शुभं मंगलेषु ॥६३॥

सिंह, मेष, इन दो राशियों में यदि किसी एक में सूर्य और दूसरे में चन्द्रमा हो तो-सूर्य और चन्द्रमा की क्रान्ति को समता होती है (जो क्रान्तिसाम्य दोष कहलाता है।) एवं वृष, मकर तथा तुला, कुम्भ, और कन्या, मीन और कर्क वृश्चिक, एवं धनु मिथुन इन दो-दो राशियों में भी सूर्य चन्द्र के रहने पर परस्पर क्रान्तिसाम्य दोष होता है। जो सब मंगल कार्य में अशुभ होता है ॥ ६३ ॥

(१०) दग्ध तिथि-

चापान्त्यगे गोघटगे पतङ्गे कर्काजगे स्त्रीमिथुने स्थिते च ।

सिंहालगे नक्रघटे समाः स्युस्तिथ्यो द्वितीयाप्रमुखाश्च दग्धाः ॥६४॥

सूर्य यदि धनु या मीन में हो तो द्वितीया, वृष, कुम्भ में हो तो चतुर्थी, कर्क मेष में हो तो षष्ठी, मिथुन कन्या में हो तो अष्टमी, सिंह

वृश्चिक में हो तो दशमी और मकर या तुला में हो तो द्वादशी तिथि दग्ध होती है। यह भी विवाहादि शुभ कार्यों में वर्जित है ॥ ६४ ॥

विवाह में विहित लग्न नवमांश—

मृतिमवनांशो यदि च विलग्ने
तदधिपतिर्वा न शुभकरः स्यात् ।

व्ययमवनं वा भवति तदशं—

स्तदधिपतिर्वा कलहकरः स्यात् ॥६५॥

वर और कन्या के जन्मराशि लग्न से अष्टम राशि लग्न या नवमांश में हो तो शुभ नहीं होता है। एवं जन्म-राशि लग्न से द्वादश राशि भी लग्न और नवमांश में कलहकारक होता है। इसलिये लग्न स्थिर करने के समय इसका पूर्ण ध्यान रखना चाहिये।

विवाह में शुभग्रह की राशि और अपनी जन्म राशि या लग्न से उपचय (३, ६, १०, ११) कोई भी राशि लग्न हो तो विहित है ॥६५॥

विवाह लग्न में विहित नवमांश—

कार्मक - तौलिक - कन्या - युग्मलवे भ्रषणे वा ।

यर्हि मधेदुपयामस्तर्हि सती खलु कन्या ॥ ६६ ॥

घनु, तुला, कन्या, मिथुन और मीन के नवमांश में विवाह हो तो कन्या सती होती है ॥ ६६ ॥

विशेष—

अन्त्यनवांशो न च परिणोया वचनवर्गोत्तममिह हित्वा ।

नो चरलग्ने चरलवयोगं तौलिमृगस्थे शशभृति कुर्यात् ॥६७॥

इतना ध्यान रहे कि वर्गोत्तम नवमांश को छोड़कर अन्तिम नवमांश में विवाह नहीं करना चाहिये। और चरलग्न में चरनवमांश नहीं रखना चाहिये ॥ ६७ ॥

अथ विवाह मुहूर्त—(नाह्लिदत्त)

रेवत्युच्चररोहिणीमृगमघामूलानुराधाकर-

स्वातीषु प्रमदातुलामिथुनके लग्ने विवाहः शुभः ।

मासाः फाल्गुनमाघमार्गशुचयो ज्येष्ठस्तथो माघवः

शस्ताः सौम्यदिनं तथैव तिथयो रिक्ताकुहूर्जिताः ॥६८॥

रेवती, तीनों उत्तरा, रोहिणी, मृगशिरा, मघा, मूल, अनुराधा हस्त, स्वाती इन नक्षत्रों में, कन्या तुला मिथुन लग्न में, फाल्गुन माघ मार्ग (अग्रहण), आषाढ ज्येष्ठ इन मासों में (शनि मंगल छोड़कर) और शुभ दिन में तथा रिक्ता तिथि और अमावस्या को छोड़कर और तिथियों में विवाह शुभ है ॥ ६८ ॥

विशेष-

मिथुनकुम्भमृगालिवृषाजगे मिथुनगोऽपि रवौ त्रिलवे शुचेः ।

अलिमृषाजगते करपीडनं भवति कार्तिकपौषमधुष्वपि ॥६९॥

मिथुन के सूर्य (आषाढ) में, कुम्भ के सूर्य (फाल्गुन) में, मकर के सूर्य (माघ) में, वृश्चिक के सूर्य (अग्रहण) में, वृष के सूर्य (ज्येष्ठ) में, मेष के सूर्य (वैशाख) में विवाह शुभ है । विशेष यह है कि मिथुन के सूर्य रहने पर भी आषाढ के त्रिलव (अर्थात् केवल आषाढ शुक्ल १ से १० दशमी पर्यन्त) विवाह शम है, हरिशयन में विवाह वर्जित है । तथा वृश्चिक, मकर मेष वा कुम्भ के सूर्य रहे तो कार्तिक पौष और चैत्र में भी विवाह शुभ है ॥ ६९ ॥

विवाह में विहित-

केन्द्रे कोणे द्वितीये च तृतीये च शुभग्रहाः ।

पापास्त्रिषष्ठलामेषु स्थिताः श्रेष्ठफलप्रदाः ॥७०॥

विवाह लग्न से १।२।३।४।५।७।८।१०। इन स्थानों में शुभग्रह तथा (३।६।११) इन स्थानों में पापग्रह शुभ फलदायक होते हैं ॥ ७० ॥

विवाह में वर्जित-

जन्ममासर्ष्ववारेषु पित्रोः श्राद्धतिथौ तथा ।

ज्येष्ठापत्यस्य च ज्येष्ठे विवाहं परिवर्जयेत् ॥७१॥

जन्ममास, जन्म नक्षत्र, जन्म दिन में तथा माता-पिताके मरण तिथि में तथा ज्येष्ठ मास में ज्येष्ठ सन्तान का विवाह शुभ नहीं है ॥ ७१ ॥

ज्येष्ठमासो वरो ज्येष्ठस्तथा ज्येष्ठा च कन्यका ।

त्रिज्येष्ठं न शुभं प्रोक्तं मध्यं ज्येष्ठद्वयं स्मृतम् ॥७२॥

ज्येष्ठमास, ज्येष्ठ वर, ज्येष्ठ कन्या ये तीन ज्येष्ठ विवाह में शुभ नहीं हैं । दो ज्येष्ठ मध्यम हैं, अर्थात् एक ज्येष्ठ शुभ है ॥ ७२ ॥

विवाह लग्न में त्याज्य—

लग्ने व्यये शनिस्त्याज्यः षष्ठे शुक्रेन्दुलग्नपाः ।

रन्ध्रे शन्यादयः पञ्च सर्वेऽस्ते च गुरुं विना ॥७३॥

लग्न और द्वादश में शनि, षष्ठ में शुक चन्द्र लग्नेश, अष्टम में शनि, रवि, चन्द्र, भौम, बुध और सप्तम में बृहस्पति को छोड़कर सब ग्रह त्याज्य हैं ॥ ७३ ॥

यामार्धं च व्यतीपातं भद्रां वैधृतिकं तथा ।

वर्जयेत् सर्वकार्येषु रविदग्धं दिनत्रयम् ॥७४॥

अर्धप्रहरा, व्यतीपात योग, भद्रा करण, वैधृति योग, और सूर्य के संक्रान्ति से दूषित ६ दिन (अर्थात् मासान्त संक्रान्ति मासादि) सब शुभ कार्य में त्याग करना चाहिये ॥ ७४ ॥

क्षीणेऽस्ते च गुरौ शुक्रे तथा न्यूनाधिमासके ।

गण्डान्ते च विवाहादि शुभं कर्म विवर्जयेत् ॥७५॥

गुरु शुक क्षीण हो अथवा अस्त हो तथा क्षयमास और मलमास में तथा गण्डान्त में विवाह उपनयन, मुण्डन आदि शुभ कार्य न करे ॥७५॥

अथ गण्डान्तलक्षण—

ज्येष्ठापौष्णभसार्पभान्त्यघटिकायुग्मं च मूलाश्विनी-

पित्र्यादौ घटिकाद्वयं निगदितं तदुभयस्य गण्डान्तकम् ।

कर्काल्यण्डजभान्ततोऽर्थघटिका सिंहाश्वमेषादिगा

पूर्णान्ते घटिकात्मकं त्वशुभदं नन्दातिथेश्चादिमम् ॥७६॥

ज्येष्ठा, रेवती, आश्लेषा इन नक्षत्रों के अन्त्य की दो घड़ी और मूल, अश्विनी, मघा इनमें आदि की दो-दो घड़ी नक्षत्र गण्डान्त है, और कर्क, वृश्चिक, मीन इनके अन्त्य को आधी घड़ी, सिंह, घनु, मेष के आदि की आधी घड़ी राशि या लग्न गण्डान्त है । तथा पूर्णातिथि के अन्त्य को एक घड़ी, नन्दा तिथि के आदि की १ घड़ी तिथि गण्डान्त होता है ॥ ७६ ॥

लग्न भंगकारक योग—

व्यये शनिः खेऽत्रनिजस्तृतीये

भृगुस्तनौ चन्द्रखला न शस्ताः ।

लग्नेट् कविर्ग्लौश्च रिपौ मृतौ ग्लौ-

लग्नेट् शुभाराश्च मदे च सर्वे ॥७७॥

विहित लग्न में भी लग्न से व्ययस्थान में शनि, १०वें में मंगल, तृतीय में शुक्र, लग्न में चन्द्रमा और पापग्रह, षष्ठ स्थान में लग्नेश शुक्र और चन्द्रमा, अष्टम स्थान में लग्नेश शुभग्रह और मंगल तथा सप्तम में सब (पाप या शुभ कोई भी) ग्रह अशुभ (लग्न भङ्ग कारक) होते हैं ॥७७॥

लग्न में ग्रहों के प्रशस्त (रेखाप्रद) स्थान-

व्यायाष्टषट्सु रविकेतुतमोऽर्कपुत्रा-

स्व्यायारिगः क्षितिसुतो द्विगुणायगोऽब्जः ।

सप्तव्ययाष्टरहितौ ज्ञगुरु सितोऽष्ट-

त्रिदूनषड्व्ययगृहान् परिहृत्य शस्तः ॥७८॥

रवि, केतु, राहु और शनि ये—३, ११, ८, ६ स्थान में, मंगल ३ ११ में, चन्द्रमा २, ३, ११ में, बुध और गुरु ७, ८, १२ को छोड़कर शेष स्थानों में, शुक्र ८, ३, ७, ६, १२ को छोड़कर अन्य स्थानों में प्रशस्त होते हैं ॥ ७८ ॥

प्रशस्त स्थान स्थित ग्रहों का विशोपक बल-

द्वौ द्वौ ज्ञ-भृग्वोः पञ्चेन्दौ रवौ सार्धत्रयो गुरौ ।

रामा मन्दागुकेत्वारे सार्धैकैकं विशोपकाः ॥७९॥

उपरोक्त प्रशस्त स्थान में बुध हो तो २, शुक्र हो तो २, चन्द्र हो तो ५, रवि हो तो ३॥, गुरु हो तो ३ तथा शनि, केतु और मंगल हो तो प्रत्येक को १॥, १॥ विशोपक बल होता है ॥ ७९ ॥

इति विवाहप्रकरण ।

❀ अथ वधूप्रवेशप्रकरण ❀

वधूप्रवेश मुहूर्त-

समाद्रिपञ्च क्लृदिने विवाहाद्द्वधूप्रवेशोऽष्टिदिनान्तराले ।

शुभः परस्ताद्विषमाब्दमास-दिनेऽक्षवर्षात्परतो यथेष्टम् ॥ १ ॥

* विवाह दिन से १६ दिन के भीतर पञ्चम सप्तम नवम तथा सम (६।८।१०।१२।१४।१६ वें) दिन में वधूप्रवेश शुभ है, १६ दिन के बाद विषममास, विषमवर्ष, विषम (१।३ इत्यादि) दिन में शुभ है + और ५ वर्ष के बाद जब इच्छा हो शुभ मुहूर्त में वधूप्रवेश शुभ है ॥ १ ॥

नक्षत्रादि शुद्धि-

ध्रुवक्षिप्रमृदुश्रोत्रवसुमूलमघानिते ।

वधूप्रवेशः सन् नेष्टो रिक्तारार्के बुधे परैः ॥ २ ॥

ध्रुव संज्ञक, क्षिप्र संज्ञक, मृदु संज्ञक, श्रवण, धनिष्ठा, मूल, मघा, रेवती इन नक्षत्रों में वधूप्रवेश शुभ है। और रिक्ता तिथि रविवार मंगलवार में अशुभ है। कितने आचार्य के मत से बुध में भी वधूप्रवेश अशुभ है ॥ २ ॥

वधूप्रवेश में सन्मुख शुक्र का दोष नहीं-

लल्लाचार्य-

स्वभवनपुरप्रवेशे देशानां विप्लवे तथोद्वाहे ।

नववध्वा गृहगमने प्रतिशुक्रविचारणा नास्ति ॥ ३ ॥

अपने ग्राम या गृह में प्रवेश के समय, देशों में उपद्रव होनेपर तथा नवविवाहिता वधू के पतिगृह में प्रवेश में सन्मुख शुक्र का दोष नहीं होता है ॥ ३ ॥

भास्करः-

न शुक्रदोषो न सुरेज्यदोषो ताराबलं चन्द्रबलं न योज्यम् ।

उद्वाहिताया नवकन्यकाया दीपोत्सवे शोभनमङ्गलानि ॥ ४ ॥

अर्थ स्पष्ट है ॥ ४ ॥

* नूतनविवाहिता कन्या के प्रथम स्वामी के गृह में प्रवेश करना वधूप्रवेश कहलाता है।

+ १६ दिन के बाद १ मास के भीतर विषम दिन में, १ मास के बाद एक वर्ष के भीतर विषम मास में तथा १ वर्ष के बाद विषम वर्ष में वधूप्रवेश शुभ है।

कालविवेक--

रात्रौ विवाहमे शस्तः सन्मुहूर्ते स्थिरोदये ।

वधूप्रवेशो नैवात्र प्रतिशुक्रभयं भवेत् ॥ ५ ॥

रात्रि में, विवाहविहित नक्षत्रों में, शुभ मुहूर्त में वधूप्रवेश प्रशस्त है ।
इसमें सन्मुख शुक्र का दोष नहीं होता है ॥ ५ ॥

नववधू पाककर्म--

मृगोत्तरातिष्यकृशानुसार्पे श्रुतित्रये ब्रह्म-द्विदैवधिष्ये ।

शुभे तिथौ व्यासरवौ प्रकुर्यान् नवा वधूर्नूतनपाककर्म ॥ ६ ॥

मृगशिरा, तीनों उत्तरा, पुष्य, कृत्तिका, आश्लेषा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, रोहिणी, विशाखा इन नक्षत्रों में, शुभ तिथि में और रवि मङ्गल से भिन्न वार में वधू प्रथम पाक कर्म आरम्भ करे ॥ ६ ॥

इति वधूप्रवेश प्रकरण ।

---: ० :---

❀ अथ द्विरागमन प्रकरण ❀

उद्वाहसमये बाला व्रजेद्भर्तृगृहं प्रति ।

पुनस्तातगृहाद्यात्रा तद्द्विरागमनं स्मृतम् ॥ १ ॥

विवाह समय में वधू अपने पति के घर में जाती है वह वधूप्रवेश कहलाता है । पुनः पिता के घर में आकर पतिगृह की यात्रा को द्विरागमन कहते हैं ॥ १ ॥

विहित नक्षत्रादि--

पूषापुष्यपुनर्वसुत्तरमृगा

मैत्राश्वहस्तत्रयी

रोहिण्यः श्रवणो द्विरागमविधौ मूलं धनिष्ठा तथा ।

कुम्भाजालिरविश्व वर्षमसमं त्यक्त्वा कुजाकी च गो-

कन्यामन्मथमीनतौलिमकरा लग्नानि यात्रातिथिः ॥ २ ॥

रेवती, पुष्य, पुनर्वसु, तीनों उत्तरा, मृगशिरा, अनुराधा, अश्विनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, रोहिणी, श्रवण, मूल, धनिष्ठा ये नक्षत्र, कुम्भ, मेष, वृश्चिक में सूर्य हो तथा विवाह से विषम (१ । ३ इत्यादि) वर्ष में, शनि, मंगल को छोड़कर अन्य वार, वृष, कन्या, मिथुन, तुला, मकर ये लग्न और यात्रोक्त तिथि ये द्विरागमन में शुभ हैं ॥ २ ॥

द्विरागमन में त्याज्य—

अस्तंगते भृगोः पुत्रे तथा सम्मुखमागते ।

नष्टे जीवे निरंशे वा नैत्र संचालयेद्बधूम ॥ ३ ॥

शुक्र अस्त हो अथवा संमुख हो तथा बृहस्पति अंशरहित अथवा अस्त हो तो द्विरागमन न करे ॥ ३ ॥

गर्भिण्या बालकेनापि नववध्वा द्विरागमे ।

पदमेकं न गन्तव्यं शुके सम्मुखदक्षिणे ॥ ४ ॥

शुक्र यदि सम्मुख वा दक्षिण हो तो गर्भिणी या बालक के सहित अथवा नवीना का द्विरागमन न करे ॥ ४ ॥

विशेष—

काश्यपेषु वशिष्ठेषु चाऽत्रिभृग्वङ्गिरस्सु च ।

भारद्वाजेषु वात्सेषु प्रतिशुक्रो न दुष्यति ॥ ५ ॥

काश्यप, वशिष्ठ, अत्रि, भृगु, अंगिरा, भारद्वाज, वत्स इनके गोत्रों में सम्मुख शुक्र का दोष नहीं है ॥ ५ ॥

रेवत्यादि मृगान्तश्च यावत्क्षिप्रति चन्द्रमाः ।

तावच्छुक्रो भवेदन्धः सम्मुखे दक्षिणे शुभः ॥ ६ ॥

रेवती से मृगशिरा पर्यन्त जब तक चन्द्रमा रहते हैं तब तक शुक्र अन्ध रहता है । इनमें सम्मुख दक्षिण शुक्र का दोष नहीं होता ॥ ६ ॥

अस्तेऽथवा शिशुत्वे वा बालत्वे गुरुशुक्रयोः ।

शुभो द्विरागमो यावद् वर्षमेकं विवाहतः ॥ ७ ॥

गुरु शुक्र के अस्त, शिशुत्व, वृद्धत्व में भी विवाह से १ वर्ष के भीतर द्विरागमन शुभ है ॥ ७ ॥

पुनः विशेष—

सम्मुखे दक्षिणे राहौ शुभो बध्वा द्विरागमः ।

द्विरागमगता कन्या चागता पितृवेशमनि ॥ ८ ॥

बालिका युवती वापि ततो भर्तृगृहं प्रति ।

पदमेकं न गच्छेत्मा राहौ सम्मुखदक्षिणे ॥ ९ ॥

सम्मुख दक्षिण राहु में द्विरागमन शुभ है । द्विरागमन में पति के भवन जाकर फिर पिता के गृह में आवे लो बाला रहे वा युवती सम्मुख दक्षिण राहु में स्वामी के भवन के प्रति एक पद भी न चले ॥ ८-९ ॥

इति द्विरागमन प्रकरण ।

❀ प्रथम रजोदर्शन फल ❀

आद्यं रजः शुभं माघमार्गाराधेषफाल्गुने ।

ज्येष्ठश्रावणयोः शुक्ले सद्वारे सत्तनौ दिवा ॥ १ ॥

श्रुतित्रयमृदुक्षिप्रध्रुवस्वाती पिताम्बरे ।

मध्यं च मूलादितिभे पितृमिश्रे परेष्वसत् ॥ २ ॥

माघ, मार्गशर्ष, वैशाख, आश्विन, फाल्गुन, ज्येष्ठ, श्रावण मास, शुक्ल पक्ष, शुभ ग्रह के दिन, शुभ लग्न, दिन के समय, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, मृदु क्षिप्र ध्रुव संज्ञक, स्वाती नक्षत्र, और उजला वस्त्र इन सबों में स्त्रियोंका प्रथम मासिक धर्म होना शुभ है । तथा मूल, पुनर्वसु, मघा, मिश्रसंज्ञक इन नक्षत्रों में मध्यम और शेष मास वारादि में अशुभ है ॥ १-२ ॥

गर्भाधान मुहूर्त-

गण्डान्तं त्रिविधं त्यजेन्निघनजन्मर्क्षे च मूलान्तकं

दास्रं पौष्णमथोपरागदिवसं पातं तथा वैधृतिम् ।

पित्रोः श्राद्धदिनं दिवा च परिघाद्यर्धं स्वपत्नीगमे-

भान्युत्पातहतानि मृत्युभवनं जन्मर्क्षतः पापभम् ॥ ३ ॥

तीनों प्रकार के गण्डान्त, सप्तम तारा, जन्म तारा, मूल, भरणी, अश्विनी, रेवती और ग्रहण दिन, पात योग, वैधृति योग, माता पिता के श्राद्ध दिन तथा दिवस, परिघ योग का पूर्वार्ध, उत्पात, हस्त नक्षत्र, जन्म राशि से अष्टम राशि लग्न में हो और पापग्रह की राशि इन सबों को अपनी स्त्री के समागम में त्याग करना चाहिये ॥ ३ ॥

तथा च-

भद्राषष्ठो पर्वरिक्ताश्च सन्ध्यामौमार्काकीनाद्यरात्रीश्चतस्रः ।

गर्भाधानं त्र्युत्तरेन्द्रकर्मैत्रब्राह्मस्वातीविष्णुवस्वम्बुपे सत् ॥४॥

भद्रा, षष्ठी, पर्वदिन, रिक्ता तिथि, सन्ध्या-समय, मंगल, रवि, शनि-वार, रजो दर्शन से चार रात्रि इन सबों को छोड़कर, तीनों उत्तरा, मृगशिरा, हस्त, अनुराधा, रोहिणी, स्वाती, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा इन नक्षत्रों में गर्भाधान शुभ है ॥ ४ ॥

गण्डान्त में जन्मनिषेध-

नक्षत्रराशिगण्डान्ते यदि जन्म भवेत्तदा ।

शान्तिः कार्या प्रयत्नेन तत्पित्रा विधिपूर्विका ॥५॥

यदि नक्षत्र राशि गण्डान्त में किसी का जन्म हो तो उसका पिता अवश्य दोष-निवृत्ति के लिये विधिपूर्वक शान्ति करे ॥ ५ ॥

सीमान्त पुंसवन मुहूर्त—

जीवाकारदिने मृगेज्यनिश्रुतिश्रोत्रादितिग्रहनभै

रिक्तामार्करसाष्टवर्ज्यतिथिभिर्षष्टेऽष्टमे मासि वा ।

सीमान्तोऽथ तृतीयमासि शुभदैः केन्द्रत्रिकोणे खलै-

र्त्ताभारित्रिषु पुंसवं शुभयुते लग्ने च पुंभांशके ॥६॥

बृहस्पति, रवि या मंगल के दिन में, मृगशिरा, पुष्य, मूल, श्रवण, पुनर्वसु, हस्त इन नक्षत्रों में, रिक्ता, अमावस्या, द्वादशी, षष्ठी, अष्टमी इन तिथियों को छोड़कर और तिथियों में, शुभग्रह केन्द्र त्रिकोण में हों पापग्रह ३, ६, ११वें स्थान में हों, शुभ तथा पुरुष राशिका नवांश लग्न में हो तो ६वें ८वें मास में सीमान्त तथा तीसरे ३ मास में पुंसवन कर्म शुभ है ॥ ६ ॥

अथ जातकर्म—

पर्वरिक्तोनसद्वारे मृदुक्षिप्रचरध्वे ।

जन्मन्येकादशे वाऽहि द्वादशे जातकर्म सत् ॥७॥

पर्व, रिक्ता रहित तिथि तथा शुभ दिन में, मृदु संज्ञक, क्षिप्र चर ध्रुवसंज्ञक नक्षत्रों में, जन्म दिन में तथा ११वें अथवा १२वें दिन में जातकर्म शुभ है ॥ ७ ॥

शिशुविलोकन—

तृतीये मासि तुर्ये वा यात्रोक्तेऽह्यर्कचन्द्रयोः ।

वारे च कुलरीत्या वा शुभं शिशुविलोकनम् ॥८॥

तृतीय वा चतुर्थ महीने में, यात्रा में कथित मुहूर्तों में वा रवि चन्द्रवार में अपने कुलानुसार बालक को देखना शुभ है ॥ ८ ॥

दुग्धदान—

रिक्तां भौमं परित्यज्य विष्टिं पातं सवैधृतिम् ।

मृदुध्रुवक्षिप्रमेषु स्तन्यपानं हितं शिशोः ॥९॥

रिक्ता तिथि, मङ्गलवार, भद्रा, पात, वैधृति योग इनको छोड़कर बाकी दिन और तिथि में तथा मृदु ध्रुव क्षिप्र संज्ञक नक्षत्रों में बालक को स्तनपान कराना शुभ है ॥ ९ ॥

सूती स्नान-

व्यर्कषड्वसुरिक्तोऽहि कुजाकेंज्ये ध्रुवे करे ।

विचित्रमृदुवाताश्वे सूतिस्नानं शुभं स्मृतम् ॥१०॥

१२, ६, ८, रिक्ता इनसे भिन्न तिथियों में, मंगल, रवि, गुरुवार में, चित्रा को छोड़कर मृदु संज्ञक (मृगशिरा, रेवती, अनुराधा), स्वाती, अश्विनी इन नक्षत्रों में सूती स्नान शुभ है ॥ १० ॥

अथ नामकरण-(नारद-मनु)

सूतकान्ते नामकर्म विधेयं स्वकुलोचितम् ।

पुण्ये तिथौ मुहूर्ते वा नक्षत्रे वा गुणान्विते ॥११॥

जन्म, सूतक के अन्त में (अर्थात् ब्राह्मण का ११वें दिन, क्षत्रिय का १३वें दिन, वैश्य का १६वें दिन, शूद्र का १३वें दिन में) अपने कुलानुसार बालक का नाम धरे । वा पुण्यतिथि, पुण्य मुहूर्त वा पुण्य नक्षत्र में नामकरण शुभ है ॥ ११ ॥

दन्तोत्पत्तिकथन-

जन्मतः पञ्चमासेषु दन्तोत्पत्तिर्न शोभना ।

शुभा षष्ठादिके ज्ञेया न सदन्तजनः शुभा ॥१२॥

जन्म से पाँच महीने तक दाँत निकलना शुभ नहीं है और छठें आदि महीनों में शुभ है तथा दन्त सहित बालक का जन्म शुभ नहीं है ॥ १२ ॥

दोलारोहण-निष्क्रमण मुहूर्त-

जन्मार्कभूपधृतिदिङ्मितवासरे स्या-

द्वारे शुभे मृदुलघुध्रुवभैः शिशूनाम् ।

दोलाधिरुदिरथ निष्क्रमणं चतुर्थ-

मासेगमोक्तसमयेऽर्कमितेऽहि वा स्यात् ॥१३॥

जन्म से १०, १२, १६, १८वें दिन में, शुभग्रह के वार में, मृदु लघु ध्रुव संज्ञक नक्षत्रों में बालक को दोला पर चढ़ाना शुभ है । तथा चौथे महीने में वा जन्म से १३वें दिन में, यात्रोक्त मुहूर्त में बालक को प्रथम घर से बाहर ले जाना शुभ है ॥ १३ ॥

जन्मनक्षत्र में वर्ज्य-

निष्कासनं प्राशनकर्णवेधौ क्षौरं विवादं गमनं च युद्धम् ।

श्राद्धं गृहं वा कुपिभेषजौ च न जन्मभे शस्तमुशान्ति सन्तः ॥१४॥

निष्कासन, अन्नप्राशन, कर्णवेध और विवाद (मुकदमा, कलह आदि), यात्रा, युद्ध, खेती, औषधि ये जन्म नक्षत्र में नहीं करना चाहिये ॥ १४ ॥

अथ अन्नप्राशन—

पूर्वाद्राभरणी शुजङ्गवरुणांस्त्यक्त्वा कुजार्की तथा

नन्दां पर्वं च सप्तमीमपि तथा रिक्तामपि द्वादशीम् ।

स्यात् षष्ठाष्टमसि चाद्यमशनं स्त्रीणां पुनः पञ्चमे

गोकन्याभ्रषमन्मथेषु धवले पक्षे च योगे शुभे ॥१५॥

तीनों पूर्वा, आर्द्रा, भरणी, आश्लेषा, शतभिषा नक्षत्र तथा मंगल, शनिवार और नन्दा, पर्व, सप्तमी, रिक्ता, द्वादशी तिथि इन सबों को छोड़कर अवशिष्ट नक्षत्र, तिथिवार में बालक को ६, ८ वें मास में, कन्या को ५ वें मास में, वृष कन्या मीन मिथुन लग्न में, शुक्ल पक्ष में, शुभ योग में प्रथम अन्न भोजन कराना शुभ है ॥ १५ ॥

कर्णवेध—

हित्वैतांश्चैत्रपौषावमहरिशयनं जन्ममासं च रिक्तां

युग्माब्दं जन्मतारामृदुनिवसुभिः सम्मते मास्यथो वा ।

जन्माहात् सूर्यमपैः परिमितदिवसे ज्ञेज्यशुक्रेन्दुवारे-

ऽथोजाब्दे विष्णुयुग्मादितिमडुलघुभैः कर्णवेधः प्रशस्तः ॥१६॥

चैत्र, पौष, तिथिक्षय, हरिशयन, जन्ममास, रिक्तातिथि, समवर्ष, जन्मतारा इन सबों को छोड़, बाकी मास और तिथि में, ६, ७, ८ वें महीने में वा जन्म से १२, १६ वें में, बुध, बृहस्पति, शक्र, सोमवार में, विषमवर्ष में, श्रवण, घनिष्ठा, पुनर्वसु, मृदु लघु संज्ञक नक्षत्रों में कर्णवेध शुभ है ॥ १६ ॥

अथ चूड़ाकरण (मुण्डन) मुहूर्त—

शाक्रोपेतैर्विमैत्रैश्च मृदुक्षिप्रचरैस्तथा ।

कर्णवेधोऽतवर्षादौ चौलं लग्ने शुभे शुभम् ॥ १७ ॥

कर्णवेधोक्त वर्ष मास दिन में तथा अनुराधा को छोड़कर मृदु क्षिप्र चरसंज्ञक तथा ज्येष्ठा नक्षत्र में, तथा शुभ लग्न में चूड़ाकरण (मुण्डन) शुभ है ॥ १७ ॥

विशेष—

ऋतुमत्याः सूतिकायाः सूतोश्चौलादि नाचरेत् ।

ज्येष्ठापत्यस्य न ज्येष्ठे कैश्चिन्मार्गेषु नैष्यते ॥ १ - ॥

ऋतुमती (मास धर्मसहित) और प्रसूतिका के बालक का मुण्डन, उपनयन आदि न करावे । तथा ज्येष्ठ सन्तान का ज्येष्ठ में और किसी के मत से अग्रहण में भी चूड़ाकरण आदि न करावे ॥ १८ ॥

पञ्चमासाधिके मातुर्गर्भे चौलं शिशोर्न सत् ।

पञ्चवर्षाधिकस्येष्टं गर्भिण्यामपि मातरि ॥ १९ ॥

माता के गर्भ को पाँच मास में अधिक हुआ हो तो उस बालक का मुण्डन शुभ नहीं है । अगर ५ वर्ष से अधिक हो तो माता के गर्भ रहने पर भी मुण्डन शुभ होता है ॥ १९ ॥

सामान्यक्षौरकर्म—

त्यक्त्वा रिक्तार्कभौमार्कान् हितं क्षौरं च चौलमे ।

नैव क्षौरक्रिया कार्या स्नाताभ्यक्तकृताशनैः ॥ २० ॥

रिक्तातिथि, रवि मंगल शनिवार को छोड़ कर बाकी तिथि और दिन में तथा चूड़ाकरणोक्त नक्षत्र में क्षौर कराना शुभ है तथा स्नान करके, तेल लगा करके और भोजन करके क्षौर क्रिया न करावे ॥ २० ॥

विशेष—

नृपत्रिप्राज्ञया यज्ञे मरणे वृन्धमोक्षणे ।

प्रयागेऽखिलवारक्षतिथिषु क्षौरमिष्टदम् ॥ २१ ॥

राजा तथा ब्राह्मण की आज्ञा से, यज्ञ में, मरणाशौच में, कैद से छूटने पर और प्रयाग में सब तिथि वार नक्षत्र में क्षौर शुभ है ॥ २१ ॥

निषिद्ध वारादि में क्षौर कराने का मन्त्र—श्रीपतिः

केशवमानर्तपुरं पाटलिपुत्रं पुरीमहीच्छत्राम् ।

दितिमदितिं च स्मरतां क्षौरविधौ भवति कल्याणम् ॥ २२ ॥

अथ उपनयनवर्षशुद्धि—

विप्राणां च शुभं व्रतं निगदितं वर्षेऽष्टमे पञ्चमे

शुद्धेऽर्के च गुरौ तथा क्षितिभुजां षष्ठेऽथवैकादशे ।

वैश्यानां च तथाष्टमेऽतिशुभदं वा द्वादशे वत्सरे

कालेऽथ द्विगुणे गते निगदितं गौणं तदाहुर्विधाः ॥ २३ ॥

जन्म से वा गर्भ से पञ्चम वा अष्टम वर्ष में ब्राह्मणों का तथा छठे या ११वें वर्ष में क्षत्रियों का और ८वें वा १२वें वर्ष में वैश्यों का उपनयन शुभ है । अथवा उपरोक्त काल के दूना समय तक गुरु शुद्धि से उपनयन शुभ है, किन्तु इसको पण्डितों ने गौणपक्ष कहा है ॥ २३ ॥

उपनयन मुहूर्त—

जलमे चाश्वमे हस्तत्रये च श्रवणत्रये ।
 ज्येष्ठामाग्यमृगे पुष्ये रेवत्यां चोत्तरायणे ॥ २५ ॥
 द्वितीयायां तृतीयायां पञ्चम्यां दशमीत्रये ।
 रवौ सोमे गुरौ शुके बुधे वारे सिते दले ॥ २६ ॥
 कन्यायुग्मधनुःसिंहवृषलग्नेषु सद्ब्रतम् ।
 सर्वारम्भोक्तलग्नादिशुद्धिमत्राणि चिन्तयेत् ॥ २७ ॥

पूर्वाषाढ, अश्विनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, श्रवण, घनिष्ठा, शतभिषा, ज्येष्ठा, पूर्वाफाल्गुनी, मृगशिरा, पुष्य इन नक्षत्रों में, उत्तरायण में, २, ३, ५, १०, ११, १२ इन तिथियों में, रवि, सोम, बुध, बृहस्पति, शुक्र इन वारों में, शुक्लपक्ष में कन्या मिथुन धनु सिंह वृष इन लग्नों में उपनयन शुभ है। सर्वारम्भ में जो लग्नशुद्धि कही गयी है वह उपनयन में भी विचारे ॥ २५-२७ ॥

विशेष—

जन्मर्क्षमासलग्नादौ व्रते विद्याधिको व्रती ।
 आद्यगर्भेऽपि विप्राणां क्षत्रादीनामनादिमे ॥ २८ ॥

जन्मनक्षत्र, जन्ममास, जन्मलग्न आदि में ब्राह्मण के प्रथम सन्तान का और क्षत्रिय वैश्य के द्वितीय आदि बालक का उपनयन होने से विद्यावान होता है ॥ २८ ॥

अनध्याय—

पौषे माघे शुचौ ज्येष्ठे रुद्रार्कदिग्द्विसम्मिताः ।

तिथयः क्रमादनध्याया व्रतबन्धे न ते शुभाः ॥ २९ ॥

पौष की ११, माघ की १२, आषाढ की १०, ज्येष्ठ की २ ये तिथियाँ व्रतबन्ध में अनध्याय हैं ॥ २९ ॥

निषेध—

कृष्णे प्रदोषेऽनध्याये शनौ निश्यपराह्लके ।

प्राक्पन्ध्यागर्जिते नेष्टो व्रतबन्धो गलग्रहे ॥ ३० ॥

कृष्णपक्ष में, अनध्याय में, शनिवार में, रात्रि में, अराराह्ल में प्रातः-काल गर्जना हो तो तथा गलग्रह में उपनयन अशुभ है ॥ ३० ॥

प्रदोषलक्षण-

अर्क-तर्क-त्रितिथिषु प्रदोषः स्यात्तदग्रिमैः ।

रात्र्यर्धसार्धप्रहरयाममध्यस्थितैः क्रमात् ॥ ३१ ॥

द्वादशी में अस्त के बाद मध्य रात्रि के भीतर त्रयोदशी हो तथा षष्ठी में सायंकाल से डेढ़ प्रहर रात्रि के भीतर सप्तमी हो, तृतीया में १ प्रहर रात्रि के मध्य चतुर्थी का प्रवेश हो तो प्रदोष होता है ॥ ३१ ॥

गलग्रह तिथि-

त्रयोदश्यादिचत्वारि सप्तम्यादि दिनत्रयम् ।

चतुर्थी चैकतः प्रोक्ताः अष्टावेते गलग्रहाः ॥ ३२ ॥

१३, १४, १५, १, ४, ७, ८, ९ ये तिथियाँ गलग्रह हैं ॥ ३२ ॥

अथ समावर्तन-

केशान्तं षोडशे वर्षे चौलोक्तदिवसे शुभम् ।

त्रतोक्तदिवसादौ हि समावर्तनमिष्यते ॥ ३३ ॥

१६ वें वर्ष में चड़ाकरणोक्त मुहूर्त में केशान्त कर्म, और उपनयनोक्त मुहूर्त में समावर्तन कर्म शुभ है ॥ ३३ ॥

अथ अक्षरारम्भ मुहूर्त-

पञ्चमेऽब्दे गणेशादीन् पूजयित्वाचरायणे ।

लघुश्रोत्रानिलान्त्येशतक्षादितिसमित्रमे ॥ ३४ ॥

शिवार्कदिग्दिषट्पञ्चत्रिसंख्ये च तिथौ दिने ।

व्याकिंभौमे चरद्वयंगे लग्ने सन् स्याच्चिलपिग्रहः ॥ ३५ ॥

पञ्चम वर्ष में उत्तरायण समय में, ११, १२, १०, २, ३, ५, ६ इन तिथियों में लघु संज्ञक श्रवण स्वाती, रेवती, आर्द्रा, चित्रा, पुनर्वसु, अनुराधा इन नक्षत्रों में, मङ्गल शनि को छोड़कर शेष दिन में गणेश विष्णु, सरस्वती, लक्ष्मी, इष्टदेव आदि का पूजन करके प्रथम अक्षरारम्भ करना शुभ है ॥ ३४-३५ ॥

वेदारम्भ-

मृगादिपञ्चके हस्तत्रिके विष्णुत्रिकाशिवमे ।

मैत्रान्त्यमूलपूर्वासु विद्यारम्भः शुभे दिने ॥ ३६ ॥

मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, हस्त, चित्रा, स्वाती, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, अश्विनी, अनुराधा, मूल, तीनों पूर्वा इन नक्षत्रों में, रवि, सोम, बुध, गुरु, शुक इन दिनों में वेदारम्भ शुभ है ॥ ३६ ॥

स्त्रीवस्त्रादिधारण-

करादिपञ्चकेऽश्विन्यां घनिष्ठायां च पूषणि ।

धार्यं ज्ञेयं गुरौ शुक्रे स्त्रीभिर्वस्त्रविभूषणम् ॥ ३७ ॥

हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, अश्विनी, घनिष्ठा, रेवती इन नक्षत्रों में, बुध, रवि, बृहस्पति, शुक्र इन दिनों में स्त्री नवीन वस्त्राभूषण धारण करे ॥ ३७ ॥

पुरुषवस्त्रधारण-

पूभिः पूषादितिद्वन्द्वे रोहिण्युत्तरभेष्वपि ।

गोकन्यायुग्ममीनाख्ये लग्ने धार्यं नवाम्बरम् ॥ ३८ ॥

पूर्वोक्त नक्षत्र दिन तथा रेवती पुनर्वसु पुष्य रोहिणी तीनों उत्तरा इन नक्षत्रों में भी, वृष, कन्या, मिथुन, मीन इन लग्नों में पुरुष नवीन वस्त्र धारण करे ॥ ३८ ॥

स्त्रीकेशबन्धन मुहूर्त-

स्वात्युत्तरश्रवणशङ्करभाश्वमूल-

पुष्यादितीन्द्रुकरपौष्णशचीशभेषु ।

पक्षे सिते विकुजमौरिदिने सुलग्ने

स्यात्केशबन्धनविधिः शुभदो मृगाक्ष्याः ॥ ३९ ॥

स्वाती, तीनों उत्तरा, श्रवण, आर्द्रा, अश्विनी, मूल, पुष्य, पुनर्वसु, मृग-शिरा, रेवती, ज्येष्ठा इन नक्षत्रों में, शुक्ल पक्ष में, शनि, मंगल को छोड़कर और दिन में, शुभ लग्न में स्त्रियों का केशबन्धन शुभ है ॥ ३९ ॥

वस्त्रक्षालन मुहूर्त-

करपञ्चाश्विनोपुष्यवसुभे व्याकिंवित्कुजे ।

षष्ठीरिक्तोनतिथ्यां च वस्त्राणां क्षालनं शुभम् ॥ ४० ॥

हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, अश्विनी, पुष्य, घनिष्ठा इन नक्षत्रों में, शनि, बुध, मंगल को छोड़कर अन्य वारों में तथा रिक्ता, षष्ठी से भिन्न तिथियों में कपड़ा धुलाना शुभ है ॥ ४० ॥

दन्तधावन-

रूपरामरसभूतपर्णिमानागदर्शरविसङ्क्रमे दिने ।

श्राद्धयज्ञनियमेषु पण्डितैर्दन्तकाष्ठकरणं न कीर्तितम् ॥ ४१ ॥

१, ३, ६, १४, १५, ८, अमावस्या इन तिथियों में रवि संक्रान्तदिन में, श्राद्ध यज्ञ व्रत में काष्ठ के दंतुवन नहीं करे ॥ ४१ ॥

औषधमक्षण मुहूर्त-

मृदुमूलचरक्षिप्रे व्याकिंभौमदिने शुभे ।

द्वयङ्गलग्नेष्टमे शुद्धे सत्तियौ भेषजं शुभम् ॥ ४२ ॥

मृदुसंज्ञक मूल चर क्षिप्र संज्ञक नक्षत्रों में, शनि, मंगल छोड़कर और दिन में, द्विस्वभाव राशि लग्न हो उसमें शुभ ग्रह हो और शुभ तिथि में औषध खाना शुभ है ॥ ४२ ॥

रोगविमुक्तस्नान-

व्यन्त्पादितिध्रुवमघानिलसार्पधिष्ये

रिक्ते तिथौ चरतनौ विक्रीन्दुवारे ।

स्नानं रुजा विरहितस्य जनस्य शस्तं

हीने विधौ खलखगैर्भवकेन्द्रकोणे ॥ ४३ ॥

रेवती, पुनर्वसु, ध्रुव संज्ञक, मघा, स्वाती, आश्लेषा इतसे भिन्न नक्षत्रों में, रिक्ता तिथियों में, चर लग्न में, शुक और सोम को छोड़कर और दिनों में, चन्द्रमा क्षीणवली हो, पाप ग्रह ११ और केन्द्र त्रिकोण में हो ऐसे लग्न में रोग छूटने पर स्नान शुभ है ॥ ४३ ॥

स्त्रियों के लिये शतभिषा स्नान निषेध-

चन्द्रे शतभिषां प्राप्त नारी न स्नानमाचरेत् ।

ग्रामात् स्नाता तदा पुष्पैः गन्धाद्यैः पूजयेत्पतिम् ॥ ४४ ॥

चन्द्रमा जिस दिन शतभिषा नक्षत्र में रहे उस दिन स्त्री स्नान न करे । कदाचित् भ्रम से स्नान करे तो गन्ध, पुष्पादि से पति का पूजन करे तो दोष नाश होता है ॥ ४४ ॥

इति रजोस्नान ।

अथ गृहप्रकरण

तत्र वास्तुभूमिशुभाशुभ लक्षण-

पूर्वोत्तरप्लवा भूमिः सुप्रसन्ना समापि च ।
ईशप्लवा निरुच्छिष्टा प्रशस्ता वास्तुकर्मणि ॥ १ ॥
दक्षिणापरनीचा भूः सोषरा विषमापि वा ।
वृक्षच्छायासमायुक्ता वर्जनीया प्रयत्नतः ॥ २ ॥
उक्ताभ्योऽन्यस्वरूपा तु मध्यमा परिकीर्तिता ।
तस्यामपि वसेच्छान्त्याऽथवा देवद्विजाज्ञया ॥ ३ ॥

जो भूमि पूर्व तथा उत्तर दिशा में क्रम से नीची हो अथवा समान हो वा ईशानकोण में नीची हो, देखने में सुन्दर मालूम हो, जहाँ से पहले कोई वास करके चला न गया हो, ऐसी भूमि वास करने में शुभ है। जो भूमि दक्षिण या पश्चिम दिशा में झुकी हो, ऊसर हो, या नीचा-ऊँचा गड्ढा इत्यादि वाली हो, देखने से मन प्रसन्न न होता हो, जहाँ वृक्ष की छाया दिन भर रहती हो; ऐसी भूमि में वास नहीं करना चाहिये। और इन दोनों से भिन्न लक्षण वाली भूमि मध्यम है, उसमें भी देवादिकों को पूजा करके ब्राह्मणों की आज्ञा से वास करना शुभ है ॥ १-३ ॥

अथ भूमिवर्ण-

श्वेता च ब्राह्मणी भूमिः क्षत्रियारुणविग्रहा ।
वैश्या पीततरा ख्याता कृष्णा शूद्राभिधीयते ॥ ४ ॥
ब्राह्मणी ब्राह्मणस्योक्ता क्षत्रिया क्षत्रिस्य च ।
वैश्या वैश्यस्य निर्दिष्टा शूद्रा शूद्रस्य शस्यते ॥ ५ ॥

श्वेत वर्ण भूमि ब्राह्मणों, लाल वर्ण को भूमि क्षत्रिया, पीले वर्ण की वैश्या (वैश्यजाति), काले वर्ण को भूमि शूद्रा कहलाती है। ब्राह्मणी भूमि ब्राह्मण को, क्षत्रिया क्षत्रिय को, वैश्या वैश्य वर्ण को, शूद्रा भूमि शूद्र को शुभ देने वाली होती है ॥ ४-५ ॥

अथ शल्योद्धारः-

स्मृत्वेष्टदेवतां प्रश्नवचनस्याद्यमक्षरम् ।

गृहीत्वा तु तदः शश्याशल्यं सम्यग्विचारयेत् ॥ ६ ॥

इष्ट देवता को स्मरण करके प्रश्न के आदि अक्षर से शल्य है या नहीं। है तो कहाँ है इत्यादि विचार करे ॥ ६ ॥

अकचटतपयश हपया वर्णाः पूर्वादि-मध्येषु ।

शल्यकरा इह नान्ये शल्यगृहे निवसतां नाशः ॥७॥

यदि प्रश्न के आदि में अ-क-च-ट-त-प-य-श-ह-प-य ये वर्ण पड़ें तो यथा क्रम से पूर्वादि दिशाओं में तथा हपय से मध्य में भी शल्य कहना । अस्य अक्षर पड़े तो शल्य नहीं है ऐसा कहना ॥ ७ ॥

शल्यज्ञान-

प्रश्नाद्ये यदि 'अः' प्राच्यां नरशल्यं तदा भवेत् ।

सार्द्धहस्तप्रमाणेन तच्च मानुष्यमृत्युकृत् ॥८॥

आग्नेयां यदि कः प्रश्ने शशशल्यं कारद्वये ।

राजदण्डो भवेत्तत्र भयं नैव निवर्तते ॥९॥

याम्यायां यदि चः प्रश्ने कुर्यादाकटिसंस्थितम् ।

नरशल्यं गृहेशस्य मरणं चिररोगिता ॥१०॥

नैऋत्यां यदि टः प्रश्ने सार्द्धहस्तादधस्तले ।

शुनोऽस्थि जायते तच्च बालानां जनयेन्मृतिम् ॥११॥

तः प्रश्ने पश्चिमायां तु शिशोः शल्यं प्रजायते ।

सार्द्धहस्तमिते तत्र स्वामिनो नेच्छति ध्रुवम् ॥१२॥

वायव्यां यदि पः प्रश्ने तुषाङ्गारश्चतुः करे ।

कुर्वन्ति मित्रनाशं च दुःस्वप्नदर्शनं तथा ॥१३॥

उदीच्यां यदि यः प्रश्ने तदा शल्यं कटेरधः ।

तद्गृहे निर्धनत्वं च कुबेऽसदृशं यदि ॥१४॥

ऐशान्यां यदि शः प्रश्ने गोशल्यं सार्द्धहस्तके ।

तद् गोधनानां नाशाय जायते गृहमेधिनः ॥१५॥

हपया मध्यकोष्ठे च वक्षोमात्रं भवेदधः ।

नृकपालमथो मस्मं लौहं तत्कुलनाशकृत् ॥१६॥

जिस भूमि में शल्य विचार करना हो उस भूमि को नौ भाग बनावे । प्रश्न के आदि अक्षर में यदि 'अ' हो तो पूर्व भाग में डेढ़ हाथ नीचे मनुष्य का शल्य कहना वह नाशकारक होता है । यदि प्रश्न

में ककार हो तो अग्निकोण में २ हाथ नीचे शशक (खरहा आदि) का शल्य राजदण्डकारक होता है । प्रश्नादि में चकार हो तो दक्षिण भाग में कटि पर्यन्त नीचे मनुष्य का शल्य गृहपति को मारने वाला और रोगी करने वाला होता है । प्रश्नादि में टकार हो तो नैऋत्य कोण में डेढ़ हाथ नीचे कुत्ते का शल्य कहना, वह बालकों का मरण कारक होता है । यदि तकार हो तो पश्चिम में बच्चों का शल्य कहना, वह गृहेश को अशुभकारक होता है । यदि पकार हो तो वायव्य कोण में भूसा अथवा कोयला आदि कहना, वहाँ मित्र का नाशक और दुःस्वप्न देखने में आता है । यदि प्रश्नादि में यकार हो तो उत्तर भाग में डाँड़ भर नीचे शल्य कहना, वह दारिद्र्यकारक होता है । यदि प्रश्नादि में शकार हो तो ईशानकोण में गोशल्य डेढ़ हाथ नीचे कहना, वह पशुओं का नाशकारक होता है । यदि प्रश्नादि में ह-प-य इनमें कोई हों तो मध्य भाग में मनुष्य के कपाल वा भस्म अथवा लौह, छाती प्रमाण नीचे में कहना, वह कुल नाशकारक होता है । विशेष—‘प’ पश्चिम और ‘य’ वायव्य में कहा गया है और इन दोनों अक्षर से मध्य में भी शल्य समझना ॥ ८-१६ ॥

अथ शुभाशुभभूमि परीक्षा—

हस्तमात्रं खनेत्खातं जलेनैव प्रपूरयेत् ।

पूरिते वास्तुकर्ता च गच्छेत्पदशतं पुनः ॥१७॥

समागत्याम्भसां वृद्धिं दृष्ट्वा वृद्धिरनुत्तमा ।

समेऽपि स्यान्महावृद्धिः क्षये क्षयमथादिशेत् ॥१८॥

जिस भूमि में वास्तु करना हो उस भूमि में एक हाथ लम्बा एक हाथ चौड़ा एक हाथ गहिरा खात बना कर उसको जल से पूरित करके वास्तुकर्ता वहाँ से एक सौ पद चल कर फिर वहाँ आवे । यदि खात में जल बढ़ जाय तो अत्यन्त वृद्धि, यदि जल न बढ़ न घटे तो भी वृद्धि देनेवाली भूमि होती है, यदि जल घट जाय तो हानि करने वाली भूमि समझना ॥ १७-१८ ॥

अथ गृहसमीप में शुभ वृक्ष

यत्र तत्र स्थिता वृक्षा त्रिलवदाडिमकेसराः ।

पनसो नारिकेलश्च शुभं कुर्वन्ति नित्यशः ॥१९॥

जम्बीरश्च रसालश्च रम्भाशोफालिकास्तथा ।

निम्बाशोकशिरीषाश्च मल्लिकाद्याः शुभप्रदाः ॥२०॥

बेल, दाडिम, केसर, (नागकेसर, मौलसरी), कटहल, नारिकेल ये वृक्ष सर्वत्र शुभ होते हैं तथा नीबू, आम, केला, शृङ्गारहार, नीम, अशोक, शिरीष तथा मल्लिका ये वृक्ष भी घर के समीप में शुभ हैं ॥ १६-२० ॥

अथ अशुभ वृक्ष-

मालतीं चैव चम्पां च केतकीं कुन्दमेव च ।

मुनिवृक्षं ब्रह्मवृक्षं वर्जयेद् गृहसन्निधौ ॥२१॥

तिन्तिलीको वटः प्लक्षः पिप्पलश्च सकोटरः ।

शीरी च कण्टकी चैव निषिद्धास्ते महीरुहाः ॥२२॥

मालती, चम्पा, केवड़ा, कुन्द, अगस्त्य, ब्रह्मवृक्ष, ये घर के समीप में वर्जित हैं तथा तेंतर, बड़, पाकड़, पीपल तथा खोंदर वाला वृक्ष और जिसमें दूध होता हो तथा काँटों वाले जितने वृक्ष हैं वे घर के समीप में निषिद्ध हैं ॥ २१-२२ ॥

विशेष-

वृक्षप्रासादिनी छाया सच्छन्नं यदि मन्दिरम् ।

अचिरेणैव कालेन उद्वासं जायते ध्रुवम् ॥२३॥

वृक्ष की छाया यदि सर्वदा (दिन भर) घर पर पड़ती हो तो वहाँ से शीघ्र उजड़ कर दूसरे स्थान में जाना पड़ता है । इसलिये ऐसे स्थान में वास न करे ॥ २३ ॥

प्रथमान्तयामवज्यं च द्वित्रिप्रहरसम्भवा ।

छाया वृक्षध्वजादीनां सदा दुःखप्रदायिनी ॥२४॥

प्रथम और चतुर्थ प्रहर को छोड़ कर, दूसरे और तीसरे प्रहर में वृक्ष अथवा ध्वजा आदि की छाया मकान पर पड़े तो वह अशुभ होती है ॥ २४ ॥

इति गृहप्रकरण ।

---: ० :---

❀ प्रथम गृहकर्म-(वास्तु) ❀

तत्र वास्तु योग्य ग्राम विचार-

यद्ग्रं द्व्यङ्गसुतेशदिङ्मितमसौ ग्रामः शुभो नाममात्
स्वं वर्गं द्विगुणं विधाय परवर्गाढ्यं गजैः शेषितम् ।

काकिण्यस्त्वनयोश्च तद्विवरतो यस्याऽधिकः सोऽर्थदो-
य द्वारं द्विजवैश्यशूद्रनृपराशीनां हितं पूर्वतः ॥१॥

नाम राशि से ग्राम राशि तक गिनने से २, ६, ५, ११, १० संख्या हो तो ग्राम शम होता है। अथ काकिणो विचार-नाम की वर्ग संख्या को दूनी करके उसमें ग्राम की वर्ग संख्या (विवाह प्रकरण के ४३-४४ श्लोकोक्त) अवर्ग से गिन कर जोड़कर ८ का भाग देने से जो शेष बचे वह नाम की काकिणी होती है। ऐसे ही ग्राम की वर्ग संख्या को दूना करके नाम की वर्ग संख्या जोड़ दें, उसमें ८ का भाग देने से जो शेष बचे वह ग्राम की काकिणी होती है। दोनों में जिसकी काकिणी अधिक होती है वह धन देने वाला होता है। इसलिये नाम की काकिणी अधिक शुभ होती है * ॥ द्वारविचार-ब्राह्मण वर्ण राशिवाले को पूर्व मुख, वैश्य वर्ण राशिवाले को दक्षिण मुख, शूद्र राशिवाले को पश्चिम मुख, क्षत्रिय राशिवाले को उत्तर मुख का द्वार शुभ है ॥ १ ॥

वर्ग की शर संख्या-

अ-क-च-ट-त-प-य-श-वर्गाः पूर्वादीनां दिशां ज्ञेयाः ।

तेषां वसुशररसपुगगिरिशिशिगुणवाहवः क्रमादङ्काः ॥२॥

अवर्ग पूर्व दिशा के, कवर्ग अग्निकोण के, चवर्ग दक्षिण के, टवर्ग नैऋत्य के, तवर्ग पश्चिम के, पवर्ग वायुकोण के, यवर्ग उत्तर के, शवर्ग ईशान कोण के स्वामी हैं। तथा अवर्ग की शर संख्या ८, कवर्ग की ५, चवर्ग की ६, टवर्ग की ४, तवर्ग की ७, पवर्ग की १, यवर्ग की ३, शवर्ग की २ शर संख्या होती है ॥ २ ॥

अथ गृहदशाज्ञान (अर्थात् दशावश से शुभाशुभ गृह)

अवर्गादि शरैः सङ्ख्यां नामग्रामदिशामयीम् ।

नागैर्भागं समाहृत्य शेषं गृहदशा रवेः ॥३॥

* यह रामाचार्य का मत है। नारदादि मुनि के वाक्य से स्पष्ट है कि नाम की काकिणी अधिक होने से शुभ (धनप्रद) होती है।

शुभानां च दशा शस्ता पापानामशुभा स्मृता ।

तमोर्काकिंकुजाः पापाः गुरुद्वेन्दुमिताः शुभाः ॥४॥

नाम ग्राम और दिशा के वर्ग की शर संख्याओं का योग करके उसमें ८ का भाग देने से शेष रव्यादि ग्रह की गृहदशा होती है । शुभ ग्रह की दशा शुभ, पाप ग्रह की दशा अशुभ होती है । राहु, शनि, रवि, मंगल ये पाप ग्रह और बुध, बृहस्पति, शुक्र, सोम ये शुभ ग्रह हैं ॥ ३-४ ॥

उदाहरण—विचार करना है कि जगन्नाथ चौधरी को नेहरा मीजे में दक्षिण दिशा का घर कैसा है—तो यहाँ नाम से चवर्ग की शर संख्या ६, ग्राम की शर संख्या ७, दक्षिण दिशा का चवर्ग है, उसकी शर संख्या ६, सब के योग १६ में ८ का भाग देने से ३ शेष बचा, रवि से गिनने से मंगल की दशा हुई, यद्यपि मंगल पाप ग्रह है परन्तु सामदेवी के लिये मंगल शुभ है, इसलिये शुभ हुआ । इसी प्रकार और भी विचार करना । शून्य (८) शेष में राहु की दशा होती है ॥ ४ ॥

वास्तुमुहूर्त—

रोहिण्यां श्रवणात्त्रयेऽदितियुगे हस्तत्रये मूलके

रेवत्युत्तरफाल्गुनीन्दुतुरगे मित्रोत्तराषाढयोः ।

शस्तं वास्तु कुजाकर्त्तृजितदिने गोकुम्भसिंहे भूषे

कन्यायां मिथुने नभः शुचिसहोराधोर्जके फाल्गुने ॥५॥

रोहिणी श्रवण धनिष्ठा शतभिषा पुनर्वसु पुष्य हस्त चित्रा मूल रेवती उत्तराफाल्गुनी मृगशिरा अश्विनी अनुराधा उत्तराषाढ इन नक्षत्रों में, मंगल रवि को छोड़कर और दिनों में, वृष मिथुन सिंह कन्या कुम्भ मीन इन लग्नों में, श्रावण, आषाढ, अगहन, वैशाख, कार्तिक, फाल्गुन इन मासों में वास्तु (गृहारम्भ) शुभ होता है ॥ ५ ॥

वृषवास्तुचक्रोद्धार—

सूर्याक्रान्तात्पजेत् सप्त, शुभान्येकादशस्त्वथ ।

शेषं नन्दर्क्षकं दुष्टमिति वास्तुनि कीर्तितम् ॥६॥

सूर्य जिस नक्षत्र में रहे उससे ७ नक्षत्र त्याग करके बाद ११ नक्षत्र में गृहारम्भ शुभ है । उसके आगे ६ नक्षत्र अशुभ हैं, यह वास्तु में अवश्य विचार करे ॥ ६ ॥

पृथ्वी शयन—

“प्रद्योतनात् पञ्च नगाङ्क-सूर्य-नन्देन्दु-पड्विंशमितेषु भेषु ।

शोते मही नैव गृहं प्रकुर्यात् तडागवापीखननं न शस्तम् ॥७॥”

सूर्य के नक्षत्र से ५ वें, ७ वें, १६ वें, २६ वें, नक्षत्रों में पृथिवी शयन करती है। इसलिये मकान, पोखरा, कुएँ का खनना आरम्भ न करे ॥ ७ ॥

विस्तारहस्तैर्विहृतश्च पिण्डो दैर्घ्यं भवेत्लब्धमितं यदङ्गम् ।

शेषं चतुर्विंशतिसंगुणं तु भजेत्तु तैर्लब्धिसमाङ्गलानि ॥८॥

गृह की लम्बाई-चौड़ाई का गुणन पिण्ड कहलाता है, पिण्ड में चौड़ाई से भाग ले तो लब्धाङ्क लम्बाई होगी, बाकी जो बचे उसको २४ से गुणा कर पुनः चौड़ाई से भाग ले, जो लब्धि हो वह अंगुल होगा ॥ ८ ॥

अभीष्टांशादिसिद्धयर्थं क्षिपेद् दैर्घ्येऽङ्गलादिकम् ।

न विस्तारे कदाचित्स्याद्विश्वकर्माऽत्रवीद्वचः ॥९॥

अभीष्टांशादि सिद्धयर्थं लम्बाई में अंगुलादि युक्त करे, चौड़ाई में कदाचित् युक्त न करे यह विश्वकर्मा का वचन है ॥ ९ ॥

दत्ते दुःखं तृतीयर्क्षं पञ्चमर्क्षं यशः क्षयम् ।

आयुः क्षयं सप्तमर्क्षं कर्तुर्माद् गृहभावधि ॥१०॥

कर्ता के ऋक्ष से गृह ऋक्ष तीसरा हो तो दुःखद है, पंचमर्क्ष यश-क्षयकारक है और सप्तमर्क्ष आयुःक्षयकारक है ॥ १० ॥

अथ कृत्तिकादि भेद से गृहफल—

त्रिमिस्त्रिभिर्वेश्मनि कृत्तिकाद्यै-

रुच्छेद् १ पुत्राप्ति २ धनादि ३ शोकम् ४ ।

शत्रोर्भयं ५ राजभयं ६ च मृत्युः ७

सुखं ८ प्रवासश्च ९ नव प्रमेदाः ॥११॥

तीन-तीन नक्षत्र के क्रमपूर्वक कृत्तिकादि से दिन नक्षत्र तक गणना करने से उच्छेद १, पुत्राप्ति २, धन ३, शोक ४, शत्रुभय ५, राजभय ६, मृत्यु ७, सुख ८, प्रवास ९ ये नव प्रकार के भेद हैं ॥ ११ ॥

अथ पिंडानयन प्रकारः—

दैर्घ्यविस्तारयोर्घातो गृहस्य पदमुच्यते ।

अष्टभिर्भाजिते शेषे आयो भवति संस्फुटः ॥१२॥

लम्बाई और चौड़ाई को परस्पर गुणने से गृह का पिण्ड होता है, उस पिण्ड में आठ का भाग देने से शेष ध्वजादि आय होगा ॥ १२ ॥

अथायादि विचारः—

गो ६ नन्द ६ षट् ६ सर्प ८ गुणा ३ ऽष्ट ८ नागै ८
वेदा ४ष्ट ८ भिस्संगुणिते च पिण्डे ।

भक्ते गजा ८ द्रव्य ७ङ्क ६ पतङ्ग १२ नाग ८

२७भाक्षेन्दु १५ भिर्भैः २७ख दिवाधिनाथैः १२० ॥१३॥

ध्वजादिरायोऽर्कदिनादिवार-

स्त्वंशस्तथा स्वं च श्रृणं च धिष्ण्यम् ।

तिथिर्युतिश्चायुरथो

गृहस्य

नवैव नाम्ना च सद्वक्फलानि ॥१४॥

पिंड को नौ जगह धरे, क्रम से ६।६।६।६।३।६।६।४।८ से गुणन करे और फिर क्रम से ६।७।६।१२।१२७।१५।२५।१२० से भाग ले ले तो ध्वजादिक आय १, वार २, अंश ३, द्रव्य ४, ऋण ५, ऋक्ष ६, तिथि ७, योग ८, आयुर्बल ९ होगा। यह गृह का नौ प्रकार अंश होगा। यह नाम समान फल करनेवाला है ॥ १३-१४ ॥

अथ निषिद्ध तिथिवार योगादि—

सूर्यारवारराश्यंशाः सदा वह्निभयप्रदाः ।

तिथिप्रयोजनं दर्शं रिक्तां च वर्जयेदपि ॥१५॥

योगं दुष्टफलं चैव शनिराहुयुतं च मम ॥१६॥

पूर्वादितस्सद्मसु दिङ्मुखेषु भू १ द्वौ २युगा ४नाग ८मिताध्रुवांका ।

शालाध्रुवाङ्कसंयोगः सैको वेश्मध्रुवादिकम् ॥१७॥

रवि, भौम, शनिवार अग्निभयकारक है तथा अमावस और रिक्ता तिथि भी वर्जित है। इस तरह से दुष्ट योग और शनि राहु युक्त नक्षत्र वर्जित है। पूर्वादिक दिशा के द्वारके १, २, ४, ८, ध्रुवाङ्क हैं, शालाध्रुव के अङ्क का योग करके १ और जोड़े तो ध्रुवादिक गृह होगा ॥१५-१७॥

अथ षोडशगृह विचारः—

गृहपिण्डं युगैर्हत्वा षट्चन्द्रैर्भागमाहरेत् ।

शेषाङ्के तु स्मृतं नाम ध्रुवादिक्रमतो बुधैः ॥१८॥

ध्रुवं च १ धान्यं च २ जयश्च ३ नन्दं ४

खरश्च ५ कान्तं च ६ मनोरमश्च ७ ।

सुवक्त्रसंज्ञं ८ खलु दुर्मुखाख्यं ६ क्रूरं १०

विपक्षं ११ धनदं क्षयं च १३ ॥१६॥

आक्रन्द १५ संज्ञं विपुलाह्वयं च १५ ।

स्यात्षोडशं तद्विजयाभिधानम् ॥२०॥

गृहपिंड को चार से गुणे और १६ से भाग दे, जो शेषांक रहे सो ध्रुवादिक पिंड का गृह होगा । यथा—ध्रुव १ धान्य २ जय ३ नन्द ४ खर ५ कान्त ६ मनोरम ७ सुवक्त्र ८ दुर्मुख ९ क्रूर १० विपक्ष ११ धनद १२ क्षय १३ आक्रन्द १४ विपुल १५ और विजय १६ यह सोलह प्रकार नाम के गृह होंगे ॥ १८-२० ॥

आयादिपरत्वेन द्वारमाह—

धान्यं बुधैः पूर्वमुखं गृहस्य जयं तथा दक्षिणादिदुर्मुखं हि ।

यत्पश्चिमास्यं खरसंज्ञकं च स्याद् दुर्मुखं सौम्यदिगास्यमेवम् ॥२१॥

यद् दुर्मुखं चैव विपक्षसंज्ञमाक्रन्दसंज्ञं धनदं सुवक्त्रम् ।

त्रिव्यक्षरं वै विपुलं महद्भिर्ज्ञेयं गृहन्तद्विजयाभिधानम् ॥२२॥

मनोरमं स्याच्चतुरक्षरं हि नेत्राक्षराण्यन्यगृहाणि विद्यात् ।

ध्रुवं बुधैरूर्ध्वमुखं गृहस्य चतुर्मुखं स्याद्विजयाभिधानम् ॥२३॥

धान्यनामक पूर्व दिशा में द्वार करे । जयनामक दक्षिण दिशा में द्वार कर और दुर्मुखनामक उत्तर दिशा में द्वार करे । विपक्ष, आक्रन्द, धनद, सुवक्त्र तथा विपुल और विजय इनका तीन अक्षर का नाम है । मनोरम नाम चार अक्षर का है । इससे अन्य गृह के दो अक्षर के नाम हैं । ध्रुव नामक गृह का ऊर्ध्वमुख बनावे तथा विजयनामक गृह के चारों दिशा में द्वार बनावे ॥ २१-२३ ॥

वृक्षविचारः

पूर्वप्लवोदकप्लवगा सुखाप्त्यै जनो वसेत्तत्र निवासयोग्यात् ॥२४॥

प्लवोत्तरं पूर्ववटं च शस्तं स्थानात्तथोदुम्बरदक्षिणं च ॥२५॥

यत्पश्चिमाश्वत्थकमुत्तमं च वास्तुर्दिशेद्भूतरुशुद्धभागम् ।

निषिद्धवृक्षामिहता दिगन्तास्तदन्तरे पूजितवृक्षवाजम् ॥२६॥

पूर्व दिशा में जमीन प्लव हो तो सुख की वृद्धि करनेवाली है, उसमें निवास करना योग्य है, पाकड़ का वृक्ष उत्तर में शुभ है । पूर्व दिशा में बरगद का वृक्ष शुभ है तथा गूलर का वृक्ष दक्षिण में शुभ है । पश्चिम

दिशा में पीपल का वृक्ष शुभ है। इससे वृक्ष का विचार करके शुद्ध भूखि में गृह बनावे। जो निषिद्ध वृक्ष हो, वह गृह की ऊँचाई की दूरी पर शुभ है, उसके मध्य में उत्तम वृक्ष शुभ होता है ॥ २४-२६ ॥

अंशादि ज्ञान भित्तिमान-

भं नागतपटं व्यय ईरितोऽसौ ध्रुवादिनामाक्षरयुक् सपिण्डः ।
तष्टो गुणैरिन्द्रकृतान्तभूपा हंशा भवेयुर्न शुभोऽन्तकोऽत्र ॥२७॥
गृहे मृन्मये मानमन्तःप्रधानं तथा चेष्टिकाभित्तिभागन्तदद्धम् ।
तथा चोपलस्य सभित्त्या सदैव प्रकुर्याद् बुधश्चान्यथा द्रव्यनाशम् ॥२८॥

गृहनक्षत्र को आठ से भाग देवे जो शेष रहे सो व्ययसंज्ञक होगा। इस व्यय को ध्रुवादि नामाक्षर में जोड़े और पिण्ड भी जोड़े फिर ३ से भाग लेवे। १ बचे तो इन्द्र का अंश, २ बचे तो यम का अंश, ३ बचे तो भूप का अंश होगा, इसमें यम का अंश शुभ नहीं है। यदि मिट्टी का मकान बनावे तो लम्बाई, चौड़ाई भीतर-भीतर रहे। ईंट के मकान में आधा बाहर रहे और पत्थर के मकान में सब बाहर रहे इससे अन्यथा करे तो घन का नाश होगा ॥ २७-२८ ॥

पिण्ड में भित्ति का विचार--

अंगेषु बंगेषु कलिगदेशे सौराष्ट्रदेशे मगधप्रदेशे ।
मरुज्जले, सिन्धुगिरिप्रदेशे सभित्तिमानं कथितं मुनीन्द्रैः ॥२९॥
गर्भस्य ग्राह्यं यदि मध्यदेशे तथापि चाऽग्निनृपचौरयुद्धम् ।
उद्वन्धनं घातविघातमेव इदं हि वाक्यं कथितं वसिष्ठैः ॥३०॥

अंग देश में, बंग देश में, कलिग देश में, सौराष्ट्र देश में, मगध देश में, मध्य देश में, मरुज्जल देश में तथा सिन्धु, गिरि प्रदेश में सभित्तिमान मुनीन्द्रों ने कहा है। गर्भ का ग्रहण यदि मध्यदेश में करे तो उनका फल क्रम से इस तरह से है। अग्निभय, नृपभय, चौरभय, युद्धभय, उद्वन्धन, घात और विघात होता है। यह वाक्य वसिष्ठ का है ॥ २९-३० ॥

अथ नक्षत्रे ज्ञाते राशिनिर्णय --

अश्विनीमघमूलाद्यैस्त्रिभे राशिरिष्यते ।
शेषे मे द्वितयं गेहे विशेषोऽयं प्रकाशितः ॥३१॥

द्विपः पुनः प्रयोक्तव्यो वापीकूपसरस्सु च ।
 अग्निवेशमसु सर्वेषु गृहे व. घायजीविनाम् ॥ ३२ ॥
 धूम्रं नियोजयेत्केचिच्छ्वानं म्लेच्छादिजातिषु ।
 प्रागुदक्पश्चिमे वायौ पशुस्थानं च कारयेत् ॥ ३३ ॥
 दिगन्तरेऽथ मध्ये वा पशुश्चैव विनश्यति ।
 पशुसद्म वृषाये च ध्वजाये वा सुखप्रदम् ॥ ३४ ॥

अश्विनो, मघा, मूल से तीन-तीन ऋक्ष की राशि हैं और जो नक्षत्र हैं वे दो-दो नक्षत्र की राशि हैं, यह विशेष करके प्रकाश किया है। वापी और कूप में, तालाब में हस्ती नामक आय योजना किये हैं, तथा अग्नि-आगार बनाने में धूम आय का विचार करे। किसी-किसी आचार्य ने धूम आग की योजना की है। श्वान आय म्लेच्छादि जातियों के मकान में विचारे, पूर्व, उत्तर, पश्चिम तथा वायव्य में पशुस्थान बनावे। तथा दिगन्तर में अथवा मध्य में पशु का नाश होगा। पशु के मकान में वृक्षाय ग्रहण करे, ध्वजाय भी शुभ है ॥ ३१-३४ ॥

अथ गृहाङ्गणे शुभाऽशुभफलानि-

स्वामीहस्तप्रमाणेन दीर्घविस्तासंयुतम् ।
 नवभिस्तु हरेद्भागं शेषश्चैव महालयम् ॥ ३५ ॥
 दानी राजा तथा षण्ठं तस्करो भोगिसंज्ञकः ।
 आभीर्विचक्षणो अङ्को धनी नामसदृक्फलाः ॥ ३६ ॥

स्वामी के हाथ के प्रमाण से लम्बाई-चौड़ाई जोड़ करके नव से भाग लेवे जो शेष रहे सो फल जाने। दानी १, राजा २, षण्ठ ३, तस्कर ४, भोगिसंज्ञक ५, आमी ६, विचक्षण ७, रङ्क ८, धनी ९ ये नाम के समान फल देते हैं ॥ ३५-३६ ॥

अथ बूसाचक्रम्

लिखित्वा पूर्वकाष्ठासु सूर्यभाच्चक्रमुच्यते ॥ ३७ ॥
 द्वयं चतुश्च सर्वत्र मध्ये चत्वारि इत्यपि ॥ ३८ ॥
 दिशायां लभते सौख्यं कोणे हानिः पशुक्षयम् ।
 मध्येषु स्थिरता ज्ञेया फलं बूसाख्यचक्रकम् ॥ ३९ ॥

पूर्व दिशा से सूर्य के नक्षत्र से दिशा में २, कोण में ४ ऋक्ष लिखे, मध्य में ४ ऋक्ष लिखे । दिशा में सौख्य और कोण में हानि तथा पशुक्षय और मध्य में स्थिरता होगी, यह बूसाचक्र में विचारे ॥ ३७-३९ ॥

बूसाचक्रम्—

२ पूर्व

ऐशान्य ४	४ मध्य	४ अग्नि
उत्तर १		२ दक्षिण
वायव्य ४		४ नैऋत्य

२ पश्चिम

अथ चरणि विचारः—

स्वामिहस्तप्रमाणेन दीर्घविस्तारसंयुतम् ।

वसुमिस्तु हरेद्भागं शेषं चरणिरुच्यते ॥ ४० ॥

पशुहानिः १ पशोर्नाशः २ यशुलाभः ३ पशुक्षयः ४

पशुरोगः ५ पशोर्वृद्धिः ६ पशुभेदो ७ बहुः पशुः ८ ॥ ४१ ॥

स्वामी के हाथ के प्रमाण से लम्बाई-चौड़ाई का योग करे फिर आठ से भाग देवे जो बाकी बचे सो चरणी में फल विचारे । पशुहानि १, पशुनाश २, पशुलाभ ३, पशुक्षय ४, पशुरोग ५, पशुवृद्धि ६, पशुभेद ७, बहुपशु ८ ॥ ४०-४१ ॥

अथ भुवः सुप्तत्वज्ञानम्—

कर्त्तृग्रामदिशश्चैव स्वरयुक्तस्तु कारयेत् ।

बह्विमिस्तु हरेद्भागं शेषांके फलमादिशेत् ॥ ४२ ॥

एके जागर्ति भूमिश्च द्वितीये समता भवेत् ।

तृतीये राक्षसी चैव मृत्युरेतन्न संशयः ॥ ४३ ॥

कर्त्ता, ग्राम तथा दिशा के स्वर एकत्र करे, उसमें तीन से भाग देवे जो शेष बचे सो फल जाने । १ बचे तो पृथ्वी जागती है, २ बचे तो समता कहना, ३ बचे तो राक्षसी कहना, यह मृत्यु देनेवाली है, इसमें संशय नहीं है ॥ ४२-४३ ॥

पुनरपि—

ग्रामस्वरं तत्र दिशाप्रमाणं नामाक्षरं तत्र ग्रहैः समन्वितम् ।

शैलेन गुण्यं युग ४ भागधेयं सौख्यं च सुप्तं च मृतं च शून्यम् ॥४४॥

ग्राम के स्वर तथा दिशा का प्रमाण तथा नामाक्षर एकत्र करके ६ मिलावे । सात से गुणा करे और ४ से भाग ले । १ बचे तो सुख, २ बचे तो सुप्त, ३ बचे तो मृतक, ४ बचे तो शून्य यह फल जाने ॥ ४४ ॥

अथ प्रकारान्तरेण भूमिसुप्तत्वज्ञानम्—

ग्रामाक्षरं चतुर्गुण्यं नामाक्षरसमन्वितम् ।

शिवनेत्रैर्हरेद्भागं शेषांके लभते फलम् ॥ ४५ ॥

एकेन जीविता भूमिर्द्वितीये समता फलम् ।

तृतीयेन मृता भूमिरित्युक्तं रुद्रयामले ॥ ४६ ॥

ग्राम के अक्षर को चौगुना करके नाम के अक्षर में जोड़ दे फिर ३ से भाग ले, शेष बचे सो ऐसा फल जाने । १ बचे तो जीवित भूमि, २ बचे तो सम भूमि, ३ बचे तो मृता भूमि है । यह रुद्रयामल में कहा गया है ॥ ४५ ४६ ॥

अन्यच्च—

ग्रामनामदिशावर्गमेकीकृत्य त्रिभिर्भजेत् ।

एकेन जीविता भूमिर्द्वितीयेन मृता भवेत् ।

शून्ये शून्यं विजानीयादित्युक्तं रुद्रयामले ॥ ४७ ॥

महालयं खातमितं विनिर्मितं ध्वजादयो गर्भमिति प्रमाणकम् ।

शुभं च सौख्यं धनधान्यवृद्धिं गृहेश्वरस्य फलमेवमाहुः ॥ ४८ ॥

भित्त्याश्चाद्भन्तु देवानां प्रासादो भित्तिवाहके ।

भित्तिरन्यस्य गेहानामालयं त्रिविधं स्मृतम् ॥ ४९ ॥

स्वामिहस्तप्रमाणेन ज्येष्ठपत्नीकरणे च ।

ज्येष्ठापत्यकरेणापि कर्मकारकरणे वा ॥ ५० ॥

अनामिकान्तो हस्तः स्यादूर्ध्वबाहुशरांशकः ।

तर्जनीमध्यमाभ्यां च प्रमाणं नैव कारयेत् ।

गर्भमात्रं भवेद् गेहन्नणां प्रोक्तं पुरातनैः ॥ ५१ ॥

ग्रामवर्ग, नामवर्ग, दिशावर्ग एकत्र करके ३ से भाग ले । १ बचे तो जीवित, २ बचे तो मृतक, शून्य बचे तो शून्य जाने ऐसा रुद्रयामल का वचन है । महालय में खात को बराबर बनावे, ध्वजादिक में गर्भमिति प्रमाण करे, इसका फल शुभ, सौख्य, धनधान्यवृद्धि, गृहेश्वर का फल ऐसा है । देवता के मन्दिर में आधी भीति लेवे, अटारी में भात बाहर रहे,

मकान में भीति का जोता दूसरे से ग्रहण करे इस तरह तीन प्रकार मकान के हैं। स्वामी के हाथ के प्रमाण से तथा ज्येष्ठ पत्नी के हाथ से तथा ज्येष्ठ पुत्र के हाथ से तथा कर्मकार के हाथ से अनामिकान्त हाथ से ऊपर बाहु के पंचमांश तक का प्रमाण है। तर्जनी वा मध्यमा का प्रमाण न करना चाहिये। गर्भमात्रगृह प्राचीनाचार्यों ने कहा है ॥ ४७-५१ ॥

अथ नामप्राधान्यतामाह—

देशे ज्वरे ग्रामगृहप्रवेशे सेवासु युद्धे व्यवहारकार्ये ।

घूतेषु दानेषु च नामराशेर्यात्राविवाहादिषु जन्मराशेः ॥५२॥

मैत्री विवाहवद् ग्राह्या विपरीता तु नाडिका ।

गृहं तत्स्वामिनो भैक्ष्यम्त्युदं तद्विर्वर्जयेत् ॥५३॥

सेव्यसेवकयोश्चैव गृहं तत्स्वामिनोरपि ।

परस्परं मित्रयोश्च नाडीवेधः प्रशस्यते ॥५४॥

देश में, ज्वर में, ग्राम में, गृहप्रवेश में, सेवा में, युद्ध में और व्यवहार में, घूत में तथा दान में, नामराशि ग्रहण करना। यात्रा तथा विवाहादिक में जन्मराशि ग्रहण करना चाहिए। मैत्री विवाह की तरह से विचारे परन्तु नाडी विपरीत रहे गृहर्क्ष तथा स्वाम्यर्क्ष यदि एक हो तो मृत्युप्रद है। इसको वर्जित कर देवे। स्वामी तथा सेवक में गृह और स्वामी में तथा परस्पर मित्रता में नाडीवेध शुभ है ॥ ५२-५४ ॥

दीर्घविस्तारसंख्यैक्ये चाष्टाभिर्गुणिते तथा ।

नवभिस्तु हरेद्भ्रामं शेषके फलमादिशेत् ॥ ५५ ॥

तस्कर १ भोग २ विचक्षण ३ दाता ४ नृप ५ नपुंसकौ ६ ।

धनाढ्यश्च ७ दरिद्रश्च ८ भयदो ९ नवमस्तथा ॥ ५६ ॥

लम्बाई-चौड़ाई को एकत्र करे पुनः आठ में गुणे नव से भाग लेवे जो शेष बचे सो फल कहे। तस्कर १, भोगी २, विचक्षण ३, दाता ४, नृपति ५, नपुंसक ६, धनाढ्य ७, दरिद्रता ८, भयद ९ ॥ ५५-५६ ॥

अथ गृहारम्भनक्षत्राणि—

ज्युत्तरेऽपि च रोहिण्यां पुष्यमैत्रे करद्वये ।

धनिष्ठाद्वितये पौष्णे गृहारम्भः प्रशस्यते ॥ ५७ ॥

अश्विनीरोहिणी मूलमुत्तरात्रयमौन्दवम् ।

स्वातिहस्तोऽनुराधा च गृहारम्भे प्रशस्यते ॥ ५८ ॥

तीनों उत्तरा, रोहिणी, पुष्य, अनुराधा, हस्त, चित्रा, धनिष्ठा, शतभिषा, रेवती ये ऋक्ष गृहारम्भ में शुभ कहे हैं। अश्विनी, रोहिणी, मूल, तीनों उत्तरा, मृगशिरा, स्वाती, हस्त, अनुराधा ये भी नक्षत्र गृहारम्भ में शुभ हैं ॥ ५७-५८ ॥

अथ गृहारम्भे वर्ज्य तिथिवार-

भौमार्क रिक्ताऽमाद्युने चरोनाङ्गे विषश्र्वके ॥ ५९ ॥

पुनरपि-

पुष्यं धनिष्ठाऽमृद्वायुमूलस्थिराश्विनी विष्णुजले च हस्ते ।

एषु प्रवेशे बहुपुत्रपौत्राश्विरं वसेद् भरिसमागमैश्च ॥ ६० ॥

मंगलवार रविवार, रिक्ता तिथि, अमावस्या, चर लग्न वर्जित है तथा बुधपंचक वर्जित है। फिर एक आचार्य का मत यह है कि पुष्य, धनिष्ठा, मृगशिर, रेवती, चित्रा, अनुराधा, स्वाती, मूल, तीनों उत्तरा, रोहिणी, अश्विनी, श्रवण, शतभिष, हस्त इनमें प्रवेश करने में पुत्र-पौत्रादिक का सुख होगा। यह योग बहुत समागम से बहुत दिन पर्यन्त निवासकारक है ॥ ५९-६० ॥

अथ मासाः-

सौम्ये फाल्गुनवैशाखमाघश्रावणकार्तिके ।

मासाः स्युर्गृहनिर्माणे पुत्रारोग्यधनप्रदाः ॥ ६१ ॥

उत्तरायण में फाल्गुन, वैशाख, माघ, श्रावण, कार्तिक ये मास गृह-निर्माण में पुत्र, आरोग्य और धनप्रद हैं ॥ ६१ ॥

अथ प्रवेशज्ञानम्-

गृहारम्भोदिते मासे धिष्ण्ये वारे विशेद् गृहम् ।

तथा सौम्यायने हर्म्ये तृणागारन्तु सर्वदा ॥ ६२ ॥

गृहारम्भ में जो मासादि कहे हैं, उन वारादिकों में तथा उत्तरायण रवि में गृहप्रवेश करे तथा तृणागार में सर्वदा प्रवेश करे ॥ ६२ ॥

अथ मतान्तर से भूमिपरोक्षा-

श्वेतारक्तकपीतकृष्णवसुधा स्वादुः कटुस्तिक्तका ।

काषाया घृतशोणितान्मदिरागन्धाः शुभा विप्रतः ॥ ६३ ॥

सफेद, आरक्त, पीत और काली पृथ्वी तथा स्वादु, कटुक, तिक्त,

कषाय, घृत, शोणित, अन्न, मदिरा ये गन्धवालो भूमि विप्रादिवर्णों को शुभ हैं ॥ ६३ ॥

तथा द्वारनिर्णयो वास्तुशास्त्रे—

नवभागं गृहं कृत्वा षट्कभागन्तु दक्षिणे ।

त्रिभागमुत्तरे कार्यं शेषं द्वारं प्रकीर्तितम् ॥ ६४ ॥

दक्षिणाङ्गः स वै प्रोक्तो मन्दिरान्निस्सृते सति ।

यो भूयाद् दक्षिणे भागे वामे भूयात्स वामगः ॥ ६५ ॥

गृह की लम्बाई के नौ भाग करे । पाँच भाग दक्षिण में और तीन भाग बायें में छोड़कर मध्य में जो एक भाग है उसी में द्वार बनावे । दक्षिणांग उसीको माने, जो मन्दिर से निकलने के समय दक्षिण हो, जो वाम हो सो वाम माने ॥ ६४-६५ ॥

पुनरपि—

पूर्वादौ त्रि ३ षड् ६ र्थं २ पञ्चम ५ लवे द्वाः सव्यतोऽङ्कोद्घृते ।

दैर्घ्ये द्वये द्वयेश सुसमुच्छ्रिताब्धिलवके सर्वासु दिक्षुदिता ॥ ६६ ॥

लम्बाई में नौ से भाग लेवे पूर्वादि दिशा में वामावर्त्त तृतीय भाग में पूर्व, षष्ठ भाग में उत्तर, द्वितीय भाग में पश्चिम, पञ्चम भाग में दक्षिण द्वार बनावे, ऊँचाई के अष्टमांश में सब दिशाओं में द्वार करे ॥ ६६ ॥

अथ द्वारशाखारोपणम्—

अश्विनीत्र्युत्तराहस्ततिष्यश्रुतिमृगेषु च ।

रोहिण्यां स्वातिमेऽन्त्ये च द्वारशाखां प्ररोपयेत् ॥ ६७ ॥

अश्विनी, तीनों उत्तरा, हस्त, पुष्य, श्रवण, मृगशिरा, रोहिणी, स्वाती और रेवती इनमें द्वारशाखारोपण करे ॥ ६७ ॥

अथ द्वारपरत्वेन चतुर्दिक्षु ऋक्षस्थापनम्—

कुर्ब्यां मित्वा न कुर्वीत द्वारन्तत्र सुखेऽसुमिः ।

कृत्तिकामगमैत्रन्तु विशाखां च पुनर्वसुम् ॥ ६८ ॥

पुष्यं हस्तं तथाऽऽर्द्रां च क्रमात्पूर्वेषु विन्यसेत् ।

मैत्रं विशाखा पौष्णश्च नैऋत्यं यमदैवतम् ॥ ६९ ॥

वैश्वदेवाश्विनीचित्राः क्रमाद्दक्षिणमास्थिताः ।

पित्र्यं प्रौष्ठपदार्य्यम्णन्तथा मासान्तदैवतम् ॥ ७० ॥

शतताराशिवनीहस्तः पश्चिमे रोहिणी मृगौ ।

स्वात्याश्लेषाऽभिजित्सौम्यं वैष्णवं वासवन्तथा ॥ ७१ ॥

याम्यं बाह्यं क्रमात्सौम्यद्वारेषु च विनिर्दिशेत् ।

द्वारक्षैस्तद्विदशाद्वारं स्थापयेद्वा विचक्षणः ॥ ७२ ॥

सुख की इच्छा चाहनेवाले पाख भेदन करके द्वार न बनावे । कृत्तिका, पूर्वाफाल्गुनी, अनुराधा, विशाखा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, आर्द्रा ये ८ नक्षत्र पूर्व में स्थापित करे । अनुराधा, विशाखा, रेवती, मूल, भरणी, उ. षा., अश्विनी, चित्रा ये नक्षत्र क्रम से दक्षिण में स्थित हैं । मघा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, शतभिषा, अश्विनो, रोहिणी, मृग ये ८ नक्षत्र पश्चिम में स्थापित करे । स्वाती, आश्लेषा, अभिजित्, मृगशिरा, श्रवण, घनिष्ठा, भरणी, रोहिणी ये ८ नक्षत्र उत्तर में स्थापित करे । द्वारर्क्ष में उसी दिशा में द्वार बनावे ॥ ६८-७२ ॥

ष्यर्माद्वेदभैः ४ शीर्षस्थितश्च धनसम्पदः ।

गेहादुद्रासनन्तस्मादष्टभैः ८ कोणसंस्थितैः ॥ ७३ ॥

शाखास्वष्ट ८ मितैस्तस्माद्भनं सौख्यं भवेद् गृहे ।

देहल्यान्तु त्रिभि ३ धिष्णैर्मृत्युर्गृहपतेर्भवेत् ॥ ७४ ॥

चतुर्भि ४ मध्यगैस्तस्माद् द्रव्यलाभः शुभं भवेत् ।

एतच्चक्रं विचार्यादौ द्वारं कुर्यात्स्वमन्दिरे ॥ ७५ ॥

सूर्य के नक्षत्र से ४ नक्षत्र शीर्ष पर घरे । उसमें यदि द्वारशाखा स्थापित करे तो धन-सम्पत्ति हो तथा उससे ८ नक्षत्र कोण पर घरे उससे उद्रासन होगा । उससे फिर ८ नक्षत्र शाखा पर घरे, उनमें धन तथा सुख हो, देहली में ३ नक्षत्र घरे, वे गृहपति को मृत्युप्रद हैं । उससे ४ नक्षत्र मध्य में घरे उसमें द्रव्य लाभ तथा सौख्य होता है । इस चक्र को आदि में विचार कर तब अपने मकान का द्वार बनावे ॥ ७३-७५ ॥

तत्र द्वारनियममाह—

कर्कनक्रहरिकुम्भगतेऽर्के पूर्वपश्चिममुखानि गृहाणि ।

तौलिमेषवृषवृश्चिकजाते दक्षिणोत्तरमुखानि च कुर्यात् ॥ ७६ ॥

कर्क, मकर, सिंह, कुम्भ के सूर्य हों तो पूर्व तथा पश्चिम में गृह का मुख बनावे और तुला, मेष, वृष, वृश्चिक के सूर्य हों तो दक्षिण तथा उत्तर में गृह का मुख बनावे ॥ ७६ ॥

अथ वसिष्ठः—

मनसश्चक्षुषोर्यत्र सन्तोषो जायते भुवि ।

तस्यां कार्यं गृहं सर्वैरिति गर्गादिसम्मतम् ॥ ७७ ॥

मन से और नेत्र से जिस भूमि को देखने से सन्तोष होवे, उसी भूमि में गृह बनावे ऐसा गर्गादिक का मत है ॥ ७७ ॥

अथाष्टौ वर्गाः—

अकारादिषु वर्गेषु दिक्षु प्रागादिषु क्रमात् ।

तार्क्ष्यमार्जारसिंहश्वाः सर्पाखुगजशाशकाः ॥ ७८ ॥

अकारादि वर्ण के त्रिषु पूर्वदिक् क्रम से गरुड, मार्जार (बिलार) २, सिंह ३, श्वान ४, सर्प ५, मूसा ६, हाथी ७, खरहा ८ जाने ॥ ७८ ॥

अथ लाभालाभविचारः—

स्ववर्गं द्विगुणीकृत्य परवर्गेण योजयेत् ।

वसुभिस्तु हरेद्भागं योऽधिकः स ऋणी भवेत् ॥ ७९ ॥

अपने वर्ग को २ से गुणे, परवर्ग अर्थात् ग्राम वर्ग भी उसमें जोड़ दे, ८ से भाग देवे, पुनः ग्रामवर्ग को द्विगुणित करे अपना वर्ग जोड़ देवे पुनः ८ से भाग दे जो बाकी बचे उन दोनों शेषों का अन्तर करे । जिसमें अधिक शेषांक बचे सो ऋणी है ॥ ७९ ॥

अस्योदाहरणम्—

यथा रामहर्षस्य वर्गः गजस्तत्संख्या ७ द्विगुणिता १४ ।

अयोध्यायाः वर्गः गरुडस्तत्संख्या १

युता १५ अष्टभक्तावशेषः ७ रामहर्षस्य काकिण्यः ।

एवं ग्रामवर्गसंख्या १ द्विगुणिता २ रामहर्षस्य वर्गसंख्या ७

युता ९ अष्टभक्तावशेषः १ ग्रामस्य काकिण्यः ।

द्वयोरन्तरं ६ अत्र रामहर्षस्य काकिण्योऽधि-

कास्तेन तत्र वासकरणाद् द्रव्यहानिः ।

जैसे रामहर्ष का वर्ग हस्ती है उसकी संख्या ७ है दूना किया १४ तथा अयोध्या का वर्ग गरुड है उसकी संख्या १ है, योग किया तो १५ हुआ, आठ से भाग दिया, बाकी बचा ७ वही ही रामहर्ष की काकिणी हुई ।

इसी तरह ग्रामवर्ग की संख्या १ है, दूना किया २ हुआ रामहर्ष की वर्ग संख्या ७ है योग किया ९ हुआ आठ से भाग दिया बाकी बचा १ वह ग्राम की काकिणी हुई। दोनों का अन्तर किया तो बाकी बचा ६ इससे रामहर्षकी काकिणी अधिक है उनको वास करने से द्रव्यकी हानि होगी।

पुनरपि—

यथा वासुदेवस्य वर्गः मूषकः तत्संख्या ६
द्विगुणिता १२ अयोध्यायाः वर्गः गरुडः तत्संख्या १
युतः १३ अष्टभक्तावशेषः ५ वासुदेवस्य काकिण्याः ।
एवं ग्रामवर्गसंख्या १ द्विगुणिता २ वासुदेवस्य
वर्गसंख्या ६ युतः ८ अष्टभक्तावशेषः ० ग्रामस्य
काकिण्यः द्वयोरन्तरम् ५ अत्र वासुदेव-काकिण्यो-
ऽधिक्यास्तेन तत्र वासकरणाद् द्रव्यहानिः ।

जैसे वासुदेवका वर्ग मूषक है उसकी संख्या ६ दूना किया १२ हुआ अयोध्या का वर्ग गरुड है उसकी संख्या १ है सो योग किया तो १३ हुआ आठ से भाग दिया बाकी बचा ५ सो वासुदेव की काकिणी हुई। इसी तरह ग्रामवर्ग की संख्या १ है सो दूना किया २ हुआ, वासुदेव की वर्ग संख्या ६ है सो योग किया ८ हुआ। आठ से भाग दिया बाकी बचा ० (८) यह ग्राम की काकिणी हुई इससे वासुदेव की काकिणी अल्प है उनको वास करने से द्रव्य की वृद्धि होगी।

वि०—गर्गादि मत से ग्राम की काकिणी से नाम की काकिणी अधिक शुभ कही गयी है।

गृहारम्भलग्नाद् दीर्घायुर्योगः—

गुरुर्लग्ने रविः षष्ठे धूने सौम्ये सुखे सिते ।
तृतीयस्थेऽर्कपुत्रेऽत्र तद्गृहं शतमायुषम् ॥८०॥
भृगुर्लग्नेऽम्बरे सौम्ये लाभस्थाने च भास्करे ।
गुरुः केन्द्रगतो यत्र शतवर्षाणि तिष्ठति ॥८१॥
हिबुकेश्येऽम्बरे चन्द्रे लाभे च कुजभास्करे ।
आरम्भः क्रियते यस्य अशीत्यायुः क्रमाद्भवेत् ॥८२॥
लग्नस्थौ गुरुशुक्रौ च रिपुराशिगते कुजे ।
सूर्ये लाभगते यस्य द्विशताब्दानि तिष्ठति ॥८३॥

स्वोच्चस्थौ गुरुशुक्रौ च स्वमे चैव सुखस्थितौ ।

स्वोच्चे लाभगते मन्दे सहस्राणां समा स्थितिः ॥८४॥

कर्कलग्नमते चन्द्रे केन्द्रस्थाने च वाक्यतिः ।

मित्रस्वोच्चस्थितैः खेटैर्लक्ष्मीस्तस्य चिरं भवेत् ॥८५॥

बृहस्पति लग्न में हो, सूर्य छठवें हो, बुध सातवें हो, शुक्र चौथे हो, तीसरे शनि हो तो वह गृह १०० वर्ष रहेगा ॥ ७३ ॥ शुक्र लग्न में हो, दशवें बुध हो, ग्यारहवें सूर्य हो, केन्द्र १, ४, ७, १० में गुरु हो तो भी १०० वर्ष गृह रहेगा ॥ ७५ ॥ बृहस्पति चतुर्थ में हो, दशवें चन्द्रमा हों, मंगल तथा सूर्य लाभ में हो तब जिस प्रकार को आरम्भ करे वह मकान ८० वर्ष रहेगा ॥ ७५ ॥ बृहस्पति तथा शुक्र लग्न में हो, छठवें मंगल हो, सूर्य एकादश में हो तो वह गृह २०० वर्ष स्थिर रहेगा ॥ ७६ ॥ बृहस्पति और शुक्र उच्च के होकर एकादश में और चतुर्थ में हो, अपने उच्च का होकर शनि एकादश में हो तो १००० वर्ष स्थिर रहेगा ॥ ७७ ॥ कर्क लग्न में चन्द्रमा हो, केन्द्र स्थान में गुरु हों, मित्र के गृह में तथा उच्च स्थान में बुध हो तो लक्ष्मी बहुत दिन तक रहेगी ॥ ८०-८५ ॥

स्वोच्चे शुक्रे विलग्ने वा गुरौ वेशमगतेऽथवा ।

शनौ स्वोच्चे लाभगे वा लक्ष्म्या युक्तं चिरं गृहम् ॥-६॥

उच्च का शुक्र हो तथा लग्न में हो, गुरु चतुर्थ में हो, शनि उच्च का हो तथा ११ में हो तो वह घर लक्ष्मीयुक्त होकर बहुत कालतक रहेगा ॥ ८६ ॥

अथ दुष्टयोगानाह

शत्रुक्षेत्रगतैः खेटैर्नीचस्थैर्वा पराजितैः ।

प्रारम्भे यस्य भवने लक्ष्मीस्तस्य विनश्यति ॥८७॥

अन्यत्रोक्तम्--

एकोऽपि परभागस्थो दशमे सप्तमेऽपि वा ।

धूमाम्बरे यदैकोऽपि परांशस्थो ग्रहो गृहम् ।

अब्दान्तः परहस्तस्थं कुर्याच्चेद्वर्णपोऽत्रलः ॥८८॥

अन्यदपि--

लग्नगे शशिनि क्षीणे मृत्युस्थाने च भूसुते ।

प्रारम्भः क्रियते यस्य शीघ्रं तद्धि विनश्यति ॥८९॥

दशापती बलैर्हीने वर्णनाथे तथैव च ।

पीडितर्क्षगते सूर्ये न विदध्यात्कदाचन ॥६०॥

शत्रुक्षेत्र में ग्रह हों नीच के हों तथा पराजित हों ऐसे योग में जिस भवन का प्रारंभ करे वहाँ लक्ष्मी का नाश होगा । कोई एक ग्रह शत्रुगृह में हो तो तथा दशम या सप्तम में हों, वर्णनाथ निर्बल हों तो वह गृह परहस्तगत हो जावे । सप्तम में तथा दशम में एक ग्रह भो हो तथा शत्रु नवांश में स्थित हो तो वह गृह वर्ष के अन्त में परहस्तस्थ करे, यदि वर्णप बल हो तो यह फल होगा । क्षीण चन्द्रमा लग्न में हों, मृत्युस्थान में मंगल हो तो जिस मकान को प्रारम्भ करे वह मकान शीघ्र ही नाश हो जायेगा । दशापति निर्बल हों तथा वर्णनाथ भो निर्बल हों, पीडितर्क्ष में सूर्य हो तो कदापि गृह न बनावे ॥ ५७-६० ॥

अथ राहुमुखखात विचारः—

वृषार्कादित्रयं वेद्यां सिंहादि गणयेद् गृहे ।

देवालये च मीनादि तडागे मकरादिकम् ॥६१॥

वृषार्कादि तीन वेदी में, सिंहादित्रय गृह में, देवालय में, मीनादित्रय तडाग में मकरादित्रय ग्रहण करना चाहिए ॥ ६१ ॥

यथा गृहे—

कन्यासिंहे तुलायां भुजगपतिमुखं शम्भुकोणेऽग्निखातं

वायव्ये स्यात्तदास्यन्त्वलिधनुमकरे हीशखातं वदन्ति ।

कुम्भे मीने च मेषे नैर्ऋतिदिशि मुखं वायुकोणे च खातम्

चाऽग्नेः कोणे मुखं वै वृषमिथुनगते कर्कटे रक्षखातम् ॥६२॥

सिंह कन्या तुला के रवि में भुजगपति का मुख शम्भुकोण में रहता है तब खात अग्निकोण में शुभ है । वृश्चिक धन मकर के रवि में वायव्य कोण में मुख रहता है तब खात ईशान कोण में शुभ है तथा कुम्भ मीन मेष के रवि में नैर्ऋत्य कोण में मुख रहता है तब खात वायव्य कोण में शुभ होता है तथा वृष मिथुन कर्क के राशि में अग्निकोण में मुख रहता है तब खात नैर्ऋत्य कोण में शुभ होता है ॥ ६२ ॥

अथ खनिते खाते निरुसृतवस्तुफलानि—

खाते यदाश्म लभते हिरण्यमथेष्टिकाद्यं च समृद्धिरत्र ।

द्रव्यं च रम्याणि सुखानि धत्ते ताम्रादिधातुर्यदि तत्र वृद्धिः ॥६३॥

पिपीलिकाषोडशपक्षनिद्रा भवन्ति चेत्तत्र वसेन्न कर्ता ।
 तुषास्थिचौराणि तथैव भस्मान्यण्डानि सर्पा मरणप्रदाः स्युः ॥६४॥
 वराटिका दुःखकलिप्रदात्री कार्पास एवाति ददाति रोगम् ।
 काष्ठं प्रदग्धं यदि रोगभीतिर्भवेत्कलिः खर्परके च दृष्टे ।
 लौहे च कर्तुर्मरणन्निगद्याद्विचार्य वास्तुं प्रदिशन्ति धीराः ॥६५॥

खात में यदि पत्थर निकले तो हिरण्य लाभ होय, ईटा निकले तो वृद्धि कहना, द्रव्य निकले तो उत्तम सुख होय, ताम्रादि धातु निकलने से वृद्धि होय । चींटी या मेघा निकले तो अशुभ है । भूसा, हड्डी, वस्त्र, भस्म, अण्डा, सर्प, निकल तो मृत्युप्रद है । कौड़ो निकले तो दुःख और कलह होवे । कपास निकले तो अतिरोग देवे, जल! काठ निकले तो रोग भय हो, खपड़ा निकले तो कलह होय । लोहा निकले तो कर्ताकी मृत्यु होय । धीर विद्वान् विचार करके वास्तु का फल इस प्रकार कहते हैं ॥६३-६५॥

पृथ्वीशयन में परिहार—

वेदाष्टपञ्चाग्निरसाद्रिषट्चः शोते मही वै रविमादिर्नक्षम् ।
 कृते तडागे त्वथ वाद्यगेहे बीजोसिलाङ्गल्यपरे शुभः स्यात् ॥६६॥

अन्यदपि—

सयान्नाडयो भव ११ रुद्र ११ द्वादश १२ रवि १२
 ऋक्षे २७ नृपा १६ श्र क्रमात् ।

सुप्तश्चैव वसुन्धरामखनयेद्रापीतडागादिकम्

यात्रापाठकृषिक्रियाद्यमशुभं ज्ञेयं शुभं तस्करे ॥६७॥

पूर्वोक्त नक्षत्रों की ४।५।६।७।८।९।१०।११।१२।१३।१४।१५।१६।१७।१८।१९।२०।२१।२२।२३।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१।३२।३३।३४।३५।३६।३७।३८।३९।४०।४१।४२।४३।४४।४५।४६।४७।४८।४९।५०।५१।५२।५३।५४।५५।५६।५७।५८।५९।६०।६१।६२।६३।६४।६५।६६।६७।६८।६९।७०।७१।७२।७३।७४।७५।७६।७७।७८।७९।८०।८१।८२।८३।८४।८५।८६।८७।८८।८९।९०।९१।९२।९३।९४।९५।९६।९७।९८।९९।१००।

अथ सौरमासः—

मेघे चैत्रे वृषे ज्येष्ठे आषाढे कर्कटे रवौ ।

सिंहे भाद्रपदे तोलावाश्विने कार्तिकेऽलिगे ॥६८॥

पौषे नके तथा माघे मकरे कुम्भगेऽपि च ।

प्रकुर्यान्मन्दिरं विद्वान्नाऽन्यैः क्वैश्चिदुदीरितम् ॥६६॥

चैत्र में मेष के रवि, ज्येष्ठ में वृष के रवि, आषाढ में कर्क के रवि, भाद्रपद में सिंह के रवि, आश्विन में तुला के रवि, कार्तिक में वृश्चिक के रवि हों, पौष में मकर के रवि तथा माघ में मकर और कुम्भ के रवि हों तो मन्दिर बनावे अन्य राशि में शुभ नहीं है ऐसा कुछ लोगों का मत है ॥ ६८-६९ ॥

अथ शुभमास-

मार्गशीर्षे तथा पौषे माघवे श्रावणे तथा ।

फाल्गुने च कृतं वेश्म सर्वसम्पत्प्रदं भवेत् ॥१००॥

वेश्मारम्भे शुभा यस्य विशेषाच्छुक्लपक्षगा ।

कुम्भेऽर्के फाल्गुने मासे श्रावणे पिहर्कयोः ॥१०१॥

पौषे नके गृहं कुर्यात्पूर्वपश्चिमदिङ्मुखम् ।

मार्गे तुलालिगे भानौ वैशाखे वृषभाजयोः ।

दक्षिणोदङ्मुखं श्रेष्ठं मन्दिरं नेष्टमन्यथा ॥१०२॥

मार्गशीर्ष, पौष, वैशाख, श्रावण तथा फाल्गुन में यदि मकान बनावे तो सर्वसम्पत्प्रद होवे । गृहारम्भ में शुक्लपक्ष शुभ है । कुम्भ के सूर्य फाल्गुन में हों और कर्क, सिंह के श्रावण में हों, पूस में मकर के हों तो पूर्व-पश्चिम दिशा के द्वार का गृह बनावे तथा तुला और वृश्चिक के भानु अगहन में हों, वृष और मेष के वैशाख में हों तो दक्षिणोत्तर द्वार का गृह श्रेष्ठ है, अन्यथा ठीक नहीं है ॥ १००-१०२ ॥

अथ चन्द्रर्क्षे द्वारम्-

वह्निमैत्रान्नगर्क्षस्थे चन्द्रे याम्योत्तराननम् ।

पित्र्याद्वासवतस्तस्मात्प्राग्द्वारं स्याद् गृहं शुभम् ॥१०३॥

कृत्तिका तथा अनुराधा से सात-सात नक्षत्र के क्रम से दक्षिणोत्तर द्वार शुभ है तथा मघा व धनिष्ठा से सात-सात नक्षत्र के क्रम से पूर्व तथा पश्चिम में द्वार बनाना शुभ है ॥ १०३ ॥

द्वारे दीर्घविस्तारम् -

गेहोच्चस्य चतुर्थांशो द्विगुणो द्वार उच्छ्रयः ॥१०४॥

गृह की ऊँचाई की चौथाई से द्विगुणित द्वारकी ऊँचाई बनावे ॥१०४॥

अथ चन्द्रसूर्यवेध-

गृहे ग्रामे तथा क्षेत्रे तडागारामभूमिषु ।

चन्द्रवेधस्तु कर्तव्यः सौरः काष्ठाग्निजीविनाम् ॥१०५॥

गृह, ग्राम, क्षेत्र, तालाब, बगीचा और भूमि में चन्द्रवेध करने से शुभ है अर्थात् दक्षिण उत्तर लम्बाई करे। काष्ठ और अग्नि जीविका वालों को सूर्यवेध यानो पूर्व पश्चिम लम्बाई करना चाहिए ॥ १०५ ॥

दीर्घविस्तारमान-

पूर्वपश्चिमतो दैर्घ्यं सपादं दक्षिणोत्तरम् ।

शुभावहं गृहं चोर्ध्वं सूर्यविद्धं न सौरूपदम् ॥१०६॥

पूर्व पश्चिम की चौड़ाई की सवाई उत्तर दक्षिण की लम्बाई करे। जैसे चौड़ाई २१ लम्बाई २५ यह चन्द्रवेध शुभ है और सूर्यवेध अशुभ है ॥ १०६ ॥

अथ वृषभचक्रम्-

शीर्षे वृषे मेघविधाविनर्शाद्दाहोऽग्निभिश्चाब्धिभिरग्रपादम् ।

शान्य युगैः पश्चिमपादयातैः स्थैर्यं गुणैः पृष्ठगतैर्धनाग्निः ॥१०७॥

लाभो युगैर्दक्षिणकुक्षियातेः पुच्छेऽग्निभिः सदुपपतेर्विनाशः ।

व मैयुर्गौर्निर्धनता च कुक्षौ पीडा च पत्युर्मुखगैस्त्रिभिश्च ॥१०८॥

रविभात्सप्त नैष्ठानि शुभान्येकादशाष्टमात् ।

दश शेषान्यनिष्ठानि सामिजिद्वृषवास्तुनि ॥१०९॥

सूर्य के नक्षत्र से गृहारम्भ ऋक्षपर्यन्त इसी वृषभ के हर एक अंग पर नक्षत्रों को स्थापित करके फल विचारे। अर्थ चक्र में स्पष्ट है। सूर्य के नक्षत्र से ७ नक्षत्र अनिष्ट हैं। आठवें से ११ नक्षत्र शुभ हैं। १६ से १० नक्षत्र अशुभ हैं। अभिजित् सहित वृषवास्तु में विचार करे ॥ १०७-१०९ ॥

शीर्षं ३	अग्रपाद ४	पृष्ठपाद ४	सव्य कुक्षि	लांगूल ३	अपसव्य कुक्षि ४	मुख ३	पृष्ठ ३	अंग
शून्य	स्थिर	धनप्राप्ति	लाभ	स्वामी नाश	निर्धन	स्वामी पीडा	दाह	फल

अथ तिथिविचार-

त्यक्त्वा चतुर्दशीं षष्टिं चतुर्थीमष्टमीममाम् ।

नवमीं च रविं भौमं गृहारम्भो विपञ्चके ॥११०॥

दारिद्र्यं प्रतिपत्कुर्याच्चतुर्थी धनहारिणी ।

अष्टम्युच्चाटनञ्चैव नवमीं शस्त्रघातिनी ॥१११॥

दर्शो राजभयं ज्ञेयं भूते दारविनाशनम् ।

गृहारम्भ में १४।६।।३०।६ तिथि, रवि, भौमवार और पञ्चक वर्जित है । प्रतिपद् में दारिद्र्य, ४ घनहानि, ८ उच्चाटन, ६ शस्त्रघात । ३० रोगभय, १४ स्त्री नाश यह तिथियों का फल है ॥ ११०-१११३ ॥

अथ धारविचार-

आदित्यभौमवारौ वै वज्रयो चान्ये शुभप्रदाः ॥११२॥

रवि मंगलवार वर्जित हैं । और शुभप्रद हैं ॥ ११२ ॥

अथ ऋक्षविचार-

ऋक्षरामृगरोहिण्यां पुष्यमैत्रे करत्रये ।

घनिष्ठाद्वितये पौष्णे गृहारम्भः प्रशस्यते ॥११३॥

गृहायलब्धऋक्षे च यन्नक्षत्रेषु चन्द्रमाः ।

शलाकासप्तकं देयं कृत्तिकादिक्रमेण च ॥११४॥

वामदक्षिणभागे तत्प्रशस्तं शान्तिकारकम् ।

अग्रे पृष्ठे न दातव्यं यदीच्छेच्छ्रेयमात्मनः ॥११५॥

ऋक्षश्चन्द्रस्य वास्तोश्च अग्रे पृष्ठे न शस्यते ।

पुरस्थे पृष्ठगे वास्तोः खनिः स्याद्विधुमे मृतिः ॥११६॥

तीनों उत्तरा, रोहिणी, मृगशिरा, रेवती, अनुराधा, चित्रा, शतभिषा, स्वाती, घनिष्ठा, पुष्य, हस्त इन ऋक्षों में गृहारम्भ शुभ है । गृहाय से लब्धि ऋक्ष में जिस नक्षत्र का चन्द्रमा हो उस नक्षत्र को विचार कर कृत्तिकादि क्रम से सप्तशलाका चक्र में स्थापित करे । वाम और दक्षिण में चन्द्रर्क्ष पड़े तो प्रशस्त तथा शान्तिकारक है । यदि अपना कल्याण चाहे तो सम्मुख तथा पृष्ठ में गृहारम्भ न करे । चन्द्रर्क्ष तथा वास्त्वर्क्ष सम्मुख और पृष्ठ में शुभ नहीं हैं । सम्मुख में पड़े तो चोरी जाय, पृष्ठ में पड़े तो स्वामी की मृत्यु हो ॥ ११३-११६ ॥

रामेणोक्तम्

देवालये गेहविधौ जलाशये राहोर्मुखं शम्भुदिशो विलोमतः ।

मीनार्कमिहार्कमृगार्कतस्त्रिभे खाते मुखान्पृष्ठविदिकशुभा भवेत् ॥११७॥

देवालय में, गृहारम्भ में और जलाशय में शम्भुदिशा (ईशानकोण) से विपरीत क्रम से राहु का मुख जानना । मीनार्क से देवालय में, सिहार्कदि से गृह में, मृगार्कदि से जलाशय में ३-३ राशि के क्रम से राहु का मुख समझना । मुख से पृष्ठ की ओर जो कोण है, उसमें खात शुभ है ॥११७॥

मासफल-

चैत्रे च व्याधिमाप्नोति यो नवं कारयेद् गृहम् ।

वैशाखे धनरत्नानि ज्येष्ठे मृत्युं तथैव च ॥११८॥

श्रावणे मित्रलाभं तु हानिं भाद्रपदे तथा ।

युद्धं स्यादाश्विने मासे कार्तिके धनधान्यकम् ॥११९॥

मार्गशीर्षे तथा विषं पौषे तस्करतो भयम् ॥१२०॥

लाभं तु बहुशो विद्यादग्निं माघे विनिर्दिशेद् ।

काञ्चनं फाल्गुने विद्यादिति मासफलं बुधैः ॥१२१॥

जो नवीन गृह चैत्र में बनावे तो व्याधि हो, वैशाख में धन तथा रत्न की प्राप्ति हो, ज्येष्ठ में मृत्युकारक है । आषाढ में उत्तम मृत्यु तथा श्रेष्ठ पशु की हानि हो, श्रावण में मित्र से लाभ हो, भाद्रपद हानिकारक है । आश्विन युद्धप्रद है, कार्तिक धनधान्यदायक है, मार्गशीर्ष धनवृद्धिकारक है, पौष में तस्कर से भय होता है । माघ में लाभ तो बहुत होता है परन्तु अग्नि से भय होता है, फाल्गुन लक्ष्मीवृद्धिकारक है ॥११८-१२१॥

मतान्तर से सौरमासफल-

गृहसंस्थापने सूर्यो मेषस्थो शुभदो भवेत् ।

वृषस्थे धनवृद्धिः स्यान्मिथुने मरणं भवेत् ॥१२२॥

कर्कटे शुभदं प्रोक्तं सिंहे मृत्युविवर्द्धनम् ।

कन्या रोगं तुला सौख्यं वृश्चिके धनवर्द्धनम् ॥१२३॥

कार्मुके च महाहानिर्मकरे स्याद्धनागमः ।

कुम्भे तु रत्नलाभः स्यान्मीने सद्म भयावहम् ॥१२४॥

इस वचन का फल चक्र से समझ लेवें। स्पष्ट रीति से लिखा है ॥१२२-१२४॥

चक्रम्

मे.	वृ.	मि.	क.	सि.	क.	सौर मास
शुभ	धन वृद्धि	मरण कारक	शुभ	भृत्य विव- र्द्धन	रोग दाता	फल
तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.	सौर मास
सौख्य	धन वृद्धि	महा हानि	धन लाभ	रत्न लाभ	भय दायक	फल

षोडशगृहविचार-

स्नानाग्निपाकशयनास्त्र भुजेश्च धान्यभाण्डारदैवतगृहाणि च पूर्वतः स्युः ।
तन्मध्यतस्तु शयनाज्यपुरीषविद्याभ्यासारोदनरतौषधसर्वधाम ॥१२५॥

पूर्वादि दिशा से स्नानगृह पूर्व में, पाकगृह अग्नि कोण में, शयनगृह दक्षिण में, अस्त्रगृह नैऋत्य में, भोजनगृह पश्चिम में, धान्यगृह वायव्य में, भण्डारगृह उत्तर में, देवतागृह ईशान में निर्मित करे। पुनः उसके मध्य में मंथनगृह, आज्यगृह, पुरीषगृह, विद्याभ्यासगृह, रोदनगृह, रतिगृह, औषधगृह, सर्वधामगृह बनावे ॥१२५॥

चक्रम्

देवता	सर्वधाम	स्नान	मंथन	पाक
औषध				आज्य
भण्डार				शयन
रति				पुरीष
धान्य	रोदन	भोजन	विद्याभ्यास	अस्त्र

अन्यदपि-

ईशान्यां देवतागेहं पूर्वस्यां स्नानमन्दिरम् ।
 आग्नेयां पाकसदनं भाण्डारागारमुत्तरे ॥१२६॥
 आग्नेयपूर्वयोर्मध्ये दधिपन्थनकं गृहम् ।
 आग्नेययाम्ययोर्मध्ये आज्यगेहं प्रशस्यते ॥१२७॥
 याम्यनैऋत्ययोर्मध्ये पुरीषत्यागमन्दिरम् ।
 नैऋत्याम्बुपयोर्मध्ये विद्याभ्यासाख्यमन्दिरम् ॥१२८॥
 पश्चिमवायुमध्ये च गृहं रोदनकं स्मृतम् ।
 वायव्योत्तरयोर्मध्ये रतिगेहं प्रशस्यते ॥१२९॥

ईशानकोण में देवतागृह, पूर्व में स्नानगृह, अग्निकोण में पाकगृह, उत्तर में भाण्डारगृह बनावे । अग्नि-पूर्व के मध्य में मंथनगृह, तथा अग्नि और दक्षिण के मध्य में आज्यगेह बनावे । दक्षिण-नैऋत्य के मध्य में पुरीषत्यागगृह तथा नैऋत्य पश्चिम के मध्य में विद्याभ्यास गृह निर्मित करे । तथा पश्चिम और वायु के मध्य में रोदनगृह तथा वायव्योत्तर के मध्य में रतिगृह बनावे । ऊपर चक्र देखिए ॥१२६-१२९॥

गृहवृद्धौ निषेधवाक्य-

इच्छेद्यदि गृहवृद्धिं ततः समन्ताद्विवर्द्धयेत् तुल्यम् ।
 एकोददेशे दोषः प्रागथवाऽप्युत्तरे कुर्यात् ॥१३०॥
 प्राग्भवति मित्रवैरं मृत्युभयं दक्षिणेन यदि वृद्धिः ।
 अर्थविनाशः पश्चाद्दग्निवृद्धौ मनस्तापः ॥१३१॥

यदि गृह वृद्धि करने की इच्छा हो तो चारों तरफ बराबर वृद्धि करे । एक ओर बढ़ावे तो दोष है । पूर्व अथवा उत्तर वृद्धि करे । पूर्व में मित्र से वैर, दक्षिण में मृत्युभय, पश्चिम में अर्थनाश, उत्तर में मन में ताप होगा ॥१३०-१३१॥

रामेणोक्तम्-

पूर्णन्दुतः प्राग्वदनं नवम्यादिषुत्तरास्य त्वथ पश्चिमास्यम् ।
 दर्शादितः शुक्लदले नवम्यादौ दक्षिणास्यं न शुभं वदन्ति ॥१३२॥

पुनर्गणोक्तम्-

पूर्णिमातोऽष्टमीं यावत्पूर्वास्यं वर्जयेद् गृहम् ।
 उत्तरास्यं न कुर्वीत नवम्यादिचतुर्दशीम् ॥१३३॥

अमाय अष्टमीं यावत्पश्चिमास्यं न कारयेत् ।

दक्षिणास्यं न कुर्वीत यावच्छुक्लचतुर्दशीम् ॥१३४॥

पूर्णिमा से अष्टमी तक पूर्वदिशा में द्वार अशुभ है, तथा नवमी से कृष्ण १४ तक उत्तर द्वार अशुभ है, ३० से ८ तक पश्चिम द्वार अशुभ है । नवमी से शुक्ल १४ तक दक्षिण द्वार अशुभ है । विशेष बात चक्र से समझ लेवें ॥१३२-१३४॥

निषिद्ध दिशाद्वार	विहित दिशाद्वार	तिथि
पूर्व	उत्तर दक्षिण पश्चिम	शुक्ल १५ से कृष्ण ८ तक
उत्तर	पूर्व पश्चिम दक्षिण	कृष्ण ९ से कृष्ण १४ तक
पश्चिम	पूर्व दक्षिण उत्तर	कृष्ण ३० से शुक्ल ८ तक
दक्षिण	पूर्व पश्चिम उत्तर	शुक्ल ९ से शुक्ल १४ तक

अथ जीर्णकाष्ठनिषेध-

जीर्णगेहेषु यत्काष्ठं मोहाद् दत्त्वा नवे गृहे ।

नानारोगभयं चैव धननाशं पशुक्षयम् ॥१३५॥

पुराने घर की लकड़ी नये घर में लगावे तो अनेक रोग तथा धननाश और पशुनाश होता है ॥ १३५ ॥

अथ शिवाबलि:-

शाक्रं चौरादिशङ्का हुतभुजि विविधक्लेशभीतिं च याम्ये

सौख्यं कल्याणवित्तं दितितनयदिशि स्वल्पकालस्थितिं च ।

वारुण्यं वित्तलाभोऽनिलदिशि सुहृदाभागमः स्थैर्यमेवं

सौम्ये शैवे नराणां प्रभवति मरणं वास्तुवेशमप्रवेशे ॥१३६॥

रात्रौ भक्तं मांसादिसंयुक्तं भूमौ निधाय,

ततः क्रियददूरे गत्वा तच्छब्दैर्दं चिन्तयेत् ॥१३७॥

पूर्व में चौरादिक शङ्का होती है, अग्नि कोण में अनेक क्लेश भय हो तथा दक्षिण में सुख तथा कल्याण हो, धनलाभ हो, नैऋत्य कोण में स्थिति अल्प हो, पश्चिम में धन लाभ हो, वायव्य में मित्र प्राप्ति हो, उत्तर में स्थिरता और सम्मान हो, ईशानकोण में मृत्यु हो । यह वास्तुवेशम प्रवेश में विचार करे । रात्रि में भात और मांस एकत्र करके भूमि पर

स्थापित करे। बाद में कुछ दूर चले तब शब्द का चिन्तन न करे कि किस दिशा में सियार का शब्द हुआ है ॥१३६-१३७॥

वास्तुपुरुष नामिज्ञान-

ऊर्ध्वभागे त्रयं त्यक्त्वाऽधोभागे तु द्वयं तथा ।

मध्ये नाभिं विजानीयाच्छेते वामेन पन्नगः ॥

पूर्वादिषु शिरः कृत्वा शेते भाद्रात्त्रिषु त्रिषु ॥१३८॥

ईशानतः सर्पयति कालसर्पो विहाय सृष्टिं गणयेद्विदिक्षु ।

शेषोऽस्य वास्तोर्मुखमध्यपुच्छं त्रयं परित्यज्य खनेच्चतुर्थम् ॥१३९॥

अथ गृहारम्भे निषेधकाल-

मध्याह्ने तु कृतं वास्तु कर्तुर्विचविनाशनम् ।

महानिशास्वपि तथा सन्धयोर्नैव कारयेत् ॥१४०॥

ऊर्ध्व भाग में तीन भाग त्याग दे, आधे भाग में दो भाग त्याग दे, मध्य भाग में नाभि जाने, वामावर्त्त से पन्नग शयन करता है। भाद्रपद से ले करके तीन-तीन मास पूर्वादिक दिशा में शिर रहता है। ईशान कोण से वामावर्त्त कालसर्प चलता है। कोण से गिनती करे, शेष वास्तु का मुख है। सो मुख, मध्य, पुच्छ तीनों छोड़ कर चतुर्थ भाग में कोण के और अग्रिम दिशा के मध्य में खात करे। मध्याह्न में गृहारम्भ करने से स्वामी तथा धन का नाश होता है और अर्द्धरात्रि में भी वही फल है। दोनों सन्ध्या में गृहारम्भ वर्जित है ॥१३८-१४०॥

अन्यच्च-

कृत्यं वेश्म भवं द्विदैवविहितं रात्रौ प्रवेशः क्वचित् ॥१४१॥

देशे ग्रामे गृहे युद्धे सेवायां व्यवहारके ।

नामराशोः प्रधानत्वं जन्मराशिं न चिन्तयेत् ॥१४२॥

विवाहे सर्वयज्ञेषु यात्रायां ग्रहगोचरे ।

जन्मराशोः प्रधानत्वं नामराशिं न चिन्तयेत् ॥१४३॥

गृहकृत्य दिन में शुभ है तथा गृहप्रवेश लगनाभाव में रात्रि में भी क्वचित् हो सकता है। देश, ग्राम, गृह, युद्ध तथा सेवा (नौकरी) एवं व्यवहार में नाम राशि को ही प्रधान करे, जन्मराशि की चिन्ता न करे। विवाह में, सब यज्ञों में और यात्रा में, ग्रहगोचर में जन्मराशि प्रधान करे, नामराशि की चिन्ता न करे ॥१४१-१४३॥

पूर्व	अग्नि	दक्षिण	नैऋत्य	दिशा
शुभ	मृत्यु	निर्धन	क्षय	फल
पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान	दिशा
पुत्रनाश	सुख	राज्य संपदा	धन	फल

जलवहनमार्गम्—

पूर्वे वाहे धनं किञ्चिदग्निकोणे धनक्षयः ।

याम्ये रोगभयं विद्यानैऋते कलहागमः ॥१४४॥

पश्चिमे मरणं सूतो वायव्ये बन्धुदर्शनम् ।

उत्तरे सर्वसिद्धिः स्यादीशान्ये सुखसम्पदा ॥१४५॥

पूर्व में नाबदान बनाने से कुछ धन, अग्निकोण में धनक्षय, दक्षिण में रोगभय, नैऋत्य में कलह, पश्चिम में पुत्रनाश, वायव्य में बन्धुदर्शन, उत्तर में सर्वसिद्धि, और ईशान में सुख तथा सम्पत्ति होती है ॥१४४-१४५॥

अथ कूविचारः—

रोहिण्यर्क्षाद्भौमभात्सूर्यभाच्च राहो ऋक्षाद् गण्यते कूपचक्रम् ।

यस्मिन्काले सर्वमेतत्प्रशस्तं तस्मिन्भूमौ निर्जले स्याज्जलत्वम् ॥१४६॥

रोहिणी नक्षत्र से, भौम ऋक्ष से, सूर्यर्क्ष से और राहु नक्षत्र से कूपचक्र का विचार करे। जिस समय चारों चक्र शुद्ध हों उस समय कूपारम्भ करने से निर्जल भूमि भी सजल हो जाती है ॥१४६॥

अथ रामेणोक्तराहुभात्कूपचक्रम्—

राहुऋक्षात्त्रयं पूर्वं त्रयमग्नौ ततः क्रमात् ।

मध्ये चत्वारि देयानि फलं तस्य विचारयेत् ॥१४७॥

पूर्वं शोककरो राहुराग्नेय्यां जलसम्पदा ।

दक्षिणे स्वामिमरणं नैऋत्ये दुःखदायकम् ॥१४८॥

पश्चिमे सजलं प्रोक्तं वायव्ये बालुका तथा ।

उत्तरे निर्जलं वारि ईशान्ये च समुद्रवत् ॥१४९॥

मध्ये स्वल्पजलं वाच्यं नान्यथा गणकोत्तमैः ॥१५०॥

राहु के नक्षत्र से तीन-तीन पूर्वादि दिशाओं में और चार नक्षत्र मध्य में स्थापित करे, शुभाशुभ फल का विचार चक्र के अनुसार करे ॥१४७-१५०॥

पूर्व	अग्नि	दक्षिण	नैऋत्य	पश्चिम	दिशा
३	३	३	३	३	नक्षत्र
शोक	जल मम्पत्ति	स्वामी मरण	दुःख	सजल	फल
वायव्य	उत्तर	ईशान	मध्य	दिशा	
३	३	२	४	नक्षत्र	
बालुका	निर्जल	समुद्रवत्	स्वल्प जल	फल	

अथ रविभात्कूपचक्रमम्--

सजलखण्डजले सजलाजले शुभजलं लवणं च शिलाजले ।

लवणमुष्णकरादिषु भेष्यपि नवफलानि विदुस्त्रिनयोडुभिः ॥१५१॥

सूर्य के नक्षत्र से ३-३ नक्षत्र सब दिशाओं में स्थापित करे और शुभा-शुभ फल का विचार चक्र से करे ॥१५१॥

पूर्व	अग्नि	दक्षिण	नैऋत्य	पश्चिम	दिशा
		३	३	३	नक्षत्र
सजल	खण्ड जल	सजल	अजल	शुभजन	फल
वायव्य	उत्तर	ईशान	मध्य	दिशा	
३	३	३	३	नक्षत्र	
लवण	शिला	लवण	शिला	फल	
जल	जल	जल	जल		

अथ भौमभात्कूपचक्रमम्--

शशिशरेष्विद्वयन्विगुणाः त्रयः बहुजलं च सुसिद्धिरभङ्गदम् ।

रुजमसिद्धियशोऽर्थप्रसिद्धिदं जलाविभङ्गकरः कुजमादिति ॥१५२॥

मङ्गल के नक्षत्र से इस चक्र के अनुसार वर्तमान नक्षत्र तक गणना करके शुभाशुभ विचार करना चाहिये ॥१५२॥

भौमचक्रम्—

नक्षत्र	१	५	५	३
फल	बहुजल	सुसिद्धि	अभंगद	रुज
नक्षत्र	२	४	३	५
फल	असिद्धि	पश, अर्थ	प्रसिद्धि	जलभंग

अथ रोहिणीभात्कूपचक्रम् -

रोहिण्यदि लिखेच्चक्रं यावत्पिष्टति चन्द्रमाः ।

मध्ये चन्द्रं द्वयं (२) पूर्वं तृतीयं (३) चाऽग्निकोणके ॥१५३॥

याम्ये तु बाण (५) संज्ञं स्यान्नैर्ऋत्ये रसमेव (६) च ।

पश्चिमे युगलं (२) वायौ युगलं (२) त्रय (३) मुत्तरे ॥१५४॥

ईशान्ये त्रीणि (३) देयानि ब्रह्मऋक्षादनुक्रमात् ।

मध्ये शीघ्रं जलं स्वादु पूर्वं भूमौ च खण्डनम् ॥१५५॥

आग्नेय्यां सजलं प्रोक्तं याम्ये च निर्जलं भवेत् ।

नैर्ऋत्ये सजलं प्रोक्तं पश्चिमे क्षारमेव च ॥१५६॥

वायव्ये चैव पाषाणमुत्तरे च समुद्रवत् ।

ईशाने कटुकं वारि कूपचक्रं विचारयेत् ॥१५७॥

रोहिणी से लेकर जिस नक्षत्र का चन्द्रमा हो वहाँ तक लिखकर पृष्ठ संख्या १२४ के चक्र के समान शुभाशुभ फल जानें ॥१५३-१५७॥

अथ रामोक्तगोहदेशान्यादौ कूपफलम्—

कूपे वास्तोर्मध्यदेशेऽर्थनाश-

स्त्वैशान्यादौ पुष्टिरैश्वर्यवृद्धिः ।

सूनोर्नाशः स्त्रीविनाशो मृतिश्च

सम्पत्पीडा शत्रुतः स्याच्च सौख्यम् ॥१५८॥

वास्तु (गृह) के मध्य में कूप बनावे तो धननाश हो, ईशान में पुष्टि, पूर्व में धनवृद्धि, अग्नि कोण में पुत्रनाश, दक्षिण में स्त्री नाश, नैर्ऋत्य

में मृत्यु, पश्चिम में सम्पत्ति, वायव्य में शत्रु से पीड़ा, उत्तर में सुख होता है ॥१५८॥

रोहिणीभात्कूपचक्रम्-

मध्य	पूर्व	अग्नि	दक्षिण	नैऋत्य	पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान	दिशा
१	२	३	४	६	२	२	३	३	नक्षत्र संख्या
शीघ्र जल सुस्वाद	खण्ड जल	सजल	निर्जल	सजल	क्षार जल	पाषा- ण	समुद्र वत् जल	कटु जल	फल
रोहि- णी	मृग. आर्द्रा	पुन. पुष्य. श्ले.	म. पू. उ.फा. ह.चि.	स्वा. वि. अनु. ज्ये. मू. पू.पा.	उ.पा श्र.	धनि. शः	पू. भा. उ.भा रेवती	अश्वि. भर. कृत्ति.	नक्षत्र नाम

अथ कूपविषये वसिष्ठोक्ति-

ऐश्वर्यं पुत्रहानिश्च स्त्रीनाशो निधनं भवेत् ।
सम्पत्त्वत्रुभयं सौख्यं पुष्टिः प्रागादितः क्रमात् ॥
मध्ये भागे कृते कूपे धनहानिश्च निश्चयात् ॥१५९॥

इसका अर्थ चक्र के अनुसार समझ लें ॥१५९॥

पूर्व	अग्नि	दक्षिण	नैऋत्य	पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान	मध्य	दिशा
धन प्राप्ति	पुत्र नाश	स्त्रीनाश	मरण	संपत्ति	शत्रुभय	सौख्य	पुष्टि	धन नाश	फल

अथ निवारचक्रम्-

निवारे पूर्वतस्त्रीणि त्रीणि त्रीणि च सर्वतः ।
मध्ये चत्वारि देयानि राहुमाद् गणयेद् बुधः ॥१६०॥
मध्ये पूर्वे जलं सौख्यं चोत्तरे धनवर्द्धनम् ।
याम्यनैऋत्ययोदुःखं भयमग्नौ परेऽनिले ॥१६१॥

अब निवार का विचार कहते हैं । राहु के ऋक्ष से पूर्वादि दिशा में तीन-तीन नक्षत्र स्थापित करे । शुभाशुभ फल का विचार चक्र के अनुसार करे ॥१६०-१६१॥

पूर्व	अग्नि	दक्षिण	नैऋत्य	पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान	मध्य	दिशा
सुख	भय	दुःख	दुःख	भय	भय	धन	भय	सुख	फल

अथ कोल्हूचक्रम्—

मूले चैकं हृदि सप्त शिखायां नवमं तथा ।

रज्जुमध्ये त्रयं दद्यात्कर्तरी सप्त कीर्तिताः ॥१६२॥

मूले च प्राणनाशाय हृदयेऽर्थप्रवर्द्धनम् ।

शिखामग्निभयं कुर्याद्रज्जुमध्यः शुभावहः ॥१६३॥

कर्तरीवृषभादीनां नाशं सम्यग्विचारयेत् ।

मर्गाचार्येण सम्प्रोक्तं कोल्हूचक्रं विशेषके ॥१६४॥

मूल में १ नक्षत्र, हृदय में ७ नक्षत्र और शिखा में ९ नक्षत्र स्थापित करे । फल का विचार चक्र में करे ॥१६२-१६४॥

मूल	हृदय	शिखा	रज्जु	कर्तरी	स्थान
१	७	९	३	६	ऋक्ष
प्राणनाश	धनवृद्धि	अग्निभय	शुभ	वृषभनाश	फल

अथ तडागचक्रम्—

सूर्यमाद् अण्येद्यावच्चन्द्रमं सर्वदा बुधैः ।

दिक्षु दिक्षु द्वयं न्यस्थ मध्ये पञ्च नियोजयेत् ॥१६५॥

षडऋक्षं वारिवाहे च फलं तस्य विचारयेत् ।

पूर्वस्यां वारिशोकः स्यादाग्नेय्यां सलिलं बहु ॥१६६॥

दक्षिणस्यां वारिनाशो नैऋत्याममृतं जलम् ।

पश्चिमायां जलं स्वादु वायव्ये वारिशोषणम् ॥१६७॥

उत्तरस्यां स्थितं तोयमैशान्यां कुत्सितं जलम् ।

मध्ये पूर्णजलं स्वादु वारि चामृतमेव च ॥१६८॥

सूर्य के नक्षत्र से चन्द्र नक्षत्र तक गणना कर तडाग चक्र में शुभाशुभ फल का विचार करे । चक्र में अर्थ स्पष्ट है ॥१६५-१६८॥

पूर्व	अग्नि	दक्षिण	नैऋत्य	पश्चिम	स्थान
२	२	२	२	२	ऋक्ष
वारि शोक	बहु जल	जल नाश	अमृत जल	स्वादु जल	फल
वायव्य	उत्तर	ईशान	मध्य	वारि वाह	स्थान
२	२	२	५	६	ऋक्ष
जल शोषण	स्थिर जल	कुत्सित जल	पूर्ण	अमृत जल	फल

अथ तडागमुहूर्तः—

रोहिणी चोत्तरात्रीणि पुष्यं मैत्रं च वारुणम् ।

पित्र्यं च वसुदैवत्यं भगणो वारिबन्धने ॥१६६॥

रोहिणी, तीनों उत्तरा, पुष्य, अनुराधा, पूर्वाषाढ, मघा, घनिष्ठा ये नक्षत्र वापी आदि में शुभ हैं ॥१६६॥

अथ जलाशयारम्भमुहूर्तः—

अनुराधामघाहस्ते रेवतीपूत्तरात्रये ।

रोहिणीयुगले पुष्ये घनिष्ठाद्वितये तथा ॥१७०॥

पूर्वाषाढाभिधे ऋक्षे शुभं मासि शुभे दिने ।

वापीकूपतडागानामारम्भः शुभदः स्मृतः ॥१७१॥

जलाशय के हेतु अनुराधा, मघा, हस्त, रेवती, उत्तरा तीनों, रोहिणी, मृगशिरा, पुष्य, घनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाषाढ ये नक्षत्र श्रेष्ठ हैं तथा शुभ मास और शुभ दिन में वापी, कूप और तालाब का आरम्भ करना चाहिये ॥१७०-१७१॥

अयेष्टिकारम्भे सुधालेपे च नक्षत्रादिविचारः—

उत्तराश्विथ्रुतौ पुष्ये ज्येष्ठान्ते रोहिणीकरे ।

स्थिरेऽङ्गके गुरौ मन्दे इष्टिकारम्भणं चरेत् ॥१७२॥

तथा गेहे सुधालेपः इष्टिकारम्भमादिपु ॥१७३॥

तीनों उत्तरा, अश्विनी, श्रवण, पुष्य, ज्येष्ठा, रेवती, रोहिणी, हस्त ये नक्षत्र आदि, स्थिर लग्न और रवि, गुरु तथा शनिवार को ईंट बनाने आरम्भ करे और इन्हीं नक्षत्रादिकों में मकान आदि का लेप (छ्वाई-पुताई) का आरम्भ भी करना चाहिये ॥१७२-२७३॥

अथेष्टिकानिर्माणम्—

पञ्च त्रीणि त्रिकं पञ्च सप्त पञ्चावनीजभात् ।

सौख्यं मृत्युः क्रमेणैव इष्टिकारम्भणे मतम् ॥१७४॥

इसका अर्थ चक्र से जानना चाहिये ॥१७४॥

५	३	३	५	७	५	ऋक्ष
सौख्य	मृत्यु	सौख्य	मृत्यु	सौख्य	मृत्यु	फल

इष्टिकायामग्निदाहविचारः—

गिरिवाणमुनिर्विधिवाण तथा दुःखदोऽप्यथ लाभरुजोऽप्यशुभः ।

सुखदः खलु इष्टिकाग्निविधौ कुजभादिति श्रेष्ठबुधैः कथितः ॥१७५॥

ईंट में अग्नि लगाने का विचार चक्र में भौम के ऋक्ष से है । इसका भी विचार करना चाहिए ॥१७५॥

७	५	७	४	५	ऋक्ष
शोक	लाभ	रोग	भय	सुख	फल

अथ बुधभादिष्टिकानिस्सारणचक्रम्—

त्रिकं पञ्च त्रिकं चैव सप्त पञ्च चतुर्थकम् ।

शुभाऽशुभं क्रमेणैवमिष्टिनिस्सारणं बुधात् ॥१७६॥

बुध के ऋक्ष से ईंट वर्तमान नक्षत्र तक निकालने के मुहूर्त का विचार करे । शुभाशुभ फल चक्र के अनुसार जानें ॥१७६॥

३	५	३	७	५	४	नक्षत्र
सौख्य	मृत्यु	सौख्य	मृत्यु	सौख्य	मृत्यु	फल

अथ शल्योद्धारार्थमहिबलचक्रम्—

अहिचक्रं प्रवक्ष्यामि यथा सर्वज्ञभाषितम् ।

द्रव्यं शल्यं तथा शून्यं येन जानन्ति साधकाः ॥१७७॥

ऊर्ध्वं रेखाष्टकं लेख्यं तिर्यक्पञ्चक्रमेण च ।

अहिचक्रं भवत्येवमष्टाविंशतिकोष्ठकम् ॥१७८॥

तत्र पौष्णाश्वियाम्यर्क्षं कृत्तिकामघभाग्यभम् ।
 उत्तराफाल्गुनीलेख्यं पूर्वपंक्त्यां भसप्तकम् ॥१७६॥
 अहिर्बुध्न्याऽजपादर्क्षं शतभं ब्राह्मसापेभम् ।
 पुष्यं हस्तं समालेख्यं द्वितीयां पंक्तिसंस्थितम् ॥१८०॥
 विधिर्विष्णुर्धनिष्ठाख्यं सौम्यं शिवपुनर्वसु ।
 चित्राभं च तृतीयायां पंक्तौ धिष्णस्य सप्तकम् ॥१८१॥
 विश्वभं तोयभं मूलं ज्येष्ठां मैत्रविशाखके ।
 स्वाती पंक्त्यां चतुर्थ्यां तु कृत्वा चक्रं धिलोकयेत् ॥१८२॥

अब अहिबलचक्र को कहते हैं, जिससे द्रव्य, शल्य तथा शून्य के भेद को साधक जान लेवें। ऊपर से नीचे को आठ रेखा खींचे और तिरछी यानी बेंडी पांच रेखा खींचे। इस तरह अट्ठार्दस कोठा का सर्पचक्र होगा। उसमें रेवती, अश्विनो, भरणी, कृत्तिका, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, ये सात नक्षत्र प्रथम पंक्ति में लिखे। उत्तराभाद्रपद, पूर्वाभाद्रपद, शतभिषा, रोहिणी, आश्लेषा, पुष्य, हस्त, ये सात नक्षत्र द्वितीय पंक्ति में लिखे। अभिजित्, श्रवण, धनिष्ठा, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, चित्रा ये सात नक्षत्र तृतीय पंक्ति में लिखे। उत्तराषाढ, पूर्वाषाढ, मूल, ज्येष्ठा, अनुराधा, विशाखा और स्वाती ये सात नक्षत्र चतुर्थ पंक्ति में लिखे ॥१७७-१८२॥

द्वारशाखा मघायाम्यं द्वारस्था कृत्तिका मता ।
 एवं प्रचालिते चक्रे प्रस्तारः पन्नगाकृतिः ॥१८३॥
 अश्वीशपूर्वाषाढादित्रिकं पञ्चचतुष्टयम् ।
 रेवतीपूर्वाभाद्रेन्दोर्भानि शेषाणि भास्वतः ॥१८४॥
 उदयादिगता नाड्यो भधनाः षष्ट्याप्तशेषके ।
 दिनेन्दुषुक्त्तियुक्तोऽसौ भवेत्तत्कालचन्द्रमाः ॥१८५॥
 चन्द्रवत्साधयेत्स्वर्यमृक्षस्थं चेष्टकालिकम् ।
 पश्चाद्विलोकयेत्तौ तु स्वर्क्षे वा चान्यमे स्थितौ ॥१८६॥
 चन्द्रर्क्षे च यदाकेन्दू तदास्ति निश्चितं निधिः ।
 मान्वर्क्षे च स्थितौ तौ तु शल्यं भवति नान्यथा ॥१८७॥

स्वस्वमे द्वितीयं ज्ञेयन्नास्ति किञ्चिद्विपर्यये ।

स्थितं न लभते द्रव्यं चन्द्रे क्रूरग्रहान्विते ॥१८८॥

इस तरह चक्र का प्रस्तार बनाने से सर्पाकृति होगी । द्वार की शाखा में मघा और भरणी नक्षत्र रहेगा और द्वार में कृत्तिका नक्षत्र रहेगा । अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ़, अभिजित्, श्रवण, रेवती, पूर्वाभाद्रपद ये चन्द्रमा के नक्षत्र हैं । इनके अतिरिक्त जो नक्षत्र हैं वे सूर्य के हैं अर्थात् रोहिणी, मृगशिरा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, धनिष्ठा, उत्तराभाद्रपद ये सूर्य के नक्षत्र हैं । उदयादि गत नाड़ियों की २७ से गुणो, ६० से भाग ले, शेष में गत नक्षत्र जोड़ दे तो स्पष्ट चन्द्र तात्कालिक होगा । चन्द्रमा की तरह सूर्य भी तात्कालिक होगा । चन्द्रमा की तरह सूर्य भी तात्कालिक बनावे, पीछे स्वऋक्ष में अथवा अन्य ऋक्ष में स्थित होना देखे । चन्द्रमा के नक्षत्र में जो सूर्य और चन्द्रमा हों तो निश्चय द्रव्य है और सूर्य के नक्षत्र में दोनों हों तो शल्य है, इससे अन्यथा नहीं है । अपने-अपने नक्षत्र में हों तो दोनों कहना, कुछ विपरीत हो तो कुछ है । यदि चन्द्रमा, क्रूरग्रह से युक्त हो तो स्थित द्रव्य भी नहीं मिले ॥१८३-१८८॥

अथ सर्पचक्रम्

रे०	अ०	भ०	कृत्तिका	म०	पू० फा०	उ० फा०
उ० भा०	पू० भा०	श०	रोहिणी	आश्ले०	पु०	ह०
अ०	श्र.	ध०	मृगशिरा	आ०	पु०	चि०
			शरा			
उ० पा०	पू० पा०	मू०	ज्ये०	अनु०	वि०	स्वा०

अथ दिक्साधनम्—

वृत्ते समभूगतो तु केन्द्रस्थितशङ्कोः क्रमशाः विशत्यपैति ।

छायाग्रमिहापरा च पूर्वा ताभ्यां सिद्धति मेरुदक्क याम्या ॥१८९॥

अथ गृहप्रवेशे नक्षत्राणि-

अ्युत्तरे चानुराधारां रेवत्यां रोहिणीद्वयम् ।

चित्रायां प्रविशेद् गेहं द्वारमे तु विशेषतः ॥१६०॥

तीनों उत्तरा, अनुराधा, रेवती, रोहिणी, मृगशिरा, चित्रा इन नक्षत्रों में तथा द्वारर्क्ष में विशेष करके गृहप्रवेश शुभ है ॥१८६-१६०॥

जीर्णगृहप्रवेशः-

घनिष्ठाद्वितये पुष्ये अ्युत्तरे रोहिणीद्वये ।

चित्रास्वात्यनुराधान्त्ये प्रवेशो जीर्णमन्दिरे ॥१६१॥

घनिष्ठा, शतभिषा, पुष्य, तीनों उत्तरा, रोहिणी, मृगशिरा, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, रेवती इन नक्षत्रों में जीर्णगृह में प्रवेश शुभ है ॥१६१॥

गृहप्रवेशे तिथिविचारः-

प्रवेशे प्राङ्मुखे पूर्णा नन्दा याम्यमुखे शुभा ।

भद्रा प्रत्यङ्मुखेऽथोदङ्मुखे गेहे तथा जया ॥१६२॥

पूर्व मुख के गृह में पूर्णा तिथि में, दक्षिण मुख के गृह में नन्दा तिथि में, पश्चिम मुख के गृह में भद्रा तिथि में तथा उत्तर मुख के गृह में जया तिथि में प्रवेश शुभ है ॥१६२॥

राजयोगः-

पुष्य - ध्रुवेन्दुहरि - सर्प - जलैः सजीवै-

स्तद्वासरेण च कृतं सुतराज्यदं स्यात् ।

एभिः कृतं च भवनं सततं शुभं च

लक्ष्म्यायुतं विविधमानयशःप्रदं स्यात् ॥१६३॥

श्रवण, पूर्वाषाढ, रोहिणी, तीनों उत्तरा इन नक्षत्रों में और बृहस्पति वार में गृहारम्भ करने से राज्ययोगकारक है। उस घर में उत्पन्न पुत्र को निश्चय राज्य प्राप्त हो तथा गुरुवार से युक्त पूर्वोक्त नक्षत्रों में गृहारम्भ करने से लक्ष्मीयुक्त गृह कहना चाहिये ॥१६३॥

गृहदशाज्ञानम्-

अरु-चट-तप-यश-वर्गाः पूर्वादीनां दिशां ज्ञेयाः ।

तेषां बसुशर-रस-युग-शशि-गुणवाहवः क्रमादङ्काः ॥१६४॥

पूर्व दिशादि से आठ, पाँच, छः, चार, सात, एक, तीन, दो ये स्वर हैं। क्रम से रवि, चन्द्रमा, मंगल, बुध, शनि, बृहस्पति, राहु, शुक्रे ये ग्रह दशापति होंगे। गाँव का स्वर, दिशा का स्वर एकत्र करके आठ से भाग देवे, जो शेष बचे वह पूर्वोक्त रव्यादि की दशा होगी ॥१६४॥

अथ दशाविचारे विशेषः—

देवालयात्तडागाद्वा ह्यारामाद्वा नृपालयात् ।

मुख्यग्रामात्समीपस्थादेषु चिन्त्या दशा बुधैः ॥१६५॥

मुख्य ग्राम से, देवगेह से, तालाब से, बगीचा से, राजा के मकान से इन सबमें जो समीप हो उसीसे घरवाले की दशाका विचार करे ॥१६५॥

पुनरपि आय-व्यय विचारः—

नामराशेरधीशो यो तस्माच्चिन्त्या दिशथ वा ।

गृहर्क्षं च गजैस्तष्टमुदितश्च व्ययो बुधैः ॥१६६॥

राशि का स्वामी जो ग्रह हो, उसकी जो दिशा हो उस दिशा के वर्ग का विधान करे। गृह नक्षत्र को आठ से भाग देवे, जो शेष बचे सो व्यय होगा ॥१६६॥

अथ सम्मुखराहुविशेषः—

यस्यां दिशि यदा राहुस्तस्यां द्वारं न कारयेत् ।

प्रवेशः सम्मुखे राहौ नैव कार्यः कदाचन ॥१६७॥

जिस दिशा में जब राहु रहे उस दिशा में द्वार न बनावे और सम्मुख राहु में गृह प्रवेश न करे ॥१६७॥

अथ गृहप्रवेशमुहूर्तः—

आश्लेषां च विशाखाया सह मघां पूर्वात्रयं याम्यभं

रिक्तां सूर्यकुजौ विहाय च कुहुं वेश्मप्रवेशः शुभः ।

गोसिंहालिवटास्तथैव धवलः पक्षः प्रशस्तोऽधिको

मध्या मन्मथचापमीनवनिता मासास्तु वास्तूदिताः ॥१६८॥

आश्लेषा, विशाखा, मघा, तीनों पूर्वा, भरणी नक्षत्र, रिक्ता तिथि, रवि, भौमवार, अमावस्या इन सबों को छोड़कर अन्य तिथि नक्षत्रवार में, वृष, सिंह, वृश्चिक, कुम्भ, मिथुन, धन, मीन, कन्या लग्नों में तथा वास्तु के लिये कथित मासों में गृहप्रवेश शुभ है ॥१६८॥

इति गृहारम्भगृहप्रवेशप्रकरणम् ।

❀ अथ प्रकीर्णप्रकरणम् ❀

अथ जलाशयखननमुहूर्तः—

चित्रा युगे करपौष्णयुगेन्दौ भित्रधनोत्तरधातुजलेशे ।

पुष्यमघादितिभे शुभवारे चैष खनेत्सलिलाशयमिष्टम् ॥१॥

चित्रा, स्वाती, हस्त, रेवती, अश्विनी, मृगशिरा, अनुराधा, घनिष्ठा-
तीनों उत्तरा, रोहिणी, शतभिषा, पुष्य, मघा, पुनर्वसु इन नक्षत्रों में, शुभ-
ग्रहों के वारों में जलाशय खनवाना शुभ है ॥१॥

अथ देवादिप्रतिष्ठाऽमुहूर्तः—

प्राज्ञेशशक्रहरिहस्तसमीरणेषु

मूलेन्दुमैत्रगुरुपौष्णशिवोत्तरेषु

शस्ते दिने शुभतिथौ शशिनि प्रवृद्धे

धन्यां वदन्ति निखिलां शुभदां प्रतिष्ठाम् ॥२॥

रोहिणी, ज्येष्ठा, श्रवण, हस्त, स्वाती, मूल, मृगशिरा, अनुराधा, पुष्य,
रेवती, आर्द्रा, तीनों उत्तरा, इन नक्षत्रों में और शुभ ग्रह के दिनों में, शुभ-
तिथि में, शुक्लपक्ष में देवादि की प्रतिष्ठा शुभ है ॥२॥

विशेषः—

गीर्वाणाम्बुप्रतिष्ठा-परिणयदहनाधानगेहप्रवेशा-

ञ्चौलं राज्याभिषेको व्रतमपि शुभदं नैव याम्यायने स्यात् ।

नो वा बाल्यास्तवार्धे सुरगुरुसितयोर्नैव केतूदये स्यात्

न्यूने मासेऽधिके वा नहि च सुरगुरौ सिंहनक्रस्थिते वा ॥३॥

देवता, तड़ाग आदि की प्रतिष्ठा, विवाह, अग्निहोत्र, गृहप्रवेश,
चूडाकरण, राज्याभिषेक, उपनयन ये कर्म याम्यायन, बृहस्पति शुक के
अस्त, बाल्य, वार्धक्य, केतु के उदय, क्षयमास, अकिमास तथा सिंह
मकरस्य बृहस्पति इनमें न करना चाहिये ॥३॥

पाकारम्भे चुल्हिकास्थापनमुहूर्तः—

गृहप्रवेशवारादौ पाकारम्भोऽपि शस्यते ।

तत्रैव रविवारेऽपि चुल्हिकास्थापनं शुभम् ॥४॥

गृहप्रवेश में कहे हुए दिनादि में प्रथम पाकारम्भ करना शुभ है ।
तथा गृहप्रवेश मुहूर्त और रविवार में भी चुल्हिका स्थापन शुभ है ॥४॥

मार्जनीबन्धनमुहूर्तः—

श्रवणादीनि षड्भानि त्यक्त्वाऽकशनिमङ्गलान् ।
विरिक्तसङ्क्रमे वारे मार्जनीबन्धनं शुभम् ॥५॥

स्वष्टार्थं ॥५॥

नष्टवस्तु प्राप्तिविमर्शः—

तिथिवारं च नक्षत्रं प्रहरेण समन्वितम् ।
दिक्संख्यया हतञ्चैव सप्तभिर्विभजेत्पुनः ॥६॥
एकेन भूतले द्रव्यं द्वये चेद्भाण्डसंस्थितम् ।
तृतीये जलमध्यस्थमन्तरिक्षे चतुर्थके ॥७॥
तुषस्थं पञ्चमे तु स्यात् षष्ठे गोमयमध्यगम् ।
सप्तमे मसमध्यस्थमित्येतत्प्रश्नलक्षणम् ॥८॥

तिथि, वार और नक्षत्र एकत्रित कर और उसमें प्रहर की भी संख्या मिलाकर आठ से गुणा करे। फिर उसमें सात से भाग देने पर यदि एक शेष बचे तो खोई वस्तु जमीन में गड़ी समझे, दो बचे तो नष्ट वस्तु किसी वर्तन में रखी जाने, तीन शेष बचे तो पानी में समझे, चार शेष बचे तो कहीं आकाश आदिमें छिपाई हुई समझे, पांच शेष बचे तो नष्ट वस्तु भूसी में छिपाई जाने, छह शेष बचे तो गोबर में छिपी जाने और सात शेष बचे तो नष्ट वस्तु को राख में छिपाई समझे ॥६-८॥

दिवारात्रिमुहूर्ताः—

शिवोऽहिमित्र पितरो वस्वम्बु विश्ववेधसः ।
विधिरिन्द्रोऽथ शक्राग्नी रक्षोऽब्धीशोऽर्यमा भगः ॥९॥
मुहूर्तेशा इमे प्रोक्ता दिवा पञ्चदश क्रमात् ।
मुहूर्ता गजनौ शम्भुरजैकचरणात्त्रयः ॥१०॥
हस्तात्पञ्चादितिर्जात्रो विश्वकौ नक्षमारुतैः ।
दिनमानस्य तिथ्यंशो गत्रेरपि मुहूर्तकाः ॥११॥
नक्षत्रनाथतुल्येऽस्मिन् स्थितं कुर्यात् स्वभोदितम् ।
दिनमध्येऽभिजिन्मध्ये दोषसंघेषु सत्स्वपि ।
सर्वं कुर्याच्छुभं कर्म याम्यदिग्गमनं विना ॥१२॥

शिव, सर्प, मित्र, पितर, विश्वम्बु, विश्ववेधा, विधि, इन्द्र, शुक, अग्नि, रक्ष, अब्धि, ईश, अर्यमा और भग, ये दिन के मुहूर्तेश माने गये हैं। बाकी इन श्लोकों का अभिप्राय निम्नलिखित चक्रसे समझ लें ॥९-१२॥

१	२	३	४	५	६	७	८
शिव	सर्प	मित्र	पितर	वसु	अम्बु	विश्व	विधि
आर्द्रा	श्लेषा	अनु	मघा	अग्नि०	पूषा	उषा०	अभि०
रुद्र	अजै	अहि	पूषा	दक्ष	यम	अग्नि	ब्रह्मा
आ०	पूषा	उभा	रेवती	अश्वि	भर०	कृत्ति०	रोहि०
९	१०	११	१२	१३	१४	१५	८
विधि	इन्द्र	इन्द्र	राक्षस	वरुण	अर्य	भग	मुहूर्त
रोहि	ज्ये०	वि०	मूल	शत	उ.	पू.	नक्षत्र
चन्द्र	आदि	गुरु.	वि.	सूर्य	त्वा	वायु	रा.
मृग	पुन०	पृष्य	श्रवण	हस्त	चि.	स्वा	नक्षत्र

अथ वारेषु त्याज्यमुहूर्ताः—

अर्यमा भानुमद्वारे चन्द्रे हि विधिराचसौ ।

पित्राग्नी कुज्वारे तु चन्द्रपुत्रे तथाऽभिजित् ॥१३॥

पितृब्राह्मौ भृगोर्वारे राक्षसाम्बू गुरोर्दिने ।

रौद्रसार्पौ शनौ प्राज्ञैरिमे त्याज्या मुहूर्तकाः ॥१४॥

रविवार के दिन उ० फा०, सोमवार को रोहिणी और मूल, मङ्गल वार को मघा तथा कृत्तिका, बुधवार को अभिजित्, गुरुवार को मूल तथा पूर्वाषाढ, शुक्रवार को मघा तथा रोहिणी और शनिवार को आर्द्रा तथा आश्लेषा नक्षत्र त्याग देना चाहिये ॥१३-१४॥

सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	वार
अर्य	ब्रह्मराक्षस	पितृ अग्नि	अभिजि०	राक्ष अबु	पितृ ब्रह्म	शिव सपं	मु०
उ.फा.	रोहिणी	मघाकृत्ति	अभिजि०	मूल पूषा.	मघा रो	आर्द्रा श्ले	न०
दिन	दिन	दिन ४	दिन ८	दिन १२	दिन ४८	दिन १२	दि०
१४	रात्रि	रात्रि ७	रात्रि ७	रात्रि ६	रात्रि ६	रात्रि ४	रा०

अथ मद्यारम्भमुहूर्तः—

रौद्रे पित्र्ये वारुणे पौरुहूते याम्ये सार्पे नैऋते चैव धिष्ये ।

पूर्वाख्येषु त्रिष्वपि श्रेष्ठ उक्तो मद्यारम्भः कालत्रिद्धिः पुराणः ॥१५॥

आर्द्रा, मघा, शतभिषा, ज्येष्ठा, भरणी, आश्लेषा, मूल और तीनों पूर्वा इन नक्षत्रों में यदि मदिरा बनाने का कार्य किया जाय तो उत्तम है ॥१५॥

अथ नूतनवस्त्रधारणमुहूर्तः—

रोहिणीषु करपञ्चकेऽश्विमे ऋत्तरेऽपि च पुनर्वसुद्वे ।

रेवतीषु वसुदैवते च भे नव्यवस्त्रपरिधानमिष्यते ॥१६॥

रोहिणी, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, अश्विनी, तीनों उत्तरा, पुनर्वसु, पुष्य, रेवती और धनिष्ठा इन नक्षत्रों में नवीन वस्त्र पहनना उत्तम है ॥१६॥

अथ मुक्ता-सुवर्णादि धारणमुहूर्तः—

नासत्यपौष्णवसुभे करपञ्चके च मार्तण्डभौमसुरमन्त्रिशशाङ्कवारे ।

मुक्तासुवर्णमणिविद्रुमदन्तशङ्खरक्ताम्बराणिविधृतानि भवन्तिसिद्धयः ॥

अश्विनी, रेवती, धनिष्ठा, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा और अनुराधा इन नक्षत्रों और रवि, भौम, गुरु तथा सोमवार को मोती तथा सुवर्ण के अलंकार, मणि, मूँगा, हाथी दाँत तथा शंख की बनी कोई चीज और लाल वस्त्र पहनना सिद्धिदायक है ॥१७॥

अथ रोगोत्पत्तौ विशेषः—

स्वातीश्लेषारौद्रपूर्वात्रयेषु शाक्रे भौमे सूर्यजे सूर्यवारे ।

नन्दारिक्तास्वेव रोगस्य चाप्तिर्मृत्युर्ज्ञेयः शङ्करै रक्षितोऽपि ॥१८॥

स्वाती, आश्लेषा, आर्द्रा, तीनों पूर्वा और ज्येष्ठा इन नक्षत्रों में, मङ्गल, शनि एवं रविवार में नन्दा और रिक्ता तिथि में रोग उत्पन्न होने से रोगी को शिवजी रक्षा करें तो भी मृत्यु होती है ॥१८॥

अथ रोगमुक्तिविचारः—

व्याध्युत्पत्तिर्यस्य पौष्णेशमैत्रे प्राणत्राणं जायते तस्य कृच्छ्रात् ।

वैश्वे सौम्ये रोगमुक्तिस्तु मासाद्विशत्या स्याद्वासराणांम घासु ॥१९॥

रोग उत्पन्न होने के दिन रेवती वा अनुराधा नक्षत्र के होने से रोगी के प्राण कठिनता से बचते हैं। उत्तराषाढ़ वा मृगशिरा के होने से एक महीने तक और मघा के होने से रोगी बीस दिन तक कष्ट भोगता है ॥१९॥

पक्षाद्धस्ते वासवे सद्विदैवे मूलाश्विन्योरग्निधिष्णे नवात् ।

याम्ये त्वाष्ट्रे वैष्णवे वारुणे च नैरुज्यं स्यान्नूनमेकादशाहात् ॥२०॥

हस्तनक्षत्र के होने से १५ दिन तक, धनिष्ठा, विशाखा, मूल, अश्विनी और कृत्तिका के होने से ६ दिन तक, भरणी, चित्रा, श्रवण और शतभिषा के होने से ११ दिन तक रोगी कष्ट भोगता है ॥२०॥

अहिर्बुध्न्ये तिव्यसंज्ञे समाने प्रजापत्यादित्ययोः सप्तरात्रात् ।

रोगान्मुक्तिर्जायते मानवानां निःसन्दिग्धं जल्पितं गर्गमुख्यैः ॥२१॥

उत्तराभाद्रपद, पुष्य, पूर्वाफाल्गुनी, अभिजित् और पुनर्वसु नक्षत्र में रोग उत्पन्न होने से रोगी ७ दिन तक निश्चय कष्ट भोगता है, यह गर्ग का मत है ॥२१॥

अथ वाणिज्यमुहूर्तः--

अनुराधोत्तरापुष्ये रेवतारोहिणीमगे ।

हस्तचित्राश्विभे कुर्याद्वाणिज्यं दिवसे शुभे ॥२२॥

अनुराधा, तीनों उत्तरा, पुष्य, रेवती, रोहिणी, मृगशिरा, हस्त, चित्रा, अश्विनी और शुभ वार में वाणिज्य कर्म करना उत्तम है ॥२२॥

अथ रोगमुक्तिस्नानमुहूर्तः--

इन्द्रोर्वारे मार्ग वे च ध्रुवे चमार्पा दित्यस्वातियुक्तेषु भेषु ।

पित्र्येचान्त्येचैवकुर्यात्कदाचिन्नैवस्नानं रोगमुक्तस्य जन्तोः ॥२३॥

सोम, शुक, ध्रुवसंज्ञक नक्षत्र अर्थात् रोहिणी, तीनों उत्तरा, आश्लेषा, पुनर्वसु तथा स्वाती नक्षत्र में रोगमुक्त मनुष्य को स्नान करना चाहिए । मघा, रेवती नक्षत्र में रोगमुक्त मनुष्य को स्नान करना ठीक नहीं ॥२३॥

रोगमुक्तस्नाने लग्नविचारः--

लग्ने चरे सूर्यकुजेज्यवारे रिक्तातिथौ चन्द्रवले च हीने ।

केन्द्रत्रिकोणार्थगते च पापे स्नानं हितं रोगविमुक्तिकानाम् ॥२४॥

ऊपर रोगमुक्त व्यक्ति के लिए नक्षत्र कह आये हैं । अब लग्न बतला रहे हैं--चर लग्न अर्थात् मेष, कर्क, तुला एवं मकर लग्न में, रवि, मंगल तथा गुरुवार की रिक्ता तिथि में जब कि चन्द्रमा निर्बल हो और त्रिकोण केन्द्र तथा धन भाव में कोई पाप ग्रह न बेटा हो, उस समय यदि रोगी को स्नान कराया जाय तो अच्छा है ॥२४॥

अथ धनुर्विद्यामुहूर्तः--

अदितिगुरुयमार्कस्वातिचित्राग्निपित्र्ये

ध्रुवहरिवसुमूलाश्वीन्दुमार्ग्यर्क्षकेषु ।

विशनिशशिवुधेहर्विष्णुबोधेऽपि पौषे

सुसमयतिथियोने चापविद्या प्रशस्ता ॥२५॥

पुनर्वसु, पुष्य, भरणी, हस्त, स्वाती, चित्रा, कृत्तिका, मघा, तीनों उत्तरा, रोहिणी, घनिष्ठा, मूल, अश्विनी, मृगशिरा, पूर्वाफाल्गुनी इन

नक्षत्रों में और शनैश्चर, सोम, बुध, विष्णु बोध में पौष में. इनसे वर्जित दिनों में धनुर्विद्या सीखने को प्रारम्भ करना शुभ है ॥२५॥

वैद्यक व गारुडी भाषा सीखने का मुहूर्त—

हस्तत्रयेऽनुराधायां पुनर्भे श्रवणत्रये ।

मूले चान्त्येऽश्विनीपुष्ये ज्येष्ठाश्लेषाद्र्भे मृगे ॥

वैद्यविद्या कुजेऽजेर्के ज्येष्ठाहीनेऽथ गारुडी ॥२६॥

हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, पुनर्वसु, श्रवण, घनिष्ठा, शतभिषा, मूल, रेवती, अश्विनी, पुष्य, ज्येष्ठा, आर्द्रा, मृगशिरा इन नक्षत्रों में और मङ्गल, सोमवार, रविवार में वैद्यक के पढ़ने का प्रारम्भ करे तथा ज्येष्ठा को छोड़कर और उक्त मुहूर्त में ही गारुडी विद्या अर्थात् साँप आदि विषैले जीवों के काट हुए को झाड़ना या सर्प पकड़ना सीखना प्रारम्भ करे ॥ २६॥

फारसी और अरबी भाषा सीखने का मुहूर्त—

ज्येष्ठाश्लेषामघापूर्वा रेवती भरणीद्वये ।

विशाखाद्रौत्तराषाढशतमे पापवासरे ॥

लग्ने स्थिरे सचन्द्रे च फारसीमारवीं पठेत् ॥२७॥

ज्येष्ठा, आश्लेषा, मघा, पूर्वा, रेवती, भरणी, कृत्तिका, विशाखा, आर्द्रा, उत्तराषाढा, शतभिषा इन नक्षत्रों में और पापवारों में तथा स्थिर लग्न सहित चन्द्र में फारसी और अरबी भाषा सीखना आरम्भ करे ॥२७॥

रत्नपरीक्षा कर्म सीखने का मुहूर्त—

पुनर्भे शतहस्ताद्ये श्रवोज्येष्ठा परीक्षणम् ।

अदिनि शतभं हस्तं श्रवणं चेन्द्रभं तथा ॥

रत्नानामष्टमीं मृतं हित्वा भौमं शनैश्चरम् ॥२८॥

रत्न-परीक्षा के मुहूर्त में पुनर्वसु, शतभिषा, हस्त, श्रवण, ज्येष्ठा, अष्टमी और चतुर्दशी को छोड़ मंगल और शनैश्चर को वर्जित करके अन्य मुहूर्त में प्रारम्भ करे ॥२८॥

शिल्पविद्यारम्भ मुहूर्त—

हस्तत्रये श्रवात्र्यर्क्षे त्र्युत्तरे रोहिणी मृगे ।

रेवत्यामश्विनीपुष्य - पुनर्वस्वनुराधयोः ॥

शस्ते तिथौ शुभे वारे शिल्पविद्यां समारभेत् ॥२९॥

हस्त, चित्रा, स्वाती, श्रवण, घनिष्ठा, शतभिषा, तीनों उत्तरा, रोहिणी, मृगशिरा, रेवती, अश्विनी, पुष्य, पुनर्वसु और अनुराधा इन नक्षत्रों में, शुभ तिथि और शुभ वारों में शिल्पविद्या (कारीगरी) का सीखना शुभ है ॥२६॥

कुआँ खुदाने के नक्षत्र और मूर्त—

हस्ताचिस्रो वासवं वारुणं च शैवं पितृयं त्रीणि चैवोचराणि ।

प्राजापत्यं चापि नक्षत्रमाहुः कूपारम्भे श्रेष्ठमाद्या मुनीन्द्राः ॥३०॥

हस्त, चित्रा, स्वाती, घनिष्ठा, शतभिषा, आर्द्रा, मघा और तीनों उत्तरा तथा रोहिणी नक्षत्र में कुआँ खुदाने के लिए प्राचीन मुनियों ने आज्ञा दी है ॥३०॥

द्रव्य देना व स्थापित करना—

साधारणोध्रुवदारुणारुख्यैर्धिष्ण्यैर्यदत्र द्रविणं प्रयुक्तम् ।

हस्तेन विन्यस्तवसु प्रनष्टं न लभ्यते तन्नियतं कदाचित् ॥३१॥

साधारण संज्ञक, उग्र, ध्रुव तथा दारुण संज्ञक नक्षत्रों में यदि किसी को धन उधार दिया जाता या धरोहर के रूप में रखा जाता है, तो वह वहाँ का वहाँ ही नष्ट हो जाता है, देनेवाले को फिर वापस नहीं मिलता ॥३१॥

हस्ती लेना वा देना—

हस्तेषु चित्रासु तथाऽश्विनीषु स्वात्यां च पुष्ये च पुनर्वसौ च ।

प्रोक्तानि सर्वाण्यपि कुञ्जराणां कर्माणि गर्गप्रमुखैः शुमानि ॥३२॥

हस्त, चित्रा, अश्विनी, स्वाती, पुष्य तथा पुनर्वसु इन नक्षत्रों में हाथी खरीदना, बेचना, एक स्थान से दूसरे स्थान को भजना आदि सभी कार्य प्रशस्त माने गये हैं ॥३२॥

घोड़ों का लेना या बेचना—

पुष्यश्रविष्ठाश्विनिसौम्यभेषु पौष्णानलादित्यकराहव्येषु ।

सवारुणक्षेषु बुधैः स्मृतानि सर्वाणि कार्याणि तुरङ्गमाणाम् ॥३३॥

पुष्य, घनिष्ठा, अश्विनी, मृगशिरा, स्वाती, पुनर्वसु, हस्त, रेवती तथा शतभिषा इन नक्षत्रों में घोड़ों के खरोदने-बेचने आदि सभी कार्य उत्तम माने गये हैं ॥३३॥

पशुओं के नगर में लाने और भेजने के लिए वर्जित समय—

चित्रोत्तरावैष्णवरोहिणीषु चतुर्दशीदर्शदिवाष्टमीषु ।

ग्रामप्रवेशं गमनं विदध्याद्धीमान्पशूनां न कदाचिदेव ॥३४॥

चित्रा, तीनों उत्तरा, श्रवण, रोहिणी, चतुर्दशी, अमावस्या तथा अष्टमी इन नक्षत्रों तथा इन तिथियों में बुद्धिमान् मनुष्य, गो आदि पशुओं को न ग्राम के भीतर लावे और न कहीं बाहर भेजे ॥३४॥

गवादि पशुओं के क्रय-विक्रय में वर्जित नक्षत्र—

शाक्रवासवकरेषु विशाखापुष्यमे न च पुनर्वसुषु ।

अश्विपूषभयुतेषु विधेयो विक्रयक्रयविधिः सुरभीणाम् ॥३५॥

ज्येष्ठा, धनिष्ठा, हस्त, विशाखा, पुष्य, पुनर्वसु, अश्विनी तथा रेवती इन नक्षत्रों में गौओं को खरीदना या बेचना ठीक नहीं है ॥३५॥

तृणकाष्ठादि संग्रह में वर्जित नक्षत्र—

वासत्रोच्चरदलादिपञ्चके याम्यदिग्गमनगेहगोपनम् ।

प्रेतदाहवृणकाष्ठसंग्रहं शय्यकाविरचनं च वर्जयेत् ॥३६॥

धनिष्ठा के उत्तरार्ध यानी अन्तिम दो चरण से लेकर अगले पाँच नक्षत्रों को पंचक कहते हैं। उस पंचक में दक्षिण दिशा की यात्रा, घर छवाना, प्रेत (मृतक) का दाह, तृण तथा काष्ठ का संग्रह और चारपाई बुनाना वर्जित माना गया है ॥३६॥

रौद्राहियाम्यानिलवारुणेन्द्राण्याहूर्जघन्यानि भुजङ्गदंष्टः ।

स वैनतेयेन सुरक्षितोऽपि प्राप्नोति मृत्योर्वदनं मनुष्यः ॥३७॥

जिस मनुष्य को कृत्तिका, मूल, मघा, विशाखा, आश्लेषा, रेवती तथा आर्द्रा नक्षत्र में साँप काट ले तो चाहे गरुड़ स्वयं उस मनुष्य की रक्षा क्यों न कर रहे हों, फिर भी वह नहीं बचता ॥३७॥

नृत्यारम्भ का विचार—

हस्तस्तिष्यो वासवं चानुराधाज्येष्ठा पौष्णं वारुणं चोत्तरा च ।

पूर्वाचार्यैः कीर्तितश्चन्द्रवर्ती नृत्यारम्भे शोभनो ऋक्षर्गः ॥३८॥

हस्त, पुष्य, धनिष्ठा, अनुराधा, ज्येष्ठा, रेवती, शतभिषा और तीनों उत्तरा इन नक्षत्रों में जबकि चन्द्रमा शुभ हो, उस समय यदि नृत्य सीखना आरम्भ करे तो अच्छा है ॥३८॥

राज्याभिषेक नक्षत्र—

मैत्रशाक्रकरपुष्यरोहिणीवैष्णवेषु तिसृषूत्तरासु च ।

रेवतीमृगशिराश्विनीषु च क्षमाभृतां समभिषेक इष्यते ॥३९॥

अनुराधा, ज्येष्ठा, हस्त, पुष्य, रोहिणी, श्रवण, तीनों उत्तरा, रेवती, मृगशिरा और अश्विनी इन नक्षत्रों में यदि राजाओं का अभिषेक किया जाय तो उत्तम है ॥३९॥

राजदर्शन—

सौम्याश्वतिष्यश्रवणश्रविष्ठाहस्तध्रुवत्वाष्टमपूषभानि ।

मित्रेण युक्तानि नरेश्वराणां विलोकने भानि शुभप्रदानि ॥४०॥

मृगशिरा, अश्विनी, पुष्य, श्रवण, घनिष्ठा, हस्त, ध्रुवसंज्ञक नक्षत्र, चित्रा, रेवती और अनुराधा इन नक्षत्रों में यदि राजाओं (बड़े आदमी) का दर्शन किया जाय तो अच्छा है ॥४०॥

अग्न्याधान मुहूर्त—

पुष्याग्नेयपुत्ररादित्यपौष्णज्येष्ठाचित्राऋद्धिदेवेन्दुभेषु ।

कुर्यादग्न्याधानमाद्यं वसन्तग्रीष्मान्तेष्वेव विप्रादिधर्षाः ॥४१॥

पुष्य, कृत्तिका, तीनों उत्तरा, पुनर्वसु, रेवती, ज्येष्ठा, चित्रा, हस्त, विशाखा और मृगशिरा नक्षत्रों में वसन्त और ग्रीष्मऋतु में ही ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों को अग्न्याधान करना चाहिए ॥४१॥

विशेष—

माघादिपञ्चमासेषु श्रावणे चाश्विने तथा ।

कुर्यान्मार्गोत्तमाङ्गैवाऽग्न्याधानं शुक्लपक्षके ॥४२॥

पञ्चाङ्गशुद्धदिवसे चन्द्रताराबलान्विते ।

चन्द्रे शुद्धियुते लग्ने चाष्टमाद्यविवर्जिते ॥४३॥

माघ आदि ५ मासों में, श्रावण, अश्विनी और मार्गशीर्ष में, शुक्ल पक्ष में, शुभ तिथियों में, चन्द्र तारा के बल में, शुद्धलग्न में और अष्टम तथा लग्न से भिन्न स्थान में चन्द्रमा हो तो अग्न्याधान करना चाहिये ॥४२-४३॥

इति प्रकीर्ण प्रकरण ।

❀ अथ कृषि-प्रकरण ❀

तत्र हल बीजवपन मुहूर्त—

षष्ठीं चैवाष्टमीं रिक्तां त्यक्त्वाऽर्कशनिमङ्गलान् ।

मूलद्वीश - मघाक्षिप्रचर - ध्रुवमृदूडुषु ॥

मानयुग्मालिगोकन्याधनुर्लग्ने हलक्रिया ।

बीजोप्तिश्च शुभैतेषु द्वीशश्रुत्यम्बुपान् विना ॥१॥

षष्ठी, अष्टमी, रिक्ता तिथि, रवि, शनि, मङ्गलवार इन सबों को छोड़कर अन्य तिथि और दिन में, मूल, विशाखा, मघा, क्षिप्र, चर, ध्रुव, मृदु संज्ञक नक्षत्रों में, मिथुन, वृश्चिक, वृष, कन्या, धनु लग्न में हल क्रिया (प्रथम हल जोतवाना) शुभ है । और विशाखा, श्रवण, शतभिषा इन नक्षत्रों को छोड़कर उपरोक्त मुहूर्तों में बीजवपन शुभ है ॥१॥

सस्यरोपण-छेदन—

बीजोप्तिथिवारक्षल्लग्नैश्च शुभं स्मृतम् ।

रोपणं सर्वसस्यानां छेदनं प्रथमं तथा ॥२॥

बीजोप्ति तिथि, वारादि में सब प्रकार के धान्य का रोपण और छेदन शुभ है ॥२॥

खल (खरिहान) स्थान—

पुरासन्ने प्रसन्नायां भूमौ कुर्यात् खलं शुभम् ।

तत्र स्थाप्यानि सस्यानि मर्दनार्थं शुभे दिने ॥३॥

ग्राम के समीप में, प्रसन्न भूमि में कणमर्दन करने के लिये खरिहान बनावे । और वहाँ मर्दन (दौनी) करने के लिये धान्य स्थापन करे ॥३॥

अथ मेघि (मेढ) स्थापन—

वटोदुम्बरनीपानां शाखोटवदरस्य च ।

शालमलेर्मशलेनैव मेधि कुर्याद् विचक्षणः ॥४॥

कपित्थविल्ववंशानां मेधि नैव शुभावहः ।

न पौपे न च रिक्तायां न कुजाकिंदिने तथा ॥५॥

मृदुक्षिप्रचरक्षेपु खाते द्रव्यं नियुज्य च ।

समूज्य धान्यवद्भागं मेधि संस्थापयेद् बुधः ॥६॥

बड़, गूलर, कदम्ब, सिहोर, वैर, सेमर इनका (मेघी) मेढ बनाना चाहिये और कैथ, बेल, बाँस का मेढ शुभ नहीं होता है । तथा पौष, रिक्ता, मङ्गल, शनि इनको छोड़कर बाकी तिथि, दिन में और मृदु क्षिप्र चर संज्ञक नक्षत्र में खात खन करके उसमें कुछ द्रव्य देकर पूजन करके मेघी के अग्र में धान्य बाँध कर स्थापन करे ॥ ४-६ ॥

धान्यमर्दन—

भार्येऽर्यम्णे श्रुतौ मूले ब्राह्ममैत्रमघासु च ।

पौष्णेन्द्रयोः शुभे वारे शुभं स्याद् धान्यमर्दनम् ॥७॥

पूर्वफाल्गुनी, उत्तरफाल्गुनी, श्रवण, मूल, रोहिणी, अनुराधा, मघा, रेवती, ज्येष्ठा इन नक्षत्रों में शनि मङ्गल को छोड़कर अन्य दिनों में धान्य-मर्दन शुभ है ॥७॥

बीजरक्षण—

अजपादान्त्यमूलेन्दुवातहस्तमघासु च ।

विश्वव्रह्मे स्थिरे लग्ने बीजं स्थाप्यं शुभे दिने ॥८॥

पूर्वभाद्रपदा, रेवती, मूल, मृगशिरा, स्वाती, हस्त, मघा, उत्तराषाढ, रोहिणी इन नक्षत्रों में, स्थिर लग्न में, शुभ दिन में धान्यादिक बीजधारण करना चाहिये ॥८॥

गृहादौ धान्यादिस्थापनम्-धान्यवृद्धिश्च

मिश्रोप्रगौद्रभुजगेन्द्रविभिन्नभेषु

कर्काजतौलिरहिते च तनौ शुभ हे ।

धान्यस्थितिः शुभकरी गदिता ध्रुवज्य-

द्रीशेन्द्रदस्रचरभेषु च धान्यवृद्धिः ॥९॥

मिश्र उग्र संज्ञक, आर्द्रा, श्लेषा, ज्येष्ठा इनसे भिन्न नक्षत्रों में, कर्क, मेष, तुला से भिन्न लगनों में, शुभ ग्रह के दिन में, घर वा बछड़ों में धान्य आदि रखना शुभ है । और ध्रुवसंज्ञक, पुष्य, विशाखा, ज्येष्ठा, अश्विनी, चर संज्ञक इन नक्षत्रों में वृद्धि के लिये अन्न सवाया लगाना शुभ है ॥९॥

अथ अर्घ (अन्नमूल्य) विचार—

समं मृदुक्षिप्रवसुश्रवोऽसि-मघात्रिपूर्वास्त्रपुं बृहत्स्यात् ।

ध्रुवद्विदैवादितिभे जघन्यं सार्पाम्बुपार्द्रानिलशाक्रयाम्यम् ॥१०॥

मृदु संज्ञक, क्षिप्र संज्ञक, धनिष्ठा, श्रवण, कृत्तिका, मघा, तीनों पूर्वा, मूल ये सम संज्ञक नक्षत्र हैं । और ध्रुवसंज्ञक, विशाखा, पुनर्वसु ये

बृहत्संज्ञक हैं । तथा श्लेषा, शतभिषा, आर्द्रा, स्वाती, ज्येष्ठा, भरणी ये जघन्यसंज्ञक हैं ॥१०॥

जघन्येऽर्कस्य सङ्क्रान्तिस्तदानस्य मर्घता ।

वृहत्संज्ञे समर्घत्वं समत्वं समसंज्ञके ॥११॥

जघन्य नक्षत्रों में रवि संक्रान्ति हो तो अन्न की महँगी (तेजी) होती है, बृहत्संज्ञक नक्षत्र में संक्रान्ति हो तो सस्ती (मन्दी) होती है । सम नक्षत्र में संक्रान्ति हो तो उस महीने में अन्न का भाव समान रहता है ॥११॥

अथ क्रय-विक्रय—

यमाहिशक्राग्निहुताशपूर्वा नेष्टाः क्रये विक्रयणे तु शस्ताः ।

यौष्णाश्विचित्राशतविष्णुवताः क्रये हिता विक्रयणे निषिद्धाः ॥१२॥

भरणी, श्लेषा, विशाखा, कृत्तिका, तीनों पूर्वा, क्रय (खरोद) करने में अशुभ और विक्रय (बेचने) में शुभ हैं । तथा रेवती, अश्विनी, चित्रा, श्रवण, स्वाती ये क्रय में शुभ और विक्रय में अशुभ हैं ॥१२॥

अथ द्रव्यप्रयोग—

ऋणं ग्राह्यं न संक्रान्तौ करे वृद्धौ कुजे रवौ ।

न देयं ज्ञे ध्रुवे मिश्रे तीक्ष्णोऽग्रे विष्टिषातयोः ॥१३॥

रवि, कुजवार, संक्रान्ति दिन, हस्त नक्षत्र, वृद्धि योग इन में ऋण न ग्रहण करें । बुधवार, ध्रुव मिश्र तीक्ष्ण उग्र संज्ञक नक्षत्र और भद्रा, पात योग इनमें ऋण न लगावे ॥१३॥

अथ नवान्नभक्षणमुहूर्त—

वृश्चिकेऽर्के च पूर्वार्धे मृगकुम्भस्थिते रवौ ।

सत्तिथौ शुक्लपक्षे च पञ्चम्यन्ते सितेतरौ ॥१४॥

मृदुक्षिप्रचरर्क्षेषु सत्तनौ सत्क्षणेऽपि च ।

हुत्वा वह्नौ विधानेन नवान्नं भक्षयेत्सुधीः ॥१५॥

वृश्चिक के सूर्य में १५ अंश पर्यन्त तथा मकर कुम्भ के सूर्य (माघ, फाल्गुन) में, शुभ तिथि में, शुक्ल पक्ष में तथा पञ्चमी पर्यन्त कृष्ण पक्ष में भी मृदु क्षिप्र चर संज्ञक नक्षत्रों में अग्नि में विधिपूर्वक हवन करके नवान्न भक्षण करना चाहिये ॥१४-१५॥

निषेध—

तुलाचापद्विद्वैवार्क चैत्रं नन्दां त्रयोदशीम् ।

जन्मर्क्षं शयनं विष्णोः शनिशुक्रकुजान् विना ॥१६॥

तुला घनु विशाखा इनमें स्थित रवि, चैत्र मास, नन्दा, त्रयोदशी तिथि, जन्मतारा, हरिशयन, शनि मङ्गल शुक्रवार इनको छोड़कर नवान्न भक्षण शुभ है ॥१६॥

होमाहुति मुहूर्त—

सैकातिथिर्वारयुता कृतासा शेषे गुणोऽग्रे भुवि वह्निवासः ।

सौख्याय होमे शशियुग्मशेषे प्राणार्थनाशौ दिवि भूतले च ॥१७॥

शुक्लपक्ष को प्रतिपदा से तिथि संख्या गिनकर १ जोड़ दे फिर उसमें रव्यादि वार संख्या जोड़कर ४ से भाग देने से ०, ३ शेष बचे तो पृथ्वी में अग्नि का वास रहता है, उसमें होम करने से सुख होता है। और १, २ शेष बचे तो क्रम से आकाश और पाताल में अग्निवास रहता है, उसमें होम करने से प्राण और घन का नाश होता है ॥१७॥

अथ महारुद्रादौ शिववासफलम्—

तिथिं च द्विगुणीकृत्य वाणैः संयोजयत्ततः ।

सप्तमिश्च हरेद्भागं शिववासं समुद्दिशेत् ॥१८॥

एकेन वासः कैलाशे द्वितीये गौरिसन्निधौ ।

तृतीये वृषभारूढः सभायां च चतुष्टये ॥१९॥

पञ्चमे भोजने चैव क्रीडायां षण्मते तथा ।

श्मशाने सप्तशेषे च शिववास इतीरितः ॥२०॥

कैलाशे लभते सौख्यं गौर्यां च सुखसम्पदः ।

वृषभेऽभीष्टसिद्धिः स्यात् सभा सन्तापकारिणी ॥२१॥

भोजने च भवेत् पीडा क्रीडायां कृष्टमेव च ।

श्मशाने मरणं ज्ञेयं फलमेव विचारयेत् ॥२२॥

स्पष्टार्थ—

शिववास शुभ तिथि चक्र—

शुक्ल पक्ष तिथि	२, ५, ६, ७, ९, १२, १३, १४
कृष्णपक्ष तिथि	१, ४, ५, ६, ८, ११, १२, ३०

अथ पशुपालन—

लगने शुभे चाष्टमशुद्धिसंयुते रक्षा पशूनां निजयोनिमे चरे ।

रिक्ताष्टमीदर्शकुजश्रवोध्रुवत्वाष्टेषु यान् स्थितिवेशनं न सत् ॥२३॥

अष्टम शुद्धि सहित शुभ लगन में, अपने योनि नक्षत्र (विवाह प्रकरणोक्त) में रिक्ता अष्टमी अमावस्या, मङ्गल श्रवण ध्रुव संज्ञक चित्रा इनको छोड़कर बाकी तिथि नक्षत्रों में पशु की रक्षा (पालन) करना शुभ है ॥२३॥

गजाश्वारोहणादि—

क्षिप्रान्त्यवस्विन्दुमरुज्जलेशादित्येष्परिक्कारदिने प्रशस्तम् ।

स्याद्वाजिकृत्यं त्वथ हस्तिकार्यं कुर्यान्मृदुक्षिप्रचरेषु विद्वान् ॥२४॥

क्षिप्रं संज्ञक, रेवती घनिष्ठा मृगशिरा स्वाती पूर्वाषाढ पुनर्वसु नक्षत्रों में, रिक्ता मङ्गल का छोड़कर बाकी तिथि, दिन में घोड़ा क सम्बन्धी सब कार्य शुभ है । मृदु क्षिप्र चर संज्ञक नक्षत्रों में, हस्ति (हाथी) सम्बन्धी कार्य करे ॥२४॥

इति कृषि-प्रकरण

❀ अथ यात्रा प्रकरण ❀

धनुर्मेघसिंहेषु यात्रा प्रशस्ता शनिज्ञोशनोराशिगे चैव मध्या ।

रवौ कर्कमीनालिसंस्थेऽतिदोर्षाजनुःपञ्चसप्तत्रिताराश्च नेष्टाः ॥१॥

घन, मेघ और सिंह के सूर्य में यात्रा उत्तम और मकर, कुम्भ, मिथुन, कन्या, वृष और तुला के सूर्यो में मध्यम, कर्क, मीन और वृश्चिक के सूर्यो में दीर्घ यात्रा जाननी चाहिए अर्थात् यात्रा में बहुत दिन लगे । यात्रा में पहली और पाँचवीं, सातवीं और तीसरी तारा निषिद्ध है ॥१॥

न षष्ठी न च द्वादशी नाष्टमी नो सिताद्या तिथिः पूर्णिमामा न रिक्ता ।

हयादित्यमित्रेन्दुजीवान्त्यहस्तश्रवोवासवैरेव यात्रा प्रशस्ता ॥२॥

छठ, द्वादशी, अष्टमी और शुक्लपक्ष की प्रतिपदा, पूर्णमासी, अमावस्या, रिक्ता, ४, ६, १३ ये तिथियाँ यात्रा में वर्जित हैं और अश्विनी,

पुनर्वसु, अनुराधा, मृगशिरा, पुष्य, रेवती, हस्त, श्रवण और घनिष्ठा ये नक्षत्र यात्रा में शुभ हैं ॥२॥

अश्विनी रेवती ज्येष्ठा पुष्यो हस्तः पुनर्वसुः ।

मैत्रं मृगशिरो मूलं यात्रायामुत्तमाः स्मृताः ॥३॥

अश्विनी, रेवती, ज्येष्ठा, पुष्य, हस्त, पुनर्वसु, अनुराधा, मृगशिरा, मूल ये यात्रा में उत्तम हैं ॥३॥

यात्रा में अशुभ नक्षत्र—

भरणी कृत्तिकाश्लेषा विशाखा चोत्तरात्रयम् ।

मघाऽऽर्द्रा चाशुभा ज्ञेयास्तथा चान्याश्च मध्यमाः ॥४॥

भरणी, कृत्तिका, अश्लेषा, विशाखा, तीनों उत्तरा, मघा, आर्द्रा ये यात्रा में अशुभ हैं । और शेष मध्यम हैं ॥४॥

अथ सर्वदिग्गमनार्हं नक्षत्र—

कराश्विनीचान्द्रधनिष्ठमैत्रैः पौष्णामाचार्यचतुर्मुखैश्च ।

प्रयाति सर्वा ककुभं मनस्वी नरः कृतार्थो गृहमेति भूयः ॥५॥

हस्त, अश्विनी, मृगशिरा, घनिष्ठा, अनुराधा, रेवती, पुष्य, श्रवण इन सर्वदिग्द्वार नक्षत्रों में, सब दिशाओं में जाने से मनुष्य कृतकार्य होकर सकुशल घर आता है ॥५॥

यात्रा में विहित लग्न—

कन्यायां मिथुने लग्ने मकरे च तुलाधरे ।

यात्रा चन्द्रबले कार्या शकुनश्च विचारयेत् ॥६॥

कन्या, मिथुन, मकर, तुला इन लग्नों में चन्द्रमा का बल देखकर यात्रा करे और शकुन विचार करे ॥६॥

यात्रा में वर्ज्य—

जन्मताराष्टमे चन्द्रे संक्रान्तौ सूर्यगे विधौ ।

भद्रागण्डान्तरिक्तासु षष्ठ्यां नैव व्रजेत्कचित् ॥७॥

द्वादश्यामपि चाष्टम्यां न गच्छेत्प्रस्थितोऽपि सन् ।

जन्ममासे न गन्तव्यं राज्ञा विजयमिच्छता ॥८॥

जन्मतारा, अष्टम चन्द्र, संक्रान्ति दिन (उपलक्षण से मासान्त और मासादि दिन), अमावस्या, भद्रा, गण्डान्त, रिक्ता और षष्ठी में

कदापि यात्रा न करे, तथा द्वादशी, अष्टमी और जन्म मास में प्रस्थान करने पर भी विजय चाहनेवाला यात्रा न करे ॥७-८॥

लग्नशुद्धि—

केन्द्रत्रिकोणद्विगताश्च सौम्यास्तृतीयलाभारिगताश्च पापाः ।

एवं यदि स्याद् गमने नरस्य तदार्थसिद्धिः पुनरागमश्च ॥६॥

शुभग्रह केन्द्र (१।४।७।१०), त्रिकोण (५।६) और २ इन स्थानों में हों और पापग्रह ३।१।६ इन स्थानों में हों तो ऐसे लग्न में यात्रा करने से अर्थसिद्धि सहित भवन में सकुशल आता है ॥६॥

अथ सर्वाङ्गज्ञान—

तिथिं वारश्च नक्षत्रमेकीकृत्य त्रिधा पुनः ।

द्वित्रिचतुर्भिर्गुणितं रससप्ताष्टभाजितम् ॥१०॥

आदिशून्ये भवेद्भानिर्मध्यशून्ये दरिद्रता ।

अन्त्यशून्ये भवेन्मृत्युः सर्वाङ्गी विजयी भवेत् ॥११॥

शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से तिथि संख्या, रव्यादि दिन संख्या और अश्विनी से नक्षत्र संख्या जो हो सबका योग करके ३ जगह धरे और शुभ से २, ३, ४ से गुणा करके ६, ७, ८ से भाग देने से प्रथम स्थान में शून्य हो तो हानि, मध्य में शून्य हो तो दरिद्रता, अन्त्य में शून्य बचे तो मृत्यु होती है और तीनों जगह अङ्क बचे तो विजयी होता है। यह यात्रा में विचार करना चाहिये ॥१०-११॥

कुम्भकुम्भांशौ त्याज्यौ सर्वथा यत्नतो बुधैः ।

तत्र प्रयातुर्नृपतेरर्थनाशः पदे पदे ॥१२॥

कुम्भलग्न और कुम्भ का नत्रांश यात्रा में अवश्य त्याग करे, क्योंकि उसमें यात्रा करने से पद-पद में अर्थनाश होता है ॥१२॥

त्र्यहं क्षीरं च पञ्चाहं क्षौरं सप्तदिनं रतम् ।

वर्ज्यं यात्रादिनात्पूर्वमशक्तस्तद्दिनेऽपि च ॥१३॥

यात्रा दिन से तीन दिन पूर्व दूध, ५ दिन पूर्व क्षौर और सात दिन पूर्व मैथुन त्याग करे। ऐसा न हो सके तो यात्रा के दिन अवश्य त्याग करे ॥१३॥

सम्मुखे दक्षिणे शुक्रे युद्धयात्रां विवर्जयेत् ।

रेवत्यादेर्मृगं यावदन्धः शुक्रो न दोषदत् ॥१४॥

सम्मुख और दक्षिण शुक में युद्धयात्रा न करे, परन्तु रेवती से मृगशिरा पर्यन्त शुक अन्ध रहता है, उसमें सम्मुख शुक दोषकारक नहीं होता ॥१४॥

यात्रा में प्रशस्त लग्न—

दिग्द्वारमे लग्नगते प्रशस्ता यात्रार्थदात्री जयकाङ्गिणी च ।

हानिं विनाशं रिपुतो भयं च कुर्यात्तथादिकप्रतिलोमलग्ने ॥१५॥

दिग्द्वार राशि ("मेष सिंह धनु पूर्व चन्द्र" इत्यादि) लग्न में यात्रा प्रशस्त है और धन-जय को देनेवाली होती है। पृष्ठ लग्न में (जैसे मेष लग्न में पश्चिम दिशा जाने में) हानि, धननाश और शत्रु से भय होता है ॥ १५॥

समयफल—

उषःकालो विना पूर्वा गोधूलिः पश्चिमां विना ।

विनोत्तरं निशीथः स्याद्याने याम्यां विनाऽभिजित् ॥१६॥

उषःकाल में पूर्व दिशा में न जाय, तथा गोधूलि में पश्चिम न जाय, दोपहर, रात्रि में उत्तर न जाय और अभिजित् में दक्षिण में न जाय ॥१६॥

परिहार—

सम्मुखस्थः शशी हन्ति दोषं तिथिभवारजम् ।

सर्वे दोषा विनश्यन्ति मनःशुद्धिर्यदा नृणाम् ॥१७॥

यदि चन्द्रमा सम्मुख रहे तो तिथि, नक्षत्र, वार सम्बन्धी सब दोषों का नाश होता है। और यदि मनःशुद्धि हो तो सब दोषों का नाश होता है ॥१७॥

पुरात्परे यदैकस्मिन् दिने यात्राप्रवेशकौ ।

तदा तु योगिनीशूलप्रतिशुक्रान्न चिन्तयेत् ॥१८॥

यदि एक ही दिन में अपने स्थान से यात्रा करके गन्तव्य स्थान में पहुँच सके तो दिक्शूल, योगिनी, संमुख शुक आदि का विचार नहीं करना चाहिये ॥१८॥

सर्वारम्भ लग्नशुद्धि—

सर्वकर्माणि कार्याणि शुभे लग्ने शुभांशके ।

त्रिलाभारिगतैः पापैः शुभैः केन्द्रत्रिकोणगैः ॥१९॥

शुभ राशि के लग्न में, शुभ राशि के नवांश में, पापग्रह ३, ६, ११ स्थान में, तथा शुभग्रह १, ४, ७, १०, १३, १६ स्थान में हों तो सब कार्य का आरम्भ करना शुभ है ॥१९॥

अथ सर्वारम्भमुहूर्त—

व्ययाष्टशुद्धोपचये लग्नगे शुभद्वयुते ।

चन्द्रे त्रिषड्दशायस्थे सर्वारम्भः प्रसिद्धयति ॥२०॥

जन्म राशि वा जन्म लग्न से उपचय (३।६।१०।११) राशि लग्न में हो और द्वादश तथा अष्टम स्थान शुद्ध (ग्रहवर्जित) हो और चन्द्रमा ३।६।१०।११ इन स्थानों में हो तो सभी कार्य का आरम्भ शुभ होता है ॥२०॥

यात्रा काल के शुभाशुभ नक्षत्र—

अश्विनी तु शुभा प्रोक्ता भरणी नाशकारिणी ।

कार्यघ्नी कृत्तिका चोक्ता रोहिणी सिद्धिदा बुधैः ॥२१॥

मृगः शुभस्ततश्चार्द्रा मध्यमा च पुनर्वसुः ।

पुष्यः शुभः सार्वमघापूर्वाश्च मयमृत्युदाः ॥२२॥

उत्तराहस्तचित्रास्तु विद्यालक्ष्मिशुभप्रदाः ।

स्वातीविशाखे तशुभे मैत्रं सर्वार्थसिद्धिदम् ॥२३॥

ज्येष्ठा मूलं क्रमाचोयं क्षयनाशार्थहानिदम् ।

त्रिश्वन्नहविष्णवश्च बुद्धिवृद्धिसुखप्रदाः ॥२४॥

वासवं वारुणं शैवं शुभं भद्रमतिप्रदम् ।

उत्तराभाद्रकं श्रीदं रेवती कामदायिका ॥२५॥

अश्विनी शुभ, भरणी नाश करनेवाली, कृत्तिका काम बिगाड़ने वाली, रोहिणी सिद्धिदायिनी, मृगशिरा शुभ, आर्द्रा मध्यम, पुनर्वसु तथा पुष्य शुभ, आश्लेषा सुखदायक, मघा विनाशकारी, पूर्वा मृत्युदायक, उत्तरा, हस्त तथा चित्रा ये तीनों क्रमशः विद्या, लक्ष्मी तथा मंगलदायक, स्वाती और विशाखा अशुभ, अनुराधा सर्वसिद्धिदायक, ज्येष्ठा, मूल तथा पूर्वाषाढ क्रम से क्षय, नाश और हानिदायक हैं। उत्तराषाढ, अभिजित् तथा श्रवण क्रम से बुद्धिदायक, वृद्धिदायक और सुख प्रदान करनेवाले हैं। धनिष्ठा, शतभिषा और पूर्वाभाद्रपद ये क्रम से शुभदायक, कल्याणकारी और मृत्युदायक हैं। उत्तराभाद्रपद लक्ष्मीदायक और रेवती मनःकामना को पूर्ण करनेवाली है ॥ २१-२५ ॥

इति यात्रा प्रकरण ।

❀ अथ दीक्षा प्रकरण ❀

दिव्यज्ञानं यतो दद्यात् कुर्यात् पापस्य संक्षयम् ।
 तस्माद् दीक्षेति सा प्रोक्ता मुनिमिस्त्रदशभिः ॥१॥
 जपपूजादिकं सर्वं कार्यं दीक्षायुतेनरैः ।
 अदीक्षिता ये कुर्वन्ति जपपूजादिका क्रियाः ॥२॥
 फलं नैव भवेत्तेषां शिलायामुम्वीजवत् ।
 तस्माद् दीक्षां प्रगृह्णीयाद् गुरोर्दीक्षाविशारदात् ॥३॥

दिव्य ज्ञान देने तथा पाप को क्षय करने के कारण मन्त्र का नाम 'दीक्षा' मुनियों ने कहा है। जप-पूजादि कर्म दीक्षायुक्त मनुष्य को ही करना चाहिये। बिना दीक्षा लिये जो जप-पूजादि कर्म करता है वह पत्थर पर बोये बीज के समान निष्फल हो जाता है। इसलिये दीक्षाविषय में विशारद गुरु से दीक्षा अवश्य ग्रहण करनी चाहिये ॥ १-३ ॥

दीक्षा ग्रहण का मूर्त—

मासेष्वाश्विनतो हि षट्सु पुरतः सुश्रावणे माधवे ।
 भद्रा-पूर्ण-त्रयोदशीशुभतिथौ शुक्रन्दुजेन्दौ गुरौ ॥
 रोहिण्युत्तरशाक्र - शङ्करमरुत-पुष्यद्विदैवाश्विनी ।

विष्णुश्चन्द्रवले सुलग्नससये दीक्षा बुधैः शस्यते ॥४॥

आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ, फाल्गुन, श्रावण, वैशाख इन मासों में, भद्रा (२, ७, १२), पूर्णा (५, १०, १५) १३ इन शुभ तिथियों में शक्र, बुध, सोम और गुरुवार में, रोहिणी, उत्तरा ३, ज्येष्ठा, आर्द्रा, स्वाती, पुष्य, विशाखा, अश्विनी और श्रवण नक्षत्रों में चन्द्र तारानुकूल होनेपर सुलग्न में मन्त्र ग्रहण करना प्रशस्त है ॥ ४ ॥

निषिद्ध मासों में भी विशेषता—

चैत्रे रामनवम्यां च ज्येष्ठे च निर्जलादिने ।

ग्रहणे सर्वकाले च दीक्षादानं प्रशस्यते ॥५॥

चैत्र शुक्ल रामनवमी में, ज्येष्ठमास निर्जला (शुक्ल ११) में और किसी भी मास में ग्रहण हो तो ग्रहण काल में मन्त्र ग्रहण करना प्रशस्त है ॥ ५ ॥

कार्तिके नवमी शुक्ला मार्गशीर्षे तृतीयका ।

पौषे च नवमी शुक्ला चैत्रे कामचतुर्दशी ॥६॥

वैशाखे त्वक्षया शस्ता ज्येष्ठे दशहरा तिथिः ।

आषाढे पञ्चमी शुक्ला श्रावणे कृष्णपञ्चमी ॥७॥

कार्तिकशुक्ल ६, मार्गशुक्ल ३, पौषशुक्ल ६, चैत्रशुक्ल १३, १४, वैशाखशुक्ल ३, ज्येष्ठशुक्ल १०, आषाढशुक्ल ५ और श्रावणकृष्ण ५ ये भी मन्त्र ग्रहण में प्रशस्त हैं ॥ ६-७ ॥

इति दीक्षाप्रकरण ।

— : * : —

❀ अथ संक्रान्तिप्रकरण ❀

ग्रहों के एक राशि से दूसरी राशि में प्रवेश करने को संक्रान्ति कहते हैं । उनमें सूर्य को संक्रान्ति विशेष पुण्यप्रद कही गई है ।

संक्रान्ति काल—

ऋतेः सहस्रभागो यः स कालो रविसंक्रमः ।

ब्रह्मापि तं न जानाति किं पुनः प्राकृतो जनः ॥१॥

ऋतिकाल का हजारवाँ भाग रवि का संक्रम काल होता है, उस काल को ब्रह्मा भी नहीं जानते फिर प्राकृतिक मनुष्यों की तो बात ही क्या है ॥ १ ॥

तस्मात् मुनीन्द्रैः संक्रान्तेरर्वाक् षोडशनाडिकाः ।

पश्चात् षोडश संप्रोक्ता स्थूलाः पुण्यतमास्तथा ॥२॥

इसलिये मुनीन्द्रों ने संक्रान्ति काल से १६ घड़ी पूर्व और १६ घड़ी पश्चात् पुण्यकाल कहा है ॥ २ ॥

मुहूर्तचिन्तामणौ—

संक्रान्तिकालाद्दुमयत्रनाडिकाः पुण्या मताः षोडश षोडशोष्णगोः ।

निशीथतोऽर्वागपरत्र संक्रमे पूर्वापराहान्तिमपूर्वभागयोः ॥३॥

पूर्णे निशीथे यदि संक्रमः स्याद् दिनद्वयं पुण्यमथोदयास्तात् ।

पूर्वं परस्ताद्यदि याम्यसौम्यायने दिने पूर्वपरे तु पुण्ये ॥४॥

संक्रान्तिकाल से पूर्व और पश्चात् १६, १६ घड़ी पुण्यकाल होता है । मध्य रात्रि से पूर्व (रात्रि के पूर्वाधं में) संक्रान्ति हो तो पूर्व दिन के मध्याह्नोत्तर में और रात्रि के उत्तरार्द्ध में संक्रान्ति हो तो अग्रिम दिन के पूर्वाह्न में पुण्यकाल होता है । यदि ठोक मध्य रात्रि में संक्रान्ति

हो तो पूर्व दिन के उत्तरार्ध और अग्रिम दिन के पूर्वार्द्ध दोनों दिन पुण्यकाल होता है अर्थात् उस स्थिति में दोनों दिन स्नान-दान का समान ही फल कहा गया है। विशेषता यह है कि--सायं सन्ध्या के बाद और प्रातः-सन्ध्या से पूर्व (रात्रि भर में) यदि कर्क की संक्रान्ति हो तो पूर्वदिन के उत्तरार्ध में और रात्रि भर में कभी भी मकर की संक्रान्ति हो तो अग्रिम दिन के पूर्वभाग में पुण्यकाल होता है ॥ ३-४ ॥

सन्ध्या समय में विशेषता

सन्ध्या त्रिनाडीप्रमितार्कविम्बादर्धोदितास्तादध ऊर्ध्वमत्र ।

चेद्याम्य-मौम्ये अयने क्रमात् स्तः पुण्यौ तदानीं परपूर्वघसौ ॥५॥

सूर्य के अर्धविम्बास्त के बाद ३ घड़ी सायं सन्ध्या बहलाती है, उस समय यदि मकर संक्रान्ति हो तो पूर्व दिन के उत्तरार्ध में ही पुण्यकाल होता है। एवं सूर्य के अर्ध विम्बोदय से पूर्व ३ घड़ी प्रातः सन्ध्या मानी जाती है। उस समय में कर्क की संक्रान्ति हो तो अग्रिम दिन ही पूर्वार्द्ध में पुण्यकाल होता है ॥ ५ ॥

पुनः विशेषता--

त्रिंशत् कर्कटके चाद्याः मकरे तु दशाधिका ।

पश्चात् पुण्यतमाः प्रोक्ता घटिका रविसंक्रमे ॥६॥

कर्क की संक्रान्ति से ३० घड़ी पूर्व से और मकर की संक्रान्ति से पश्चात् की ४० घड़ी पर्यन्त पुण्यकाल कहा गया है ॥ ६ ॥

संक्रान्ति में स्नानादि दिन में ही प्रशस्त है--

अहःसंक्रमणे पुण्यमहः सर्वं प्रकीर्तितम् ।

रात्रौ संक्रमणे पुण्यं दिनार्धं स्नानदानयोः ॥७॥

दिन में संक्रान्ति हो तो दिन भर पुण्यकाल माना जाता है। रात्रि में संक्रान्ति हो तो समीप के दिनार्ध में स्नान-दान करना चाहिये ॥७॥

या याः सन्निहिता नाड्यस्तास्ताः पुण्यतमाः स्मृताः ।

रवेः संक्रमणे प्रोक्ता ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥=॥

रवि की संक्रान्ति और सूर्य-चन्द्र के ग्रहणकाल के जितना समीप काल होता है उतना ही अधिक पुण्यतम कहा गया है ॥ ८ ॥

मेष की संक्रान्ति से जन्मलग्न वश फल--

जन्मोदयाद्भास्वदजप्रवेशलग्नं हि यद्भावगतं शुमाढ्यम् ।

तद्भाववृद्धिं प्रकरोति तस्मिन् वर्षे नृणां पापयुतं च हानिम् ॥९॥

मेष संक्रान्ति काल में जो लग्न हो वह जगल्लग्न कहा जाता है, वह अपनी जन्मलग्न से—जिस भाव में पड़े और यदि शुभ ग्रह से युक्त दृष्ट हो तो उस भाव की पुष्टि तथा पापग्रह से युक्त दृष्ट हो तो उस भाव की हानि होती है ॥६॥

विशेषफलम्—

जन्मोदये देहसुखं धनेऽर्थं लाभस्त्वृतीये च सहोत्थवृद्धिः ।

तुर्ये सुहृत्सौख्यमथात्मजाप्तिः पुत्रेऽथ षष्ठेऽरिपराजयः स्यात् ॥१०॥

स्त्रीसौख्याप्तिर्भवति मदने मृत्युरुग्भीश्च रन्ध्रे ।

धर्मार्थाप्तिस्तपसि दशमे वित्तसौख्ये पदाप्तिः ॥११॥

लाभे लाभः सुखधनचयो दुःखदारिद्र्यमन्ते ।

पुंसो मेषे प्रविशति रवौ जन्मलग्नात् विलग्ने ॥१२॥

मेष संक्रान्ति लग्न - यदि जन्म लग्न में हो तो उस वर्ष में शरीर सुख, द्वितीय भाव में हो तो धन लाभ, तृतीय भाव में हो तो सहोदर आदि को सुख, चतुर्थ भाव में हो तो मित्रादि बन्धुजनों से सुख, पञ्चम भाव में हो तो पुत्र सुख, षष्ठ भाव में हो तो शत्रु से पराजय, सप्तम भाव में हो तो स्त्री सुख, अष्टम भाव में हो तो मृत्यु या रोगभय, नवम भाव में हो तो धर्म और धन का लाभ, दशम भाव में हो तो धन, सुख और स्थान की प्राप्ति, एकादश भाव में हो तो सब प्रकार का लाभ धन, और सुख की वृद्धि और द्वादश भाव में जन्मलग्न पड़े तो दुःख और धनहानि होती है ॥१०-१२॥

वारतः संक्रान्तिफलम्—

रविरविजभौमवारे संक्रमणे दिनकरस्य सति मासे ।

पित्त-कफानिलजामयनरपति - कलहस्त्वनावृष्टिः ॥१३॥

बुधगुरु-चन्द्र-सिताहे रविसंक्रान्तावनामयं नृणाम् ।

क्षितिपतिनिकरक्षेमं सस्यविवृद्धिर्विधर्मिणां पीडा ॥१४॥

रवि, शनि या मङ्गलवार में सूर्य को संक्रान्ति हो तो उस मास में पित्त, कफ और वात के प्रकोप से प्राणियों को पीड़ा, राजाओं में कलह और अवृष्टि से दुर्भिक्ष होने की अधिक सम्भावना होती है। यदि बुध, गुरु, सोम या शुकवार में रवि की संक्रान्ति हो तो मानव समाज में आरोग्य-स्वास्थ्य और राजाओं में परस्पर प्रेम और अन्नादि की समृद्धि होती है, एवं पापकर्म करनेवालों की हानि होती है ॥१३-१४॥

संक्रान्तिः जन्मनक्षत्रफलम्—

संक्रान्तिधिष्ण्याधरधिष्ण्यतस्त्रिभे स्वभे निरुक्तं गमनं ततोऽङ्गमे ।

सुखं त्रिभे पीडनमङ्गभेऽशुकं त्रिभेऽर्थहानिः रसभे धनागमः ॥१५॥

जिस (दैनिक चन्द्र) नक्षत्र में संक्रान्ति हो तो उसके पूर्व के नक्षत्र से ३ नक्षत्र में अपना जन्म नक्षत्र हो तो उस मास में यात्रा करनी पड़ती है, उसके बाद के ६ नक्षत्रों में जन्म नक्षत्र होने से सुख, उसके आगे ३ नक्षत्र में पीडा, उसके आगे ६ नक्षत्रों में वस्त्र लाभ, उसके आगे के ३ नक्षत्रों में धन हानि, तथा उसके बाद के ६ नक्षत्रों में जन्म नक्षत्र पड़ने से उत मास में सुख होता है ॥१५॥

संक्रान्तिनामानि—

मकरे रविसंक्रान्तिर्भवेत् सौम्यायनाभिधम् ।

कर्के याम्यायनं प्रोक्तं दिनाद्यं देवदैत्ययोः ॥१६॥

षडसीत्याननं चाप-नृपुक-कन्याभूषे भवेत् ।

तुलाजे विषुवं विष्णुपदं सिंहाल्बिगोघटे ॥१७॥

मकर की संक्रान्ति का नाम सौम्यायन, कर्क की संक्रान्ति का नाम याम्यायन है । मकर देवता का दिनादि तथा कर्क में दैत्यों का दिनादि कहा गया है । धनु, मिथुन, कन्या और मीन की संक्रान्ति का नाम षडसीत्यानन, तुला और मेष की संक्रान्ति का नाम विषुव और वृष, सिंह, वृश्चिक एवं कुम्भ के रवि संक्रमण का नाम विष्णुपद है ॥१६-१७॥

अत्र पुण्यकाले षडशः—

याम्यायने विष्णुपदे चाद्या मध्यास्तुलाजयोः ।

षडसीत्यानने सौम्ये परा नाड्याऽतिपुण्यदाः ॥१८॥

संक्रान्ति काल से पूर्व १६ घड़ो और पश्चात् १६ घड़ो जो पुण्यकाल कहा गया है, उनमें—याम्यायन और विष्णुपद नाम की संक्रान्ति में आरम्भ के तृतीयांश काल में, तुला और मेष (विषुव) संक्रान्ति के मध्यभाग में और षडसीत्यानन तथा सौम्यायन संक्रान्ति के अंतिम तृतीय भाग में विशेष पुण्य कहा गया है ॥१८॥

अथ मेषगतरवौ विशेषः—

मघूरं निम्नपत्राभ्यां योऽत्ति मेषगते रवौ ।

अतिरोषान्त्रितस्तस्य तक्षकः किं करिष्यति ॥१९॥

मेषार्क संक्रान्ति के दिन जो कोई निम्ब के दो पत्र के साथ मसूर खाता है उसका अन्य सर्प की तो बात ही क्या, तक्षक भी कुछ नहीं कर सकता है। कोई इसका अर्थ करते हैं कि जब तक सूर्य मेष राशि में रहे तबतक प्रति दिन जो दो निम्ब के पत्र के साथ मसूर भक्षण करता है उसको एक वर्ष तक सर्प के विष का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता है ॥१६॥

वारानुसारेण संक्रान्तिनामानि—

घोरा रवौ ध्वाक्ष्यभृतद्युतौ च संक्रान्तिभौमे च महोदरी स्यात् ।

मन्दाकिनी ज्ञे च गुरौ च मन्दा मिश्रा भृगौ राक्षमिकार्कपुत्रे ॥२०॥

रविवार को पड़ी संक्रान्ति घोरा, सोमवार की संक्रान्ति ध्वाक्षी, भीमवार की संक्रान्ति महोदरी, बुधवार की संक्रान्ति मन्दाकिनी, गुरुवार की संक्रान्ति मन्दा, शुक्रवार की संक्रान्ति मिश्रा और शनिवार की संक्रान्ति राक्षसी कहलाती है ॥२०॥

संक्रान्तिनक्षत्रयोः सम्बन्धः—

उग्रक्षिप्रचरे — मैत्रध्रुवामिश्राख्यवास्णैः ।

ऋक्षैः संक्रान्तिरर्कस्य घोराद्या क्रमशा भवेत् ॥२१॥

घोरा संक्रान्ति में उग्रसंज्ञक नक्षत्र, ध्वाक्षी में क्षिप्रसंज्ञक नक्षत्र, महोदरी संक्रान्ति में चरसंज्ञक नक्षत्र, मन्दाकिनी संक्रान्ति में मैत्र संज्ञक नक्षत्र, मन्दा संक्रान्ति में ध्रुवसंज्ञक नक्षत्र, मिश्रसंक्रान्ति में मिश्रसंज्ञक नक्षत्र तथा राक्षसी संक्रान्ति में दाहण संज्ञक नक्षत्र रहते हैं ॥२१॥

फलम्—

ध्वाक्षी वैश्यान् सुखयति महोदर्यलं चौरसार्थान्

घोरा शूद्रानथ नरपतिनेव मन्दाकिनी च ।

मन्दाख्या च द्विजवरगणान्मिश्रकाख्या पशूश्च

चाण्डालान्तां प्रकृतिमखिलां राक्षसी संज्ञिता च ॥२२॥

ध्वाक्षी संक्रान्ति वैश्यों को, महोदरी चोरों को, घोरा शूद्रों को, मन्दाकिनी राजाओं को, मन्दा संक्रान्ति ब्राह्मणों को, मिश्रा पशुओं को और राक्षसी चाण्डाल आदि जाति वालोंको सुखी रखती है ॥२२॥

कालफलम्—

पूर्वाह्नकाले नृपतिं द्विजेन्द्रान्मध्ये दिने चाथ विशोऽपराह्णे ।

शूद्रान् रवावस्तमिते प्रदोषे पिशाचकान् रात्रिचरान्निशीथे ॥२३॥

नटादिकाश्चापररात्रिकाले प्रत्युषकाले पशुपालकाश्च ।

संक्रान्तिरर्कस्य समस्तलिङ्गान् प्रभातमन्ध्यासमये निहन्ति ॥२४॥

पूर्वाह्न समय में यदि संक्रान्ति लगे तो राजाओं को और विप्रों को, दोपहर को लगे तो वैश्यों को, दोपहर के बाद लगे तो शूद्रों को, प्रदोष में लगे तो पिशाचों को, रात्रि में लगे तो राक्षसों को, रात्रि के परभाग में संक्रान्ति लगे तो नटों को और रात्रि के पिछले पहर में संक्रान्ति लगे तो पशु पालनेवालों को दुःख देती है। यदि संक्रान्ति और किसी समय न लगकर सबेरे सूर्योदय के समय लगे तो वह बहुरूपियों को नष्ट करती है ॥२३-२४॥

संक्रान्तिमुखम्—

अर्के शुक्रे मुखं पूर्वे सौम्ये भौमे च दक्षिणे ।

शनौ चन्द्रे मुखं पश्चाद् गुरौ चैवोत्तरे मुखम् ॥२५॥

रवि और शुक्रवार को जो संक्रान्ति लगती है उसका मुख पूर्व दिशा की ओर रहता है। बुध तथा भौमवार को लगी संक्रान्ति का मुख दक्षिण को होता है, शनि और सोमवार को लगी संक्रान्ति का मुख पश्चिम को रहता है और गुरुवार को लगी संक्रान्ति का मुख उत्तर दिशा में रहता है ॥२५॥

वार और नक्षत्रों से फल जानने की रीति—

वा.	नक्षत्र	नाम	फल	काल	फल	मुख
र.	उग्र	घोरा	शूद्रों को सुख	पूर्वाह्न	विप्र राजाको दुःख	पूर्व को मुख
सो.	क्षिप्र.	ध्वाक्षा	वैश्यों को,	मध्याह्न	वैश्यों को दुःख	पश्चिम को मुख
भौ	चर	महोद.	चोरों को,,	अपराह्न	शूद्रों को दुःख	दक्षिण को मुख
बु.	मैत्र	मंदा	राजाओं,,	प्रदोष	पिशाचों को दुःख	दक्षिण को मुख
गु.	ध्रुव	मन्दा	ब्राह्मणोंको,,	अर्द्धरात्रि	राक्षसों को दुःख	उत्तर को मुख
शु.	मिश्र	मिथ्या	पशुओंको,,	अपराध	नटादिकों को दुःख	पूर्व को मुख
श.	दारुण	राक्ष.	चांडालों.	प्रत्युषका	पशुपालकोंको दुःख	पश्चिम को मुख

अथ करणे संक्रान्तिमुखम्—

ववे पर्वमुखं चोक्तं बालवे यमदिडमुखम् ।

कौलवे पश्चिममुखं तैतिले चोत्तरमुखम् ॥२६॥

गरे वायव्यदिग्बक्त्रं वणिज्याग्नेयदिडमुखम् ।

भद्रायामीशदिग्बक्त्रं शकुनौ नैऋते मुखम् ॥२७॥

चतुष्पदे च पाताले नागे चोर्ध्वमुखी भवेत् ।

किस्तुब्धे सर्वदिग्बन्धं संक्रान्तिमुखलक्षणम् ॥ २८ ॥

बवकरण में लगी संक्रान्ति का मुख पूर्व को, बालव करण में लगी संक्रान्ति का मुख दक्षिण को, कौलव करण में लगी संक्रान्ति का मुख पश्चिम को, तैतिल करण में लगी संक्रान्ति का मुख उत्तर को, गर करण में लगी संक्रान्ति का मुख वायव्य दिशा को, वणिज करण में लगी संक्रान्ति का मुख आग्नेय को, वृष्टि करण में लगी संक्रान्ति का मुख ईशानकोण को और शक्रानकरण में लगी संक्रान्ति का मुख नैऋत्य कोण में रहता है । चतुष्पद करण में लगी संक्रान्ति का मुख पाताल में, नाग में लगी संक्रान्ति का मुख ऊपर को और किस्तुब्ध करण में लगी संक्रान्ति का मुख चारों दिशाओं में रहता है ॥ २६-२८ ॥

वारे संक्रान्ति दृष्टिः—

चन्द्रे गुरौ चैव दृगीशकोणे सूर्ये सिते नैऋतिकोणदृष्टिः ।

धात्रीसुते दृक् कथिता च वायौ बुधे शनौ रुद्रदिशीक्षणं भवेत् ॥२९॥

सोम तथा गुरुवार की संक्रान्ति दृष्टि ईशानकोण में, रवि तथा शुक्रवार की संक्रान्ति की दृष्टि नैऋत्यकोण में, मंगल की को संक्रान्ति दृष्टि वायव्यकोण में, बुध तथा शनि की संक्रान्ति की दृष्टि ईशानकोण में रहती है ॥२९॥

अथ संक्रान्तिगमनम् —

मन्दे चन्द्रे गमः सौम्ये बुधे भौमे च वारुणे ।

रवौ शुक्रे गमो याम्ये गुरौ प्राग्गमनं स्मृतम् ॥३०॥

शनि तथा सोमवार की संक्रान्ति का गमन उत्तर दिशा में, बुध और मंगलवार की संक्रान्ति का गमन पश्चिम दिशा में, रवि और शुक्रवार की संक्रान्ति का गमन पूर्व दिशा में होता है ॥ ३० ॥

स्थितिः—

चतुष्पदे तैतिलनागयोश्च सुप्तो रविः संक्रमणं करोति ।

विद्याद् ववाख्ये च गराह्ये वा सवालवाख्ये स्थित एव विष्टौ ॥३१॥

चतुष्पद, तैतिल और नाग करण में सूर्य सोता हुआ संक्रमण करता है या यह संक्रान्ति सोयी रहती है । वव, गर, बालव और वृष्टि करण की संक्रान्ति बैठी रहती है ॥ ३१ ॥

फलम् -

किंस्तुघ्ननाम्नि शकुनौ वणिक्कौलवाख्ये
 चोर्ध्वं स्थितस्य खलु संक्रमणं रवेः स्यात् ।
 धान्यार्थवृष्टिषु भवेत् क्रमशस्त्वनिष्ट-
 मध्येष्टतेति मुनयः प्रवदन्ति पर्वे ॥३२॥

वव करण की संक्रान्ति का फल मध्यम, बालवकी संक्रान्तिका फल भी मध्यम, कौलव का फल मँहगा, तैतिल का फल सस्ता, गरका मध्यम, वणिज का मँहगा, विष्टि का मध्यम, शकुनि का मँहगा, चतुष्पद का सस्ता, नाग करणका सस्ता और किंस्तुघ्नकरणकी संक्रान्तिका फल मँहगा है ॥३२॥

वाहनम्—

सिंहो व्याघ्रा वराहश्च गर्दभः कंजरस्तथा ।
 महिषी घोटकः श्वा च छागो वृषभकुक्कुटौ ॥३३॥
 गजो वाजी वृषो मेषः खरोष्ट्रौ केसरी क्रमात् ।
 शार्दूलमहिषोव्याघ्रवानराश्च ववादितः ॥३४॥

ववकरण की संक्रान्ति का वाहन सिंह, बालवकी संक्रान्ति का वाहन व्याघ्र, कौलव करण की संक्रान्ति का वाहन वराह, तैतिल की संक्रान्ति का वाहन गधा, गर की संक्रान्ति का वाहन हाथी, वणिज की संक्रान्ति का वाहन महिषी, विष्टि की संक्रान्ति का वाहन घोड़ा, शकुनि करण की संक्रान्ति का वाहन कुत्ता और चतुष्पद करण की संक्रान्ति का वाहन छाग है। नाग की संक्रान्ति का वाहन बैल, किंस्तुघ्न की संक्रान्ति का वाहन मुर्गा है। उसी तरह वव आदि ग्यारहों संक्रान्तियों के क्रमशः ये उपवाहन हैं। जैसे गज, अश्व, बैल, मेष, गधा, ऊँट, सिंह, व्याघ्र, भसा, व्याघ्र और वानर ॥३३-३४॥

वाहनफलम्—

गजे लक्ष्मीवृषे स्थैर्यं घोटके वाहने तथा ।
 सिंहे व्याघ्रे मयं प्रोक्तं सुमिक्षं गर्दभे शुनि ॥३५॥

यदि संक्रान्ति का वाहन हाथी हो तो लक्ष्मी, वृष हो तो स्थिरता, अश्व वाहन होने पर स्थिरता, सिंह तथा व्याघ्र वाहन होने पर मय, गधे और कुत्त के वाहन होने पर सुमिक्ष होता है ॥३५॥

फलम्—

वाराहे महती पीडा जायते मेषवाहने ।
 महिष्यां च भवेत् क्लेशः कुक्कुटे मृत्युरेव च ॥३६॥

वराह तथा मेष के वाहन रहने पर अतिशय पीड़ा, भैंस के वाहन रहने पर क्लेश और मुर्गा के वाहन रहने पर मृत्यु होती है ॥३६॥

वस्त्रम्—

श्वेतपीतहरितं च पाण्डुरं रक्तश्याममसितं बहुवर्णम् ।

कम्बलो धिवसनं घनवर्णान्यं शुक्रानि च ववादितः क्रमात् ॥३७॥

वव आदि बारहों संक्रान्तियों का क्रमशः श्वेत, पीत, हरित, पाण्डुर, रक्त, श्याम, काला, कई रंगों का कम्बल, तंगा और मेघवर्ण क्रमशः ये वस्त्र होते हैं ॥३७॥

आयुधम्—

भुशुण्डी च गदाखड्गदण्डकोदण्डतोमराः ।

कुन्तपाशांकुशास्त्रं च वाणश्चैवायुधं ववात् ॥३८॥

उसी प्रकार ववादि संक्रान्तियों के क्रमशः गदा, खड्ग, दंड, धनुष, तोमर, कुन्त (भाला), पाश, अंकुश, अस्त्र और वाण ये आयुध होते हैं ॥३८॥

भोजनपात्रम्—

सौवर्णं राजतं ताम्रं कांस्यं लौहं च स्वर्परम् ।

पत्रं वस्त्रं करो भूमिः काष्ठपात्रं ववादितिः ॥३९॥

ववादि संक्रान्तियों के क्रम से ये भोजन पात्र होते हैं । जैसे सुवर्ण, चाँदी, ताम्र, काँसा, लोहा, स्वप्पर, पत्र, वस्त्र, हाथ, भूमि और काष्ठपात्र ॥३९॥

भक्ष्यपदार्थानि—

अन्नं च पायसं भक्ष्यं पक्वान्नं च पयो दधि ।

चित्रान्नं गुडमध्वाज्यं शर्करा तु ववादितः ॥४०॥

वव आदि ग्यारहों संक्रान्तियों के क्रमशः ये भक्ष्य पदार्थ होते हैं । जैसे—अन्न, खीर, पकवान, भक्ष्य, दूध, दही, विचित्र प्रकार का अन्न, गुड़, शहद, घी और चीनी ॥४०॥

गन्धम्—

कस्तूरी कुडकुमं चैव चन्दनं मृत्तिका तथा ।

सिन्दूरमगुरुश्चैव कर्पूरं च ववादितः ॥४१॥

ववादि ग्यारहों संक्रान्तियों के क्रमशः ये गन्ध द्रव्य होते हैं । जैसे—कस्तूरी, केसर, चंदन, मिट्टी, सिन्दूर, अगर और कपूर, फिर कस्तूरी, केसर, चंदन और मिट्टी ॥४१॥

जातिः—

देवमूताहिविहगाः पशवो मृग एव च ।

ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रमिश्राजातिर्वादिताः ॥४२॥

बवादि ग्यारहों संक्रान्तियों की क्रमशः ये जातियाँ होती हैं । जैसे देव, भूत, सर्प, पक्षी, पशु, मृग, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और मिश्र ॥४२॥

पुष्पम् —

पुन्नागजातीवकुलाश्च केतकी विल्वस्तथाः कमलं च दूर्वा ।

मल्ली तथा पाटलिका जपा च बवादिपुष्पाणि च योजयेत् ॥४३॥

बवादि ग्यारहों संक्रान्तियों के क्रमशः ये पुष्प होते हैं । जैसे— पुन्नाग, जूही, मौलसिरी, केतकी, बेला, दुपहरिया, कमल, दूब, मालती, पाटला (पाटल) और जपा (अढौल) ॥४३॥

भूषणानि—

नूपुरं कंकणं मुक्ता विद्रुमं मुकुटं मणिम् ।

गुञ्जा वराटकं नीलं गारुत्मं रुक्मकं ववात् ॥४४॥

बव आदि ग्यारह संक्रान्तियों के क्रमशः ये आभूषण होते हैं । जैसे—नूपुर, कंकण, मोती, मूँगा, मुकुट, मणि, घुँघची, कौड़ी, नीलम, गारुत्मकमणि और सुवर्ण ॥४४॥

कचुकी—

विचित्रवर्णाशुक्रभूर्जपत्रका सिता तथा पाटलनीलवर्णा ।

कृष्णाजिनं चर्म च बल्कलपांडुरा ववादितश्चैव तु कंचुकी स्यात् ॥४५॥

बवादि ग्यारहों संक्रान्तियों के क्रमशः ये कंचुकी होते हैं । जैसे— विचित्र वर्ण का अंकुश (वस्त्र), भोजपत्र, सफेद, गुलाबी, नीली, काली, चर्म, बल्कल और पांडुर ॥४५॥

वयः—

शिशुः कुमारी च गतालका युवा प्रौढा प्रगल्भाथ ततश्च वृद्धा ।

बन्ध्यातिवन्ध्या च सुतार्थिनी च प्रवाजिका चैव फलं शुभं ववात् ॥४६॥

बवादि ग्यारहों संक्रान्तियों की, क्रमशः यह वय होता है, जैसे— शिशु, कुमारी, गतालका, युवा, प्रौढा, तेजस्विनी, वृद्धा, बन्ध्या, अतिवन्ध्या, पुत्रार्थिनी और संन्यासिनी ॥४६॥

पन्था च भोगो रतिहास्यदुर्मुखी ज्वरान्त्रिता भुक्ति सुकम्पिता मृता ।
ध्यानस्थिता कर्कशवृद्धरूपिणी बवाद्यवस्थाः कथिता मुनीन्द्रैः ॥४७॥

बवादि ग्यारहों संक्रान्तियों को क्रमशः ये अवस्थायें होती हैं ।
जैसे—पंथा, भोग, रति, हास्य, दुर्मुखी, ज्वर, भुक्ति, कम्पिता, मृता,
ध्यानस्थिता और कर्कशा वृद्धा ॥ ४७ ॥

वाहनादि फलम्—

वाहनादिकरस्तूनां संक्रमात्तु त्रिनाशताम् ।
यत्तस्या योग्यवस्तु स्यात्तस्य स्यात्तु महद्भयम् ॥४८॥

ऊपर वाहन आदि जिन वस्तुओं को गिनाया है, उन पर संक्रान्ति
पढ़ने से उनका नाश होता है या उन वस्तुओं के नष्ट होने का भय
बना रहता है ॥ ४८ ॥

संक्रान्तिमूर्तिभेदफलञ्च

संक्रान्तौ मूर्तिभेदा हरिपवनयमे बारुणे सारपरीद्रे
एषां पंचेन्दुसंज्ञा गुरुमरपितृभे चाऽग्निदस्रे च सौम्ये ।
त्वाष्ट्रे मैत्रे च मूले श्रुति चरमर्क्षे च पूर्वासु त्रिंशत्
ब्राह्मेऽदित्ये द्विदैवे भवति शरकृता उत्तरात्रीणि ऋषुम् ॥४९॥
वाणवेदैः समर्घं स्यान्मघस्थं व्योमरामयोः ।
मूर्तौ पञ्चदशे याते दुर्भिक्षं च प्रजायते ॥ ५० ॥

हरि (इन्द्र), ज्येष्ठा, स्वाती, भरणी, शतभिषा, आश्लेषा तथा
आर्द्रा, इन नक्षत्रों में होने वाली संक्रान्ति की १५ मूर्तियाँ रहती हैं, जो
दुर्भिक्ष करती हैं । पुष्य, हस्त, मघा, कृत्तिका, अश्विनी, मृगशिरा,
चित्रा, अनुराधा, मूल, श्रवण, धनिष्ठा, रेवती, तीनों पूर्वा में जो संक्रान्ति
पड़ती है वह ३० मूर्तों की होती है, इसका फल साधारण ही होता
है । रोहिणी, पुनर्वसु, विशाखा और तीनों उत्तरा में जो संक्रान्ति पड़ती
है वह ४५ मूर्तों की होती है और यह संक्रान्ति लोगों को स्वस्थता
प्रदान करती है ॥ ४९-५० ॥

अन्यच्च

पूर्वसंक्रान्तिनक्षत्रात्परसंक्रान्तिऋक्षकम् ।
द्वित्रिसंख्या समर्घं स्याच्चतुःपंचमर्घता ॥ ५१ ॥

पूर्व संक्रान्ति के नक्षत्र से वर्तमान संक्रान्ति के नक्षत्र तक गिने । यदि पूर्व संक्रान्ति के नक्षत्र से वर्तमान संक्रान्ति के नक्षत्र में केवल दो या तीन नक्षत्र का अन्तर हो तो चीजों का मूल्य सस्ता हो और यदि चार नक्षत्र का अन्तर पड़ जाय तो महंगाई होगी ऐसा जाने ॥ ५१ ॥

अथ धान्यविचारः--

संक्रान्तिनाडीनवभिधिता च सप्ताहता पात्रकभाजिता च ।

रूपे समर्घं द्वितये च साम्यं शून्ये महर्घं मुनयो वदन्ति ॥५२॥

वर्तमान संक्रान्ति की जितनी घटियाँ हों उनमें नौ और मिलावे फिर ३ से भाग देने पर यदि एक शेष बचे तो उत्तम, दो बचे तो मध्यम और कुछ भी न बचे तो चीजें महंगी होंगी ॥ ५२ ॥

अथ संक्रान्तिनक्षत्रफलम्--

संक्रान्त्या क्रान्तनक्षत्राद् वृणयेज्जन्मभावधि ।

त्रिकं षट्कं त्रिकं षट्कं त्रिकं षट्कं पुनः पुनः ।

पन्था भोगो व्यथा वस्त्रं हानिश्च विपुलं धनम् ॥५३॥

मनुष्य के लिए संक्रान्ति का शुभाशुभ फल जानना हो तो जिस नक्षत्र पर संक्रान्ति लगी हो, उस संक्रान्ति के नक्षत्र से उस मनुष्य के जन्मनक्षत्र तक गिने । उन दोनों नक्षत्रों में क्रमशः तीन नक्षत्र के अन्तर में परदेश गमन, फिर छः नक्षत्र तक सुख भोग, फिर तीन नक्षत्र तक कष्ट सहन, छः नक्षत्र तक वस्त्र प्राप्ति फिर तीन नक्षत्र तक हानि और शेष छः नक्षत्र तक धन की प्राप्ति होती है ॥५३॥

अथ वारे तिथौ च संक्रान्तिफलम्--

यस्य जन्मर्क्षमासाहतिथौ संक्रमणं भवेत् ।

तन्मासाभ्यन्तरे तस्य वैरं क्लेशो धनक्षयः ॥५४॥

जिस मनुष्य के जन्म नक्षत्र पर संक्रान्ति हो तो महीने के भीतर ही लोगों से वैर हो, जन्मवार पर संक्रान्ति हो तो कष्ट हो, और जन्म तिथि पर संक्रान्ति पड़े तो धन का विनाश हो ॥ ५४ ॥

अथ संक्रान्तिस्वरूपम् -

षष्टियोजनविस्तीर्णा संक्रान्तिः पुरुषाकृतिः ।

एकत्रयत्रा नवभुजा लम्बोष्ठी दीर्घनासिका ॥५५॥

पृष्ठे लोकान् भ्रमत्येव गृहीत्वा स्वपरं करे ।

एवं संक्रमणे तस्याः फलं प्रोक्तं मनीषिभिः ॥५६॥

अब संक्रान्ति का स्वरूप बताते हुए कहते हैं कि, संक्रान्ति साठ योजन की लम्बी-चौड़ी होती है, पुरुष के समान उसकी आकृति होती है, उसके एक मुख रहता है और नौ भुजायें होती हैं, लम्बे-लम्बे उसके होठ होते हैं, लम्बी नाक होती है, वह देखती तो पीछे की तरफ है, पर चलता है आगे, वह हाथ में खप्पर लिये चक्कर मारती रहती है। इस प्रकार संक्रान्ति का स्वरूप प्राचीन ऋषियों ने कहा है । ५५-५६ ॥

चन्द्रात्संक्रान्तिवर्णं तत्फलं च--

मेषालिकर्कं च तथैव रक्तं चापे च मीने तुले च पीतम् ।

श्वेतं वृषे स्त्रीमिथुने च चन्द्रे कुम्भे च नक्रेऽथ घटे च सिंहे ॥५७॥

रक्ते फलं भवेद् दुःखं श्वेते चैव सुखं शुभम् ।

पीते श्रीस्तु तथा प्रोक्ता श्यामे मृत्युर्न संशयः ॥५८॥

यदि मेष, वृश्चिक तथा कर्कराशिस्थ चन्द्रमा के होने पर संक्रान्ति हो तो उसका वर्ण लाल होता है। घन, मीन और तुला राशि पर चन्द्रमा के रहते संक्रान्ति का रंग पीला होता है। वृष कन्या और मिथुन राशि पर चन्द्रमा के रहते संक्रान्ति पड़े तो उस संक्रान्ति का वर्ण श्वेत होता है। मकर, कुम्भ और सिंहस्थ चन्द्रमा में संक्रान्ति पड़े तो उस संक्रान्ति का वर्ण काला होता है। रक्त संक्रान्ति का फल युद्ध, श्वेतमें सुख, पीत में लक्ष्मीप्राप्ति और श्याम संक्रान्ति का फल मृत्यु है ॥ ५७-५८ ॥

राशिगतचन्द्रात्संक्रान्तिकलम्--

यादृशेन हिमरश्मिमालिना संक्रमो भवति तिग्मरोचिषा ।

तादृशं फलमवाप्नुयान्नरः साध्वसाध्वपि दशेन शीतगोः ॥५९॥

जिस प्रकार के चन्द्रमा पर से सूर्य की संक्रान्ति होती है अर्थात् चन्द्रमा जिस तरह का फलदायक रहता है, तो वह सूर्य संक्रान्ति भी उसी प्रकार शुभ या अशुभ फल प्रदान करती है ॥ ५९ ॥

संक्रान्तेः पुण्यकालः--

पूर्वतोऽपि हि रवेश्च संक्रमात्पुण्यकालघटिकास्तु षोडशः ।

अर्धरात्रिसमयादनन्तरं संक्रमे परदिनं हि पुण्यदम् ॥६०॥

प्रत्येक सूर्य की संक्रान्ति का पुण्यकाल सोलह घड़ी होता है। यदि पूर्व रात्रि में संक्रान्ति लगती है तो भी पूर्व दिन पुण्यकाल होता है। और यदि आधी रात के बाद लगती हो तो दूसरे दिन पुण्यकाल माना जाता है ॥ ६० ॥

इति संक्रान्तिप्रकरणम् ।

❀ अथ ग्रहणप्रकरणम् ❀

चन्द्रग्रहणम्—

मानोः पंचदशे ऋक्षे चन्द्रमा यदि प्रतिष्ठति ।

पौर्णमास्यां निशाशेषे चन्द्रग्रहणमादिशेत् ॥१॥

यदि सूर्य के नक्षत्र से ठीक पन्द्रहवें नक्षत्र पर चन्द्रमा बैठा हो तो पूर्णिमा की रात्रि के पिछले पहर में चन्द्रग्रहण लगता है ॥ १ ॥

सूर्यग्रहणम्—

विधुमग्रस्तनक्षत्रात्षोडशं यदि सूर्यमम् ।

अमावस्यां दिवाशेषे सूर्यग्रहणमादिशेत् ॥२॥

साधारणतः अमावस्या को सूर्य और चन्द्रमा एक राशि पर आ जाते हैं, लेकिन यदि चन्द्र ग्रहण के आगे अमावस्या को चन्द्र नक्षत्र से सूर्य नक्षत्र १६वां हो तो अमावस्या और प्रतिपदा की सन्धि में सूर्य ग्रहण होता है ॥ २ ॥

राशितः ग्रहणशुभाऽशुभफलम्—

त्रिषड्दशायेषु गते नराणां शुभप्रदं स्यात् ग्रहणं रबीन्दोः ।

द्विसप्तनन्देषु च मध्यमं स्याच्छेषेष्वनिष्टं मुनयो वदन्ति ॥३॥

जिस मनुष्यकी जन्मराशि से तीसरी, छठीं, दसवीं तथा ग्यारहवीं राशि पर ग्रहण पड़े तो शुभ फल होता है। जिसकी जन्म राशि से दूसरी, सातवीं तथा नवीं राशि पर ग्रहण पड़े तो मध्यम फल होता है। इनके अतिरिक्त पहली, चौथी, आठवीं, पाँचवीं तथा बारहवीं राशि पर ग्रहण पड़े तो अच्छा फल नहीं होता है ॥ ३ ॥

अन्यमते—

ग्रासात्तृतीयोऽष्टमश्चतुर्थस्तथाऽऽयसंस्थः शुभदः स्वराशोः ।

ग्रासाद्द्विः एञ्चनवर्त्तमध्यस्ततोऽधमश्चेति बुधैर्निरुक्तम् ॥४॥

अपनी राशि से तीसरी, आठवीं, चौथी और ग्यारहवीं राशि पर ग्रहण पड़े तो उत्तम, पाँचवीं, नवीं तथा छठीं राशि पर ग्रहण हो तो मध्यम और पहली, दूसरी, सातवीं तथा बारहवीं राशि पर ग्रहण पड़े तो अधम फल होता है ॥ ४ ॥

इति ग्रहणप्रकरणम् ।

❀ अथ गोचरप्रकरणम् ❀

रविफलम् -

स्थानं जन्मनि नाशयेद् दिनकरः कुर्याद् द्वितीये भयं
दुश्चिन्त्रये श्रियमातनोति हिबुके मानक्षयं यच्छति ।
दैन्यं पंचमगः करोति रिपुहा षष्ठेऽर्थहा सप्तमे
पीडाषष्ठमगः करोति पुरुषं कान्तिक्षयं धर्मगः ॥१॥
कर्मसिद्धिजनकस्तु कर्मगो वित्तलाभकृदथायसंस्थितः ।

द्रव्यहानिजनितां महापदं रच्छति व्ययगतो दिवाकरः ॥२॥

चारवश—जब ग्रह राशि में प्रवेश करता है, तो अपनी-अपनी जन्म राशि से भिन्न-भिन्न फल देता है, उसको ग्रह गोचर फल कहते हैं । उनमें प्रथम सूय के गोचर फल—सूर्य जन्मराशि में प्रवेश करे तो स्थान की हानि, जन्मराशि से द्वितीय राशि में हो तो भय, तृतीय राशि में सम्पत्ति की वृद्धि, चतुर्थ में मानहानि, पञ्चम में दीनता, षष्ठ में शत्रुओं का नाश, सप्तम में धन हानि, अष्टम में पीडा, नवम में कान्तिक्षय, दशम में कार्य की सिद्धि, एकादश में धनलाभ और द्वादश में धनहानि से कष्ट होता है ॥ १-२ ॥

चन्द्रफलम्

जन्मन्यन्नं दिशति हिमगुर्वित्तनाशं द्वितीये
दद्याद् द्रव्यं सहजभवने कुक्षिरोगं चतुर्थे ।
कर्यभ्रंशं तनयगृहगो वित्तलाभं च षष्ठे
घूने द्रव्यं युवतिसहितं मृत्युमस्थेऽपमृत्युः ॥३॥
नृपभयं कुरुते नवमः शशी दशमधामगतस्तु महत्सुखम् ।
विविधमायगतः कुरुते धनं व्ययगतश्चरुजं च धनक्षयम् ॥४॥

चारवश जन्मराशि में (१) चन्द्र हो तो अन्नलाभ, २ धनहानि, ३ द्रव्य लाभ, ४ कुक्षि रोग, कार्य हानि, ६ धन लाभ, ७ द्रव्यलाभ, ८ अल्पमृत्यु (कष्ट-अपमानादि), ९ राजभय, १० महामुख, ११ अनेक लाभ और १२ में रोग और धन की हानि होती है ॥ ३-४ ॥

भौमफलम् -

प्रथमगृहगः क्षोणीसूनुः करोत्यरिजं भयं
क्षयपति धनं वित्तस्थाने तृतीयगतोऽर्थदः ।

अरिभयकरः पाताले द्रव्यं क्षिणोति च पञ्चमे
 रिपुगृहगतः कुर्याद्वित्तं रुजं मदनस्थितः ॥५॥
 जनयति निधनस्थो शत्रुबाधां धराजो
 दिशति नवमसंस्थः कार्यपीडामतीव ।
 शुभमपि दशमस्थो लाभगो भरिलाभं
 व्ययभवनगतोऽसौ व्याधिमर्थस्य नाशम् ॥६॥

मङ्गल जन्मराशि १ में शत्रुभय, २ धन हानि, ३ धन लाभ, ४ शत्रु भय, ५ धन हानि, ६ धन लाभ, ७ रोग, ८ शत्रुबाधा, ९ कार्य हानि, १० शुभ, ११ अधिक लाभ और १२ में हो तो व्याधि और धनहानि कारक होता है ॥५-६॥

बुधफलम्—

बुधः प्रथमधामगो दिशति बन्धमर्थं धने
 धनं रिपुभयान्वितं सहजगश्चतुर्थेऽर्थदः ।
 अनिवृत्तिकरो भवेत् तनयगोऽरिगः स्थानहा
 करोति मदनस्थितो बहुविधा शरीरापदम् ॥७॥

अष्टमे शशिसुतो धनवृद्धिं धर्मगस्तु महतीं धनहानिम् ।
 कर्मगः सुखमुपान्त्यगतोऽर्थं द्वादशे दिशति वित्तविनाशम् ॥८॥

बुध जन्मराशि (१) में बन्धन, २ धन लाभ, ३ धन लाभ और शत्रुभय, ४ धनलाभ, ५ वैराग्य, ६ स्थान लाभ, ७ शरीर पीडा, ८ धन वृद्धि, ९ धन हानि, १० सुख, ११ धन लाभ, १२ धनहानि कारक होता है ॥७-८॥

गुरुफलम्—

भयं जन्मन्यार्या जनयति धने चार्थमतुलं
 तृतीयेऽङ्गकलेशं दिशति च चतुर्थे विलयम् ।

सुखं पुत्रस्थाने रुजमथ च कुर्यादरिगृहे
 धनस्याग्निं घ्ने धननिचयनाशं च निधने ॥९॥

धर्मगतो धनवृद्धिकरः स्यात् प्रीतिहरो दशमेऽमरपूज्यः ।

स्थानधनानि ददाति च लाभे द्वादशगस्तनुमानसपीडा ॥१०॥

बृहस्पति जन्म राशि से क्रमशः—१ भय, २ धन लाभ, ३ क्लेश, ४ धन हानि, ५ सुख, ६ रोग भय, ७ धन लाभ, ८ धन नाश, ९ धन वृद्धि, १० कलह, ११ स्थान और धनलाभ, १२ शारीरिक और मानसिक पीडा कारक होता है ॥९-१०॥

शुक्रफलम्—

जन्मन्यरिक्षयकरो भृगुजोऽर्थदोऽर्थे

दुश्चिक्वणः सुखकरो धनदश्चतुर्थे ।

स्यात् पुत्रकृत् तनयगोऽरितोऽरिवृद्धिं

शोकप्रदो मदनगो निधनेऽर्थदाता ॥११॥

जनयति विविधास्वराणि धर्मे न सुखकरो दशमे स्थितश्च शुक्रः ।

धननिचयकरः स लाभसंस्थो व्ययमवने च गतोऽपि द्रव्यनाशम् ॥१२॥

शुक्र क्रमशः जन्मराशि से— १ शत्रु नाश, २ धन लाभ, ३ सुख, ४ धन, ५ पुत्र सुख, ६ शत्रु वृद्धि, ७ शोक, ८ धन लाभ, ९ वस्त्र लाभ, १० सुख हानि, ११ अत्यन्त धन लाभ, १२ धन नाश कारक होता है ॥११-१२॥

शनिफलम्—

चित्तभ्रंशं दिनकरसुतो जन्मराशि प्रपन्नो

वित्ते संस्थो धनहरणकृत् वित्तलाभं तृतीये ।

पाताले शत्रुवृद्धिं सुतमवनगतः पुत्रभृत्यार्थनाशं

षष्ठस्थानेऽर्थलाभं जनयति मदाने दोषसंघं तथाऽर्किः ॥१३॥

शरीरपीडा निधने च धर्मे धनक्षयं कर्मणि दौर्मनस्यम् ।

उषान्त्यगो वित्तमनर्थमन्त्ये शनिर्ददातीति फलानि गोचरे ॥१४॥

शनि क्रमशः जन्म राशि से— १ चित्त में विक्षेप, २ धन हानि, ३ लाभ, ४ शत्रु वृद्धि, ५ पुत्र, नौकर और धन की हानि, ६ धन लाभ, ७ दोष, ८ शरीर पीडा, ९ धन हानि, १० वैमनस्य, ११ धन लाभ, १२ अनर्थ फल देता है ॥१३-१४॥

राहुकेतुफलम्—

राहुर्जन्मतो भयं च कलहं सौभाग्यमानक्षयम्

चित्तभ्रंशमहत्सुखं नृपभयं चाऽर्थक्षयं यच्छति ।

सन्तापं कलहं च वित्तमधिकं शीघ्रं विनाशं नृणां

केतुस्तत्फलमेव राशिषु ददात्युक्तं च गर्गादिभिः ॥१५॥

राहु और केतु क्रम से जन्मराशि से— १ भय, २ कलह, ३ सौभाग्य, ४ मान हानि, ५ चित्त में विक्षेप, ६ महा सुख, ७ राज भय, ८ धन हानि, ९ सन्ताप, १० कलह, ११ अधिक धन लाभ और १२ विनाश फल देते हैं ॥१५॥

इति गोचरप्रकरणम् ।

❀ अथ ज्ञातकस्कन्धम् ❀

ज्योतिषशास्त्र के ३ स्कन्ध हैं, १ सिद्धान्त, २ संहिता, ३ जातक । इनमें ग्रहयुति ग्रहण ग्रहविम्बोदयास्त—आदि दृष्ट विषयों का साधन प्रत्यक्ष गणित द्वारा होने के कारण सिद्धान्त स्कन्ध को ही गणित स्कन्ध कहा गया है और ग्रहों के युत्यादि द्वारा मानव-समाज के अदृष्ट शुभाशुभ फल के विचार होने के कारण संहिता और जातक दोनों को फलित स्कन्ध कहा गया है ।

ज्योतिष के दोनों विभागों में क्रम से दृष्ट और अदृष्ट फल जानार्थ यहाँ के ऋषियों ने भिन्न-भिन्न लगन का साधन किया है । किन्तु तत्त्व को न जानकर यवनों ने सिद्धान्त कथित लगन से ही अदृष्ट फल कथन के लिये भी अपने कुतर्क से भावों का भी साधन किया जिससे समस्त फलित ग्रन्थ में अनर्थता आती है ।

फलितस्कन्ध में केवल अपने स्थान के स्पष्टसूर्य और इष्टकाल से लगन का साधन किया गया है ।

तथा गणितस्कन्ध में—अपने-अपने यहाँ के—पलभा, चरखण्ड, स्वदेशोदय अयनांश तात्कालिक स्पष्ट सूर्य और सूर्योदय से इष्टकाल के ज्ञान से लगन का साधन होता है । जिससे भाव बनाने में कितने अनर्थ होते हैं, इस बात को लगन-विवेक नामक निबन्ध में सयुक्ति सप्रमाण दिखलाया गया है । जो बुद्धिमान् जनों के विवेचनार्थ इस ग्रन्थ में भी संक्षेप से लिखा गया है ।

जातकस्कन्ध में लगन से सब प्रकार के फलादेश किये गये हैं । अतः लगन साधन में जितने विषयों की आवश्यकता होती है उनको यहाँ क्रम से दिया जाता है ।

समय परिभाषा (सावनमान)—राशि परिभाषा (सौरमान)—

- ६० विपल=१ पल
- ६० पल=१ घटी (दण्ड)
- ६० दण्ड=१ अहोरात्र
- ३० अहोरात्र=१ मास
- १२ मास=१ वर्ष

अंग्रेजी समय

- ६० सेकेण्ड=१ मिनट
- ६० मिनट=१ घण्टा
- २४ घण्टा=१ अहोरात्र

- ६० प्रतिविकला=१ विकला=१ पल
- ६० विकला=१ कला=१ घटी
- ६० कला=१ अंश=१ दिन
- ३० अंश=१ राशि=१ मास
- १२ राशि=१ भगण=१ वर्ष

इसलिये—

- २॥ दण्ड=१ घण्टा=होरा
- २॥ पल=१ मिनट
- २॥ विपल=१ सेकेण्ड

नवीन साङ्केतिक चिन्ह—

=यह वराचर का चिन्ह है ।

+ यह जोड़ का चिन्ह है ।

— यह घटाव का चिन्ह है ।

× यह गुणा का चिन्ह है ।

÷ यह भाग का चिन्ह है ।

२ यह वर्ग का चिन्ह है ।

√ यह मूल का चिन्ह है ।

० यह अंश का घड़ी बोधक है ।

। यह कला तथा पल बोधक है ।

॥ यह विकला तथा विपल बोधक है ॥

∞ यह अन्तर बोधक है ।

होरादित.घट्यादिकेष्टकालम्—

सूर्योदयात् गतः कालो घट्याद्योऽत्रेष्ट उच्यते ।

होरादिकं तु पञ्चद्वनं द्व्याप्तं घट्यादिकं भवेत् ॥१॥

सूर्योदय से गत घट्यादि समय लगन आदि साधन में इष्टकाल कहलाता है । यदि होरा (अर्थात् घण्टा मिनट) आदि मालूम हो तो उसे ५ से गुणा कर २ से भाग देने से घट्यादि इष्टकाल हो जाता है । इसमें तीन भेद हैं । यथा—

(१) दिन के पूर्वार्ध में (सूर्योदय से १२ बजे दिन तक) जितने घण्टा और मिनट हो उसमें सूर्योदय के घण्टा मिनट घटाकर शेष को घट्यादि बनाने से इष्टकाल होता है । (२) १२ बजे दिन के बाद १२ बजे रात्रि तक के घण्टा मिनट पर से घट्यादि काल बनाकर दिनार्ध में जोड़ने से इष्टकाल होता है । (३) १ बजे रात्रि के बाद सूर्योदय तक के घण्टा मिनट पर से घट्यादि बनाकर दिनमान और रात्र्यर्ध के योग में जोड़ने से इष्टकाल होता है ॥ १ ॥

उदाहरण—शाके १८४८ संवत् १९८६ सन् १३३४ ई० माघ शुक्ल ११ शनिवार प्रातःकाल ७ बजकर ५१ मिनट पर विथिला देश में किसी का जन्म हुआ, तो उस दिन के सूर्योदय घण्टा मिनट ६।२९ को जन्म समय के घण्टा मिनट ७।५१ में घटाने से शेष सूर्योदय से घण्टा मिनट १।२२ काल हुआ, इसको ५ से गुणा कर ५।११०=६।५० इसमें २ के भाग देने से घट्यादि ३।२५ यह दिन के पूर्वार्ध में है इसलिये यही इष्टकाल हुआ । शनिवार है इसलिये दिन के स्यात में ७ रखने से दिनादि इष्टकाल=७।३।२५ हुआ ॥१॥

पञ्चाङ्गस्थग्रहे चलनात् ग्रहस्पष्टीकरणम्—

ऋणाख्यं चालनं ज्ञेयमग्रपङ्कीष्टकालयोः ।

अन्तरं तु धनाख्यं स्यात् पृष्ठपङ्कीष्टकालयोः ॥२॥

धनार्णचालनेनैवं गतिर्निघनी खषड्हता ।

लब्धांशाद्यैर्युतो हीनः पंक्तिखेटः स्फुटो भवेत् ॥३॥

(पञ्चांग में जिस दिन के स्पष्टग्रह बने रहते हैं वह दिनादि पंक्ति कहलाती है ।) इष्टकाल से; अग्रिम पंक्ति और इष्टकाल का दिनादि अन्तर, ऋणचालन तथा पिछली पंक्ति और इष्टकाल का दिनादि अन्तर धनचालन होता है । इस प्रकार दिनादि धनचालन को पंक्तिस्थ ग्रहों की कलादि गति से गुणाकर ६० का भाग देने से अंशादि लब्धि को पंक्तिस्थ ग्रहों में जोड़ने से तथा दिनादि ऋणचालन को गति से गुणाकर ६० का भाग देने से अंशादि फल को पंक्तिस्थग्रहों में घटाने से तात्कालिक स्पष्ट ग्रह हो जाते हैं । यथा—माघशुक्ल ११ दिनादि इष्टकाल ७।३।२५ ।

पंक्ति माघशुक्ल ६ सोमे
मिश्रमानम् ४३।४६

मू.	मं.	बु.	वृ.	शु.	श.	रा.
६	०	१०	१०	०	०	०
२५	२८	१	१२	१४	१३	११
१३	५०	४३	३८	४	५	६
२१	४८	५	४३	३५	३८	१८
१०	२८	६५	१३	५४	४	:
५६	४७	३८	२४	३१	१०	११

पंक्ति माघशुक्ल १३ सोमे
मिश्रमानम् ४३।५०

मू.	मं.	बु.	वृ.	शु.	श.	रा.
१०	१	१०	१०	१०	७	२
२	२	१६	१४	२३	१३	१३
१९	१६	५५	१७	२३	३	४०
१३	०	८१	५०	१६	३	३
३०	३०	८०	१३	७४	३	३
४३	५५	५३	४०	३१	११	११

इन दोनों पंक्तियों में अग्रिम पंक्ति इष्टकाल के समीप है अतः अग्रिम पंक्ति दिनादि २।४३।५० में इष्टकाल दिनादि ७।३।२५ को घटाने से दिनादि ऋणचालन २।४०।२५ हुआ ॥ २-३ ॥

विशेष—जहाँ अन्तर करने में दिन संख्या में दिन की संख्या न घटे वहाँ दिन संख्या में ७ जोड़कर घटाना चाहिये । इसी प्रकार राशि के स्थान में १२ जोड़कर घटाया जाता है । यहाँ पंक्ति की दिन संख्या २ में इष्टकालदिन संख्या ७ नहीं घट सकती । अतः इष्ट दिन संख्या २ में ७ जोड़कर ९ के साथ अन्तर किया गया है ॥ २-३ ॥

खण्डगुणनमाह—

यज्जाति गुणखण्डं स्यात् तज्जातीयं फलं भवेत् ।

ग्राह्यमर्धाधिके रूपं त्याज्यमर्धाल्पके तथा ॥४॥

यज्जातीय गुणक का खण्ड रहता है, गुणनफल भी तज्जातीय होता है तथा स्वल्पान्तर से आधा से अधिक हो तो वहाँ १ ग्रहण किया जाता है । तथा आधा से अल्प हो तो त्याग भी कर दिया जा सकता है । इसलिये चालन दिनादि को गति की कालसे गुणा करने से कलादि और गति की विकला से गुणा करने से विकलादि फल होता

है, इसलिये एक स्थान बढ़ाकर रखने से गोमूत्रिकाकार हो जाने के कारण गोमूत्रिकागुणन कहलाता है तथा यदि प्रतिविकला ३० से अधिक हो तो वहाँ १ विकला ग्रहण की जाती है, ३० से कम हो तो छोड़ दी जाती है ॥ ४ ॥

अब दिनादि चालन २।४०।२५ को पंक्तिस्थ सूर्य की कलादि गति ६०।४३ से गुणा करने के लिये न्यास—

$$\begin{array}{r} (२।४०।२५) \times ६० \\ (२।४०।२५) \times ४३ \end{array} \quad \begin{array}{r} \text{गुणा करने से} \\ = १२.१२४००'' ११५०० \quad + \\ = \quad \quad \quad ६६।१७२०।१०७५ \end{array}$$

योग करने से गुणनफल

इसमें ६० से भाग देकर चढ़ाने से अंशादि २।४२।१६।४७=२°।

४२'।२०" स्वल्पान्तर से ५ श्लोकानुसार प्रतिविकला ४७ की जाह १

विकला ग्रहण करने से २°।४२।२० इसको ऋण चालन होने के कारण पंक्तिस्थ सूर्य १०।२।१६।१३ के अंशादि में घटाने से तात्कालिक स्पष्ट सूर्य ९।२९।३६।५३ हुए। इसी प्रकार मंगलादिक ग्रहों की गति से चालन देने से तात्कालिक स्पष्ट ग्रह हुए, चक देखो ॥४॥

तात्कालिकाः स्पष्टग्रहाः सगतिकाः--

सू.	मं.	व.	वृ.	शु.	श.	रा.	च.
६	१	५०	१०	१०	७	७	२
२९	१	१३	१३	२०	१३	१३	२
३६	५६	६	४१	४	२४	५५	२२
५३	२०	२६	१८	२	२७	३४	५८
६०	३०	८०	१३	७४	३	३	८०६
४३	५५	५३	४०	३१	११	११	३०

तत्र विशेषः -

अग्रपंक्तिग्रहोऽल्पश्चेत् पृष्ठपंक्तिस्थिताद् भवेत् ।

तदा वक्रगतिर्ज्ञेयो व्यस्तं तच्चालनं स्मृतम् ॥५॥

यदि पीछे की पंक्ति से अग्रिम पंक्ति में मंगलादि ग्रह की राश्यादि अल्प हो तो उसे वक्रगति समझना। वक्रगति का चालन विपरीत (घन में घटाने से, ऋण में जोड़ने से) होता है। अतः राहु केतु का चालन सदा विपरीत ही होता है ॥ ५ ॥

यह पृष्ठ की पंक्ति से अग्रिम पंक्ति में भौमादि पाँचों ग्रह की राश्यादि अधिक ही है अतः सबकी मार्गी गति होने के कारण सब में सूर्य के समान ही ऋण चालन फल घटाया गया है। केवल राहु में विपरीत अर्थात्-ऋण चालन फल को जोड़ने से स्पष्टता हुई है।

अथ चन्द्र स्पष्टीकरण—चन्द्रमा अधिक गति होने के कारण भयात् और भभोग द्वारा ही स्पष्ट बनाया जाता है ॥५॥

अतः भयात्-भभोगयोः परिभाषा—

नक्षत्रारम्भतः स्वेष्टकालं यावत् गतं हि तत् ।

घट्यादिकं भयातं तद्, मस्य भोगो भभोगकः ॥६॥

वर्तमान नक्षत्र आरम्भ से लेकर इष्टकाल पर्यन्त जितना समय (घटी-पल) व्यतीत हुआ हो वह भयात् तथा नक्षत्र के आरम्भ से अन्त तक का काल (घटी-पल) भभोग कहलाता है । इस प्रकार से पञ्चाङ्ग में नक्षत्र के घटी-पल देखकर सहज में भयात् भभोग बन जाता है ॥ ६ ॥

अन्यच्च—

षट्या गतर्क्षघट्याद्यं शोध्यं स्वेष्टघटीयुतम् ।

भयातं स्यात्, तथा स्वर्क्षघटीयुक्तं भभोगकः ॥७॥

गत (वर्तमान से पहला) नक्षत्र की पञ्चाङ्गस्थ घटी को ६० में घटा कर शेष में इष्टकाल जोड़ने से भयात् और उसी शेष में वर्तमान नक्षत्र को पञ्चाङ्गस्थ घटी जोड़ने से भभोग होता है ॥ ७ ॥

तथा

पञ्चाङ्गर्क्षघटी-मानादिष्टकालोऽधिकस्तदा ।

तदन्तरं भयातं स्याद् भभोगः पूर्ववत् सदा ॥८॥

यदि पञ्चांग में लिखित नक्षत्र की घटी से इष्टकाल अधिक हो तो इष्टकाल में नक्षत्र की घटी घटाने से भयात् होता है । भभोग पूर्ववत् बनाना चाहिए ॥ ८ ॥

इस प्रकार उक्त इष्टकाल में वर्तमान मृगशिरा नक्षत्र का भयात् ५८११५ तथा भभोग ५९१३१ हुआ ॥८॥

सगतिस्पष्टचन्द्रसाधनार्थं नीलकण्ठोक्तप्रकारम्—

खण्डं भयातं भभोगोद्धृतं तत् खतर्कधनधिष्येषु युक्तं द्विनिधनम् ।

नवाप्तं शशी भागपूर्वस्तु भुक्तिः खखाष्टग्राष्टवेदा भभोगेन भक्ताः ।६।

भयात के एकजातीय (फल) बनाकर उसको ६० से गुणा करके फल में भभोग के एक जातीय पल से भाग देने से जो लब्धि हो उसमें ६० से गुणित अश्विनी आदि गत नक्षत्र संख्या को जोड़कर जो हो उसको २ से गुणा कर ६ के भाग देने से लब्धि अंशादि तात्कालिक स्पष्ट चन्द्रमा होता है । तथा ४८००० अड़तालिस हजार अंक में भभोग से भाग देने से लब्धि कलादि चन्द्रमा की स्पष्टगति होती है ॥ ६ ॥

उदाहरण—भयात् ५८१५ के एक जातीय ३४९५ को ६० से गुणा करने से २०६७०० इसमें भभोग ५६१३ के एकजातीय ३५७१ से भाग देने से लब्धि— ५८१५३" । २३, इसमें गत नक्षत्र रोहिणी संख्या ४ को ६० से गुणित २४० जोड़ने से २६८१३१३ इसको २ से गुणा करने से ५३६२६२ । ४६ इसमें ६ के भाग देने से ६६१२२।५८ यह अंशादि चन्द्रमा हुए, अंश में ३० से भाग देकर राश्यादि २।६।२२।५८ स्पष्ट चन्द्रमा हुआ । तथा भभोग एक जातीय बनाने के कारण ४८००० इसको ६० से गुणाकर २८०००० इसमें भभोग ५६१३ के एकजातीय ३५७१ से भाग देने से चन्द्रमा की स्पष्ट गति कलादि ८०६।३० हुई ॥१॥

तात्कालिक-अयनांश-साधनम्—

एकद्विवेदोनशका नवघना दिग्भिर्हृताश्रायनलिप्तिकास्ताः ।

अंशीकृताकात् त्रिगुणान्नखाप्ततुल्याभिरेवं विकलाभिराढ्याः ॥१०॥

इष्टशाके में ४२१ घटाकर शेष को ६ से गुणाकर १० के भाग देने से लब्धि अयन-कला होती है और तात्कालिक स्पष्टसूर्य को अंशात्मक बनाकर उसको ३ से गुणाकर २० के भाग देने से लब्धि अयन विकला जोड़कर कला में ६० के भाग देने से अयनांश होता है ॥ १० ॥

उदाहरण—शाके १८४८ में ४२१ घटाने से १४२७ इसको ९ से गुणाकर १२८४३ इसमें १० के भाग देने से अयनकलादि १२८४ । १८' इसमें स्पष्ट सूर्य ६।२६।३६।५३ अंशात्मक २९२।३६।५३ को ३ से गुणाकर ८९८०।५० ! ३९ इसमें २० के भाग देने से लब्धि विकलादि ४४=४५ विकला जोड़कर कलादि १२८५।३ इसके कलामें ६० के भाग देकर अयनांश २१०।२५।३ हुए ॥१०॥

अथ लग्न-परिभाषा—

भचक्रं प्राक्कुजे यत्र यत्र लग्नं तत्लग्नमुच्यते ।

पश्चात् कुजे यत्लग्नं स्यान् मध्यं याम्योचरे यथा ॥११॥

उदय क्षितिज में जो राशि इष्टकाल में वर्तमान हो वह प्रथम लग्न तथा अस्तक्षितिज में जो राशि हो वह सप्तम (अस्त) लग्न तथा ऊर्ध्व याम्योत्तर में दशम और अधोयाम्योत्तर में चतुर्थ लग्न कहलाती है । मध्य लग्न से दशम लग्न का बोध होता है ।

जो राशि जितने समय तक क्षितिज में रहती है, वह पलात्मक समय उस राशि का उदयमान कहलाता है । वह हर एक राशि का भिन्न-भिन्न और पलभा के भेद से हर एक देश के भिन्न-भिन्न मान होते हैं । वे अपने-अपने देश के पलभा पर से चरखण्ड द्वारा बनते हैं ॥ ११ ॥

(ग्रहलाघवोक्तपलभा—चरखण्डानयनञ्च)

मेषादिने सायनभाषसूर्ये दिनार्धजा भा पलभा भवेत् सा ।
त्रिष्ठा इता स्युर्दशभिर्भुजङ्गैर्दिग्भिश्चरार्धानि गुणोद्धृतान्त्या ॥१२॥

सायन मेषार्क या सायन तुलार्क सक्रान्ति (दण्ड दिन मान) में मध्याह्नकालिक १२ अङ्गुल शंकु की छाया अङ्गुलादिक पलभा कहलाती है। उसको ३ स्थान में रखकर प्रथम स्थान में १० से गुणा करना, द्वितीय स्थान में ८ से गुणा करना और तृतीय स्थान में १० से गुणाकर ३ से भाग देना तो क्रम से ३ चरखण्ड होते हैं ॥ १२ ॥

उदाहरण—यथा काशी की पलभा अङ्गुलादि ५।४५। और मिथिला की पलभा=६ अङ्गुल है। अतः उक्तरीति से --

काशी के चरखण्ड		मिथिला के चरखण्ड
(५ । ४५) × १० = ५७	स्वल्पान्तर से	६ × १० = ६०
(५ । ४५) × ८ = ४६	„	६ × ८ = ४८
(५ । ४५) × १०	„	६ × १०
३	= १९ „	३ = २०

अथ लङ्कोदयमानानि तथा तेभ्यः स्वोदयसाधनम् —

लङ्कोदया विवटिका गजभानिगोङ्क-

दस्रास्त्रिपक्षदहनाः क्रमगोत्क्रमस्थः ।

हीनान्विताश्चरदलैः क्रमगोत्क्रमस्थै-

मेषादितो घटत उत्क्रमतस्त्वमे स्युः ॥१३॥

२७८।२६६।३२२ ये पलात्मक क्रम और उपक्रम से रखने से मेषादि ६ राशियों के लङ्कोदय मान होते हैं। इन्हीं में मेषादि ३ राशियों में क्रम से चरखण्ड घटाने से और कर्कादि ३ राशियों में उत्क्रम से तीनों चरखण्ड जोड़ने से स्वदेशीय उदयमान मेषादि ६ राशियों के होते हैं, वे ही उत्क्रम से तुलादिक ६ राशियों के भी होते हैं ॥ १३ ॥

यथा—लङ्कोदय + चरखं + काश्युदा

मे. मो. = २७८ - ५७ = २२१

वृ. कुं = २९९ - ४६ = २५३

मि. म. = ३२३ - १९ = ३०४

क. ध. = ३२३ + १९ = ३४२

सि. वृ. = २६६ + ४६ = ३१२

क. तु. = २७८ + ५७ = ३३४

लङ्कोदय + चरखं = मिथिलोदय

मे. २७८ - ६० = २१८ = मो.

वृ. २१६ - ४८ = १६८ = कुं.

मि. ३२३ - २० = ३०३ = म.

क. ३२३ + २० = ३४३ = ध.

सि. २९९ + ४८ = ३४७ = वृ.

क. २७८ + ६० = ३३८ = तु.

लग्न-साधनप्रकारम्

सायनाकस्य भुक्तांशा भोग्यांशाः स्वोदयैर्हता ।
 त्रिंशता विहता लब्धं पलानीष्टात् पलीकृतात् ॥१४॥
 विशोध्यानि ततो भुक्त-भोग्यराशिपलान्यपि ।
 शोध्यान्येवं च यन्मानं शुद्धयेत् शोऽशुद्धसंज्ञकः ॥१५॥
 शेषं त्रिषड्गुणं भक्तमशुद्धभवनोदयैः ।
 लब्धमंशांशशुद्धैर्शोधयं, योज्यं च शुद्धमे ॥१६॥
 क्रमात् सायनलग्नं स्यात् भुक्तभोग्यप्रकारयोः ।
 व्ययनांशं च तत् कृत्वा फलार्थं लग्नमादृतम् ॥१७॥

तात्कालिक स्पष्टसूर्य में अयनांश जोड़कर (यदि भुक्तप्रकार से लग्न बनाना हो तो) भुक्तांश को, (यदि भोग्य प्रकार से लग्न बनाना हो तो) भोग्यांश का सायनसूर्याक्रान्त राशि के स्वोदयमान से गुणा कर ३० से भाग देने से लब्धि भुक्त या भोग्य पल होता है, उसको पलीकृत इष्टकाल में घटाना, शेष में (यदि भुक्त प्रकार हो तो) गतराशि के स्वदेशोदयमान जितने घटे घटाना चाहिए, जिस राशि तक उदय घटे उसे शुद्ध संज्ञक और जिसके उदय नहीं घटे उसे अशुद्ध संज्ञक समझना चाहिए । और इष्ट कालावशेष को ३० से गुणाकर अशुद्धराशि के उदयमान से भाग देकर लब्धि अंशादि को भुक्त प्रकार में अशुद्धराशि संख्या में घटाने से और भोग्य प्रकार में शुद्धराशि संख्या में जोड़ने से सायन-लग्न होता है, अतः उसमें अयनांश घटाने से फलकथनोपयुक्त लग्न (प्रथम लग्न) होता है ॥ १४-१७ ॥

तत्र भुक्तभोग्ये-विशेषः

दिवागतेष्टे रविभोग्यभागैर्दिवावशेषे सरसार्कभुक्तैः॥

निशागतेष्टे सरसार्कभुक्तैर्निशावशेषे रविभुक्तभागैः॥१८॥

(दिनार्ध से अल्प में) दिनगत इष्टकाल और सायन सूर्य पर से भोग्य प्रकार से, यदि दिनशेष (दिनमान में इष्ट घटाकर शेष) इष्टकाल हो तो सायन सूर्य में ६ राशि जोड़कर भुक्त प्रकार से, यदि रात्रिगत इष्ट काल हो तो सायन सूर्य में ६ राशि जोड़कर भोग्य प्रकार से तथा यदि रात्रिशेष में इष्टकाल हो तो सायनसूर्य से भुक्तप्रकार से लग्न बनाने में स्फुटता और सुगमता होती है ॥ १८ ॥

उदाहरण—पूर्वोक्त दिनगत इष्टकाल ३।२५ दिनार्ध से अल्प है अतः भोग्य-प्रकार से लगनानयन करने के लिए स्पष्टसूर्य १।२९।३६।५३ में अयनांश २१।२५।३ जोड़ने से १०।२१।१।५६ इसके भोग्यांश ८।५८।१ को (सायन सूर्य कुम्भ में है अतः) मिथिला देशीय कुम्भोदय २५१ से गुणा करने से २००८।१४५५८।१००४ हुआ, इसे ६० से सवर्णन करने से २२५।५४।४५ इसमें ३० के भाग देने से भोग्य-पलादि ७५।१।४६ इसको इष्टकाल ३।२५ के पल २०५ में घटाने से १२६।५८।११ हुआ, इसमें भोग्यप्रकार होने के कारण अग्रिम (मीन) राशि के उदय २१८ घटाना चाहिये सो नहीं घटता अतः मीन अशुद्ध हुआ तथा कुम्भ शुद्ध हुआ। अवशेष १२६।५८।११ को ३० से गुणा करने से ३८७०।१७५०।३३०, साठ से सवर्णन करने से ३८६६।५३० इसमें अशुद्ध (मीन) के उदय २१८ से भाग देने से लब्धि अंशादि १७।५३।८ इसको शुद्ध राशि कुम्भ की संख्या ११ में जोड़ने से सायन लग्न राश्यादि ११।१७।५३।८, इसमें अयनांश २१।२५।३ घटाने से फल कथनार्थ स्पष्ट प्रथम लग्न राश्यादि १०।२६।२८।५ हुआ ॥१८॥

लगनानयने विशेषः—

भुक्तभोग्यपलान्येवं निजेष्टादधिकानि चेत् ।

तदेष्टात् त्रिंशता निघ्नात् सूर्याक्रान्तोदयैर्हृतात् ॥१९॥

लब्धांशौ रहितो युक्तो रविरेव तनुर्भवेत् ।

पूर्वोक्त क्रिया से भुक्त प्रकार में भुक्त पल, और भोग्य प्रकार में भोग्य पल यदि इष्ट काल से अधिक हो तो उस हालत में पलीकृत इष्ट काल को ३० से गुणा कर सूर्य जिस राशि में हो उसके स्वदेशीय उदय मान से भाग देकर लब्ध अंशादि (भुक्त प्रकार में सूर्य में घटाने से और भोग्य प्रकार में) सूर्य में जोड़ने से लग्न हो जाता है ॥१९॥

उदाहरण—यदि इष्टकाल घट्यादि १।५ हो तो इसके पल ६५ से पूर्व साधित रवि के भोग्य फल ७५।१।४६ अधिक है इसलिए नहीं घट सकता है, अतः यहाँ इष्ट पल ६५ को ३० से गुणा कर १९५० इसमें सायन सूर्य के उदय २५१ से भाग देने से अंशादि ७।४६।८ इसको स्पष्ट सूर्य १।२९।३६।५३ में जोड़ने से १०७।२३ यह स्पष्ट प्रथम लग्न हुआ ॥१९॥

पुनश्च—

लग्नं तूदयकाले स्यात् रविरेव हि सर्वदा ।

अस्तकाले सषड्भार्कतुल्यं ज्ञेयं विपश्चिता ॥२०॥

सूर्योदय काल में स्पष्ट सूर्य ही लग्न होता है। तथा सूर्यास्त समय में स्पष्ट सूर्य में ६ राशि जोड़ने से लग्न होता है ॥२०॥

अथ दशम (मध्य) लग्न साधनार्थं नतकालानयनम्—

पूर्वं नतं स्याद् द्युदलाल्पमिष्टं दिनार्थमानात् प्रविशोध्य शेषम् ।

इष्टे दिनार्थाधिके विशोध्यं दिनार्थमिष्टादपरं नतं स्यात् ॥२१॥

दिनार्थ से अल्प इष्टकाल हो तो दिनार्थ में इष्टकाल घटाकर शेष दिवा पूर्वनत होता है तथा दिनार्थ से अधिक दिवा इष्टकाल में दिनार्थ घटाने से दिवा पश्चिम नत होता है । एवं दिनमान से अधिक इष्टकाल हो तो उसमें दिनमान घटाकर शेष रात्रि गत इष्ट कहलाता है । वह रात्रिगत इष्ट यदि रात्र्यर्ध से अल्प हो तो रात्र्यर्ध घटाकर शेष रात्रि पूर्ववत् होता है । यदि रात्रि गत इष्ट रात्र्यर्ध से अधिक हो तो उसी में रात्र्यर्ध घटाने से रात्रि पश्चिम नत होता है ॥ २१ ॥

उदाहरण—यथा पूर्वोक्त इष्टकाल ३।२५ दिनार्थ १३।४६ से अल्प है अतः दिनार्थ में इष्टकाल—घटाकर शेष १०।२२ यह दिवा पूर्वनत हुआ ॥२१॥

अथ दशम चतुर्थ (मध्य) भावानयनम्

एवं सत्रबुद्ध्या सुधिया विधेयं रात्र्यर्धतो रात्रिगतं नतं च ।

लङ्कोदयैः पूर्वनतात् प्रसाध्यं भुक्तप्रकारेण पुरोदितेन ॥२२॥

भोग्यप्रकारेण वरानताद्यरलग्नं भवेत् तत् किल मध्यसंज्ञम् ।

रात्रौ प्रसाध्यं च सषड्मसूर्यात् भवेत् सषड्मं तदधःखललग्नम् ॥२३॥

यदि दिवा पूर्वनत हो तो नत को इष्टकाल मानकर लङ्कोदय के द्वारा भुक्त प्रकार से तथा यदि पश्चिम नत हो तो भोग्य प्रकार से पूर्ववत् सायन सूर्य से लग्न बनाने से मध्य लग्न होता है । यदि रात्रिगत नतकाल हो तो सायन सूर्य में ६ राशि जोड़कर उक्त रीति से रात्रिगत नतकाल इष्ट मान कर मध्यलग्न बनाना चाहिए, दशमलग्न में ६ राशि जोड़ने से अधःखललग्न होता है ॥ २२-२३ ॥

उदाहरण—दिवा पूर्वनत १०।२२ यह इष्टकाल हुआ । पूर्वनत होने के कारण भुक्त प्रकार की क्रिया होगी, सासन सूर्य १०।२१।१।५६ के भुक्तांश २१।१।५६ को कुम्भ के लङ्कोदय २६६ से गुणा करने से ६२७६।२९९।१६७७४ साठ सवर्णन करने से ६२८८।३३।३४ इसमें ३० से भाग देने से २०६।३७।१७ इसको नतकाल के पल ६२२ में घटाने से शेष ४१२।२२।४३ इसमें गत मकर राशि के लङ्कोदय ३६३ घटाने से शेष ८६।२२।४३ इसमें धनु का उदय ३२३ नहीं घटता इसलिए धनु अगुह्य हुआ । अतः शेष ८९।२२।४३ को ३० से गुणाकर २६७६।६६० । १२९०=२६७६।२९।३० इसमें अगुह्य धनु के लङ्कोदय २२३ से भाग देने से लब्धिवंशादि

८।१८।७ इसको अगुडराशि संख्या ९ में घटाने से ८।२१।४१।५५ इसमें अयनांश २१।७५।३ घटाने से ८।१६।४१ यह मध्य हुआ। मध्य लग्न ६ राशि जोड़ने या घटाने से २।०।१६।५२ यह अधोमध्य लग्न हुआ ॥२२-२३॥

मध्यलग्ने विशेषः -

ज्ञेयं दिवा नताभावे रविरेव खललग्नकम् ।

एवं रात्रिनताभावे सषड्भरविद्या समम् ॥२४॥

यदि दिन में नत शून्य हो तो स्पष्ट सूर्य के तुल्य ही मध्य लग्न होता है तथा रात्रि में नत शून्य हो तो स्पष्ट सूर्य में ६ राशि जोड़ने से मध्य लग्न होता है ॥ २४ ॥

अथ लाघवरीत्या ससन्धिभावानयनम्--

लग्नं सषड्भमस्तर्क्षं तथा लग्नोनतुर्यतः ।

षष्ठांशयुक्तनुः सन्धिग्रहे षष्ठांशयोजनात् ॥२५॥

त्रयः ससन्धयो भावा ज्ञेया बुद्धिमता ततः ।

त्रिद्विभावौ क्रमाद्युक्तौ द्वाभ्यां वेदैः सुतद्विषौ ॥२६॥

षड्भावा इति लग्नाद्याः सषड्भाः सप्तमादयः ।

त्रिद्वयेकसन्धस्त्वेक-त्रि पञ्चमयुताः क्रमात् ॥२७॥

सन्धयः स्युश्चतुर्थाद्याः सषड्भाः षडमी परे ।

ग्रहः सन्धिद्वयान्तःस्थो ज्ञेयस्तद्भावगः सदा ॥२८॥

लग्न में ६ राशि जोड़ने से सप्तमभाव होता है तथा लग्न को चतुर्थ भाव में घटाकर शेष के षष्ठांश लग्न में जोड़ने से लग्न की सन्धि होती है। उसमें फिर वही षष्ठांश जोड़ने से द्वितीय भाव, द्वितीय भाव में उसी षष्ठांश को जोड़ने से द्वितीय भाव की सन्धि, द्वितीय को सन्धि में षष्ठांश जोड़ने से तृतीय भाव, तृतीय भाव में षष्ठांश जोड़ने से तृतीय भाव की सन्धि होती है तथा तृतीय भाव में २ राशि जोड़ने से पञ्चम भाव होता है और द्वितीय भाव में ४ राशि जोड़ने से षष्ठ भाव होता है। इस प्रकार लग्नादिक ६ भावों में ६, ६ राशि जोड़ने से सप्तम्यादि भाव हो जाते हैं। तृतीय की सन्धि में १ राशि जोड़ने से चतुर्थ भाव की सन्धि होती है, द्वितीय की सन्धि में ३ राशि जोड़ने से पञ्चम की सन्धि और प्रथम लग्न की सन्धि में ५ राशि जोड़ने से षष्ठभाव की सन्धि होती है तथा प्रथम

आदि सन्धि में ६, ६ राशि जोड़ने से सप्तम आदि ६ भावों की सन्धियाँ होती हैं और जिन दो सन्धियों के बीच में ग्रह हों उन दोनों सन्धि के मध्यवाले भाव में ही उस ग्रह को समझना और उसी भाव का फल वह ग्रह देता है ॥ २५-२८ ॥

उदाहरण—पूर्व साधित प्रथम लगन १०।२६।२८।५॥ सप्तम लगन ४।२६।२८।५
चतुर्थ लगन २।०।१६।५२ दशम लगन ८००।१६।५२॥

प्रथम लगन को चतुर्थ लगन में घटाने से शेष ३।३।४८।४७ इसके षष्ठांश ०।१५।३८।७।५० इसको लगन में जोड़ने से लगन की सन्धि, फिर उसमें षष्ठांश को ही जोड़कर द्वितीय भावादिक होते हैं, जैसे—

षष्ठांश=०।१५।३८।७।३०

लगन=१०।२६।२८।५।००

लगन सन्धि=११।१२।६।१२।५०

द्वितीय भाव=११।२७।४४।२०।४०

द्वितीय सन्धि=०।१३।२२।२८।३०

तृतीय भाव=००।२६।०।३६।२०

तृतीय सन्धि=१।४।३८।४।१०

इस प्रकार ससन्धि तीन भावों के साधन करके तृतीय भावमें २ राशि जोड़ने से पञ्चम भाव=२।२६।०।३६।२०
द्वितीय में ४ राशि जोड़ने से षष्ठ भाव=३।२७।४४।२०।४०।

तृतीय सन्धि में १ राशि जोड़ने से चतुर्थ सन्धि=२।१४।३८।४०।१०

द्वितीय सन्धि में ३ राशि जोड़ने से पञ्चम सन्धि=३।१३।२।२८।३०।

लगन सन्धि में ५ राशि जोड़ने से षष्ठ की सन्धि=४।१२।६।१२।५०।

इस प्रकार ससन्धि लगनादि ६ भाव बने । लगनादि भाव और सन्धि में ६, ६ राशि जोड़ने से ससन्धि सप्तमादि भाव होते हैं । जैसे—

इस प्रकार ससन्धि लगनादि ६ भाव बने । लगनादि भाव और सन्धि में ६, ६ राशि जोड़ने से ससन्धि सप्तमादि भाव होते हैं । जैसे—

सप्तम भाव ४।२६।२८।५

अष्टम भाव ५।२७।४४।२०।४०

नवम भाव ६।२६।०।३६।२०

दशम भाव ८।०।१६।५२

एकादश भाव ८।२६।०।३६।१०

द्वादश भाव ९।२७।४०।२०।४०

सप्तम सन्धि ५।१२।६।१२।५०

अष्टम सन्धि ६।१३।२।२८।३०

नवम सन्धि ७।१४।३८।४।१०

दशम सन्धि ८।१४।३८।४।१०

एकादश सन्धि ९।१३।२।२८।३०

द्वादश सन्धि १०।१२।६।१२।५०

अब इस प्रकार से लगनादि भावों में प्रत्यक्ष प्रमाणों और युक्तियों से जो असंगति होती है उसको मेरे पिता जी (सीताराम झा) ने जो दिखाया है उसको संक्षेप में विज्ञ-जनों के समक्ष रखता हूँ ॥२५-२८॥

❀ यथा लगनविवेकम् ❀

गिरं गुरुं गणेशश्च नत्वा लक्ष्मीं तदीश्वरम् ।
अदृग्-दृक्फलसिद्धयर्थं द्विधा लगनं विविच्यते ॥ १ ॥

राशिस्वरूपम्—

नक्षत्राणां समूहो यः स राशिरिति कथ्यते ।
भवृत्तस्वार्कभागोऽपि राशिरेवाभिधीयते ॥ २ ॥

आकाश में जो नक्षत्रों (ताराओं) के समूह हैं, उन्हीं ही राशि कहते हैं, एवं क्रान्तिवृत्त के बारहवें भाग को भी राशि ही कहते हैं ॥२॥

विवरण—सूर्य अपनी पूर्वोन्नतमुखगति से जिस मार्ग से चलता हुआ प्रतीत होता है उसे भवृत्त या क्रान्तिवृत्त कहते हैं । उसके निकट स्थित रेवती तारान्त बिन्दु से क्रान्तिवृत्त के तुल्य १२ भाग मेषादि नाम से १२ राशियाँ कही जाती हैं । मेषादि प्रतिराशि के आदि और अन्तर्गत दो-दो कदम्बप्रोतवृत्त के बीच में जितने नक्षत्र समूह हैं उन सबों की मेष आदि राशि ही संज्ञा है । वह नक्षत्रबिम्बों के समूह राशि का शरीर तथा क्रान्तिवृत्त में राशि का स्थान कहा जाता है ॥२॥

अतो राशिद्विधा प्रोक्तः स्थानविम्बप्रभेदतः ।

प्रत्यक्षो विम्बरूपोऽस्ति, यत्स्थानं च भवृत्तगम् ।

विन्दुरूपं हि तच्चापि राशिनाम्नैव कथ्यते ॥ ३ ॥

इसलिये स्थान और विम्ब (देह) भेद से राशि दो प्रकार की होती है । उसमें नक्षत्र बिम्ब समूह रूप राशि तो प्रत्यक्ष दृश्य है, तथा स्थान रूप राशि को क्रान्तिवृत्तस्थित विन्दुरूप है ॥३॥

लगनम्—

“राशीनामुदयो लगनमित्युक्तं कोषकारकैः ।

लगति क्षितिजे यस्मात् तस्मादन्वर्थनामभाक् ॥ ४ ॥

भेदद्वयाच्च राशीनां लगनं चापि द्विधा मतम् ।

एकं तत्र भविष्यीयं भवृत्तीयं द्वितीयकम् ॥ ५ ॥

कोषकारों ने राशियों के उदय को लगन नाम दिया है, वे क्षितिज में लगने के कारण अन्वर्थ संज्ञक हैं । राशियों के दो भेद होने के कारण

लग्न भी दो प्रकार के होते हैं—एक भविम्बीय (ः क्षत्रविम्बोदयवश) ,
द्वितीय भवृत्तीय (क्रान्तिवृत्तीयस्थानोदयवश) ॥ ४-५ ॥

अथ लग्न प्रयोजनम्—

एतयोर्लग्नयोर्लोकै पृथगस्ति प्रयोजनम् ।

जन्मयात्रा-विवाहादौ भविम्बीयं फलप्रदम् ॥ ६ ॥

लग्नं ग्राह्यं भवृत्तीयं ग्रहणादिप्रसिद्धये ।

उन दोनों प्रकार के लग्नों में—जन्म-यात्रा, विवाह-यज्ञादि सत्कर्मों में भविम्बीय लग्न फलप्रद होता है तथा ग्रहण आदि (ग्रह-नक्षत्रविम्बो-दयास्त) प्रत्यक्ष विषय के कालादि ज्ञान के लिये भवृत्तीय लग्न का प्रयोजन होता है । अतएव 'अदृष्टफल सिद्धचर्य', विवाह, यात्रादि कार्य में विम्बीय लग्न और ग्रहणादि काल ज्ञानार्थ स्थानीय लग्न को ग्रहण करना चाहिये ॥ ६ ॥

उपपत्ति—इसकी यह है कि—राशि—विम्बों के क्षितिज में उदय होने से उनकी किरणें पृथ्वी पर फैलती हैं । उन किरणों के गुण (शुभ या अशुभ) का प्रभाव समय और प्राणियों पर पड़ता है, इसलिये अदृष्ट फल प्राप्ति की कल्पना से यात्रा, विवाहादि में विम्बीय लग्न ग्रहण करने को मुनियों ने आदेश किया है । तथा भवृत्तीय (विन्दु रूप) लग्न से ग्रहण में ग्रास-स्पर्श-मोहादि काल का सूक्ष्म ज्ञान होता है । इसलिये दृष्ट विषय ज्ञानार्थ अपने-अपने स्थानीय उदयनान सिद्ध भवृत्तीय लग्न का उपयोग करने का आदेश है ॥ ६ ॥

विम्बीयलग्ने विशेषः—

विम्बोदयाच्च तन्वादि-भावास्तुल्याश्च द्वादश ॥ ७ ॥

कल्पितास्तत्फलं ज्ञातुं मुनिवर्यैः शुभाशुभम् ।

मुनियों ने विम्बोदय (लग्न) से तनु, धन आदि भावों के फल ज्ञानार्थ तुल्यमान से १२ भावों की कल्पना की है । इसलिये विम्बीय लग्न का भावलग्न नाम रक्खा है ॥ ७ ॥

अथ भावलग्नानां मानानि—

उदयास्तत्र राशीनां तुल्याः पञ्चघटीमिताः ॥ ८ ॥

तावद्धिरेव सर्वत्र घटीभिस्तत्प्रसाधनम् ।

विहितं जातकस्कन्धे मुनिवर्यैः पुरातनैः ॥ ९ ॥

शुभाशुभं फलं ज्ञातुं जन्मिनां भविवासिनाम् ।

उन बारह (१२) राशियों के उदयमान ५ घटी होते हैं । इसलिये समस्त पृथ्वी पर जन्म लेने वालों के शुभाशुभ फल जानने के लिये सर्वत्र

५ घटी मान से ही १२ भावों का साधन मुनियों ने किया है ॥८-६॥

भवृत्तीयलग्नम्--

गृहीतं गणितस्कन्धे भवृत्तीयं विलग्नकम् ॥१०॥

स्व-स्वदृष्टिवशाद्यस्मान्गुणां दृक्प्रत्ययो भवेत् ।

सिद्धान्ते साधितं तस्मात्लग्नं स्वस्वोदयैः पृथक् ॥११॥

मुनियों ने ग्रहणादि ज्ञानार्थ गणित (सिद्धान्त) स्कन्ध में क्रान्तिवृत्तीय लग्न ग्रहण किया है । प्राणियों को अपनी-अपनी दृष्टि से ही कोई दृश्य पदार्थ प्रत्यक्ष होता है, इसलिए सिद्धान्तस्कन्ध में अपने स्थायीय भवृत्तीय राश्युदय द्वारा लग्न साधन किया गया है ॥१०-१२॥

भावलग्ने अदृष्टफलप्रदत्वम्--

राशिबिम्बवशादेव फलं भवति देहिनाम् ।

शुभाऽशुभं सदा नैव स्थानविन्दोर्भवत्तगात् ॥१२॥

प्राणियों को सदा राशि के बिम्बवश ही शुभाशुभ फल की प्राप्ति होती है, क्रान्तिवृत्तगत विन्दुरूप-स्थान से नहीं ॥१२॥

भवत्तस्थानविन्दूनामुदयः क्षितिजे यदा ।

नैव नक्षत्रबिम्बानां कदाचिदुदयस्तदा ॥१३॥

उन्नाम्यन्ते शरैरूर्ध्वं नाम्यन्ते वा कुजादधः ।

जिनाधिकाक्षदेशे तु सदैवेति स्थितिर्ध्रुवा ॥१४॥

जिस समय भवृत्तीय स्थान विन्दुओं का अपने-अपने क्षितिज में उदय होता है, उस समय सब नक्षत्रों के बिम्बों का उदय नहीं होता है । स्थानोदय के समय में नक्षत्रों के बिम्ब अपने-अपने शर के द्वारा या तो क्षितिज से ऊपर अथवा क्षितिज से नीचे रहते हैं । २४ से अधिक अक्षांश देश में सब नक्षत्रों की सदा यही स्थिति रहती है (क्योंकि, अश्विन्यादि सब नक्षत्रों के कुछ न कुछ शर उपलब्ध होते ही हैं) ॥१३-१४॥

तस्माद् दृष्टफलायैव विलग्नं क्रान्तिवृत्तगम् ।

अदृष्टफलमिद्व्यर्थं बिम्बीयं भावसंज्ञकम् ॥१५॥

साधितं मुनिवयैस्तन्न ज्ञात्वा येन केनचित् ।

यवनेन प्रमादाद्वा कुतर्काद्वा स्फुटममात् ॥१६॥

स्वस्वदेशोदयैः सिद्धाल्गनीनात् तुर्यभावतः ।
 षष्ठांशयोजनाद् भावा आर्षभिन्ना प्रसाधिताः ॥१७॥
 अभवन् सहसा केचिद् विज्ञास्तदनुष्ठास्ततः ।
 भारते यदनाक्रान्ते परतन्त्रत्वमागते ॥१८॥
 ज्योतिर्विदोऽत्र सर्वेऽपि संमील्य ज्ञानलोचनम् ।
 विस्मृत्यैव शुभां रीतिं नीलकण्ठमुखाविदः ॥१९॥
 अन्येन नीयमानान्धा एव संचालिता बुधाः ॥२०॥

इसी (ऊपर कहे हुए) हेतु से दृष्टफल (ग्रहण, ग्रहविम्बोदयादि) ज्ञान के लिये स्वस्वदेशोदयसिद्ध स्थानीय लग्न तथा अदृष्ट (विवाह-यात्रादि में शुभाशुभ) फलज्ञानार्थ विम्बीय भावलग्न का साधन मुनियों ने किया । किन्तु किसी ने मुनियों के कहे हुए तत्त्व को न जानकर प्रमाद या कृतर्क* अथवा स्वदेशोदयसिद्ध लग्न को स्पष्ट (भावलग्न से अच्छा) होने के भ्रम से स्वदेशोदयसिद्धलग्न से ही आर्षविरुद्ध द्वादशभावों का साधन प्रकार (लग्नीनतुर्यतः षष्ठांशयुक्त इत्यादि) बताया । फिर सहसा (इस प्रकार में दोषों को बिना विचारे ही प्रमादवश) बहुत से ज्योतिषी भी उसके अनुयायी बन गये एवं भारत को यवनों के आक्रमण से परतन्त्र हो जाने पर सब ज्योतिषियों ने इसी मत को अपनाया, फिर नीलकण्ठ आदि भी अपने-अपने ज्ञानरूप नेत्र को मूँदकर अन्धों के सहारे चलनेवाले अन्धों के समान चलने लगे, जो परम्परा-सी बन गई ॥१५-२०॥

ततः परं श्रीकमलाकरेण ज्योतिर्विदम्भोजदिव्यकरणेन ।
 विनिन्द्य सर्वानपि जातकज्ञान् ग्रन्थे निजे तत्त्वविवेकसंज्ञे ॥२१॥
 यद्योदितं स्वमतं तथाहं वदामि विज्ञा ? इह तन्मुखोक्त्या ।
 “महर्षिभिः स्वीयकृतौ निरुक्ता लग्नांशतुल्यारविसंख्यकाये ॥२२॥
 भावाः सप्ता एव सदा फलार्थग्राह्यास्त एव ग्रहगोलविद्धिः ।
 मुन्युक्तभावात् परतोऽपि पूर्वं तिथ्यंशकैस्तस्य फलं निरुक्तम् ॥२३॥
 लोकेषु मुखोदरपूरणार्थं मुखैर्विलगनाद्रविसंख्यका ये ।
 भावा निरुक्ताः स्वधिधात्वनार्षा सम्यक्फलार्थं न हि तेऽवगम्याः ॥२४॥

* (किसी लाल बुझकड़ ने समझा कि-जब स्वदेशोदयसिद्ध लग्न से दृष्ट (ग्रहणादि) फल मिलते हैं, तो इसी से अदृष्ट फलादेश भी करना चाहिये ऐसा कुविचार) ।

तदनन्तर इस अनर्थ को देखकर ज्योतिषित् कमलवन में सूर्य के समान श्री कमलाकरभट्ट ने अपने तत्त्वविवेक नामक अति श्रेष्ठ सिद्धान्त ज्योतिष ग्रन्थ में उन ज्योतिषियों की निन्दा करते हुए जिस प्रकार अपना मत कहा है उसको मैं उन्हीं के शब्दों में यहाँ कहता हूँ । यथा— 'मर्हषियों ने अपने-अपने ग्रन्थ में लग्न के अंश तुल्य ही (लग्न राश्यादि में एक-एक राशि जोड़कर) अंशवाले तुल्य उदयमान से जो द्वादश भावों का साधन किया है—हे ग्रहगोलज्ञ ! सर्वदा फल (अदृष्ट फल) ज्ञानार्थ उन्हीं भावों को ग्रहण करना चाहिए । उन मुनियों के कहे हुए भावों से १५ अंश पूर्व से १५ अंश आगे तक (पूरे ३० अंश के भीतर) उस भाव का फल कहा गया है । किन्तु लोक में मूर्खों ने अपने सदृश मूर्खों के पेट पालने के लिए अनार्ष (आर्षविरुद्ध) स्वस्वोदय मान सिद्ध जो द्वादशभावों को (अपने कुर्तक द्वारा) कल्पना की है उन भावों को फलकथन (विवाह-यात्रादि) में कभी भी उपयुक्त नहीं मानना चाहिये" ॥ २१-२४॥

इति भट्टेन यत् प्रोक्तं तत् तथ्यं युक्तिसंगतम् ।

तद्कारणं मयाऽप्युक्तं पूर्वमन्यच्च संश्रुणु ॥२५॥

इस प्रकार भट्ट का कहना सर्वथा सत्य और युक्तिसंगत है इसका कारण मैं भी पूर्व कह चुका हूँ, तथा और भी सुनिये ॥२५॥

यथा विम्बीयराशीनां सर्वेषामुदयः सदा ।

सर्वस्य क्षितिजे तद्वत् स्थानीयानां न भूतले ॥२६॥

पृथ्वी पर रहनेवाले सबके क्षितिज में जिस प्रकार विम्बीय १२ राशियों के उदय सर्वदा होते हैं, उसी प्रकार स्थानीय (भवृत्तीय) सब राशियों के उदय नहीं होते हैं ॥२६॥

विवरण—भूगोल में रूपरेखा क्रान्तिवृत्त की स्थिति पूर्वापररूप है । अतः भूचक्र के पूर्वापर भ्रमण होने के कारण सर्वत्र सब के क्षितिज में क्रान्तिवृत्तीय सब राशियों के उदय नहीं होते हैं किन्तु विम्बीय राशियों की स्थिति दक्षिणोत्तर भाव में (उत्तर कदम्ब से दक्षिण कदम्ब तक) सावयव रूप फले हुए हैं, इसलिए भूचक्र के पूर्वापर भ्रमण होने के कारण—पृथ्वी पर रहनेवाले सब के क्षितिज में सब विम्बीय राशियों के उदय होते ही हैं । यह विषय गोल गणितज्ञजन अच्छी तरह जानते हैं ॥ २६ ॥

क्वचित् स्थानीयराशीनां दशानामुदयः सदा ।

अष्टानामेव राशीनां षण्णामेव च कुत्रचित् ॥२७॥

चतुर्णामिव राशीनां द्वयोरेवोदयः क्वचित् ।

इति सर्वं हि जानन्ति सम्यग् गोलविदो विदः ॥२८॥

किसी स्थान में १० ही स्थानीय राशियों के उदय होते हैं तो कहीं ८, कहीं ६, कहीं ४, कहीं २ ही राशि का सदा उदय होता है। इस विषय को अच्छी तरह गोलज्ञजन जानते हैं ॥ २७-२८॥

एवं स्थानीयराशीनां सर्वेषां यत्र नोदयः ।

तत्र द्वादशभावानां कथं सिद्धिः प्रजायते ॥२९॥

ऐसी स्थिति है तो जिस स्थान में सब राशियों के उदय नहीं होते हैं--वहाँ द्वादशभावों की सिद्धि किस प्रकार हो सकती है ॥२९॥

अन्यच्च--

षड्रसाक्षांशदेशे तु कदम्बर्षे खमध्यगे ।

युगपत् सर्वराशीनामुदये किं विलग्नकम् ? ॥३०॥

इस पृथ्वी पर ६६ अक्षांश स्थान में जब कदम्ब तारा नित्य खमध्य में आती है तो वहाँ एक साथ १२ राशियों का उदय होता है, उस समय वहाँ कौन लग्न माना जाय ? ॥३०॥

तथापि--

राशेरर्धमिता होरा सर्वैः स्वीक्रियते ह्यतः ।

लग्नाल्प-पूर्णमानं यत् होरालग्नं तदर्धकम् ॥३१॥

सर्वथा भवितुं योग्यमिति जानन्ति पण्डिताः ।

सार्धद्विघटिकामानात् होरालग्नं प्रवर्त्तते ॥३२॥

अतः पञ्चघटीमानात् लग्नं भवितुमर्हति ।

इति बालोऽपि जानाति काऽत्र बुद्धिमतां कथा ? ॥३३॥

राशि का आधा (१५ अंश) होरा होती है। इस बात को सब मानते हैं, इसलिये राशि लग्नोदयमान का आधा होरा लग्नोदयमान होना चाहिये। होरा लग्न का उदयमान अढ़ाई घटी हो तो लग्न का मान पाँच घटी ही होना चाहिए। इस स्वतः सिद्ध बात को एक बालक (अबोध) भी जान सकता है फिर बुद्धिमानों की तो बात ही क्या ? ॥३१-३३॥

एवं स्त्रोदयजे लग्ने फलार्थं बह्वसङ्गतिः ।

होरालग्नं गृहीत्वैव विज्ञैर्मुन्युक्तमेव हि ॥३४॥

विचारः क्रियते सर्वैर्जैमिन्यायुः प्रसाधने ।

लग्नं स्वोदयज्ञं तत्र क्रिमाश्चर्यमतः परम् ॥३५॥

इस प्रकार अदृष्टफलार्थं स्वस्वोदय लग्न में अनेकों असङ्गतियाँ हैं । जैमिनी से आयुर्दाय साधन करने में सभी विज्ञजन होरालग्न तो मुन्युक्त (आढ़ाई घटी मान से सिद्ध) लेकर विचार करते हैं—किन्तु वहाँ लग्नमान स्वदेशोदय सिद्ध लेते हैं, इससे अधिक आश्चर्य और क्या हो सकता है ? ॥३४-३५॥

तथा विश्वाक्षमादेशे होरालग्नप्रमाणतः ।

लग्नमानं भवेदल्पमिति किं नाद्भुतं महत् ? ॥३६॥

क्योंकि जहाँ पलभा १३ है वहाँ होरालग्न के उदयमान से स्वोदय सिद्ध पूर्णलग्न का मान अल्प हो जाता है । क्या यह महान् आश्चर्य नहीं है ? ॥३६॥

उदाहरण—पलभा १३, इसको १० में गुणा करने से प्रथम चरखण्ड १३० इसको मेष के लङ्कोदयमान २७८ में घटाने से मेषराशि (३० अंश) का उदयमान १४८ पल और होरा लग्न (१५ अंश) का उदयमान अढ़ाई घटी अर्थात् १५० पल होता है ॥ ३६ ॥

तथा च पलभा यत्र वसुनेत्रमिता भवेत् ।

मीन-मेषोदयस्तत्र शून्यादल्पोऽत्र का गतिः ? ॥३७॥

एवं जहाँ पलभा २८ है वहाँ मीन और मेष का स्वदेशोदय पल शून्य से भी अल्प हो जाता है, वहाँ स्वोदय द्वारा किस प्रकार भावों की सिद्धि हो सकती है ॥३७॥

उदाहरण—पलभा २८ इसको १० से गुणा करने से प्रथम चरखण्ड २८० । इसको मेष लङ्कोदय में घटाने से मीन और मेष का स्वोदय ऋणात्मक दो पल होता है जो शून्य से भी अल्प है ॥ ३७ ॥

तथा च मीनलग्नान्ते गण्डान्तं घटिकार्धकम् ।

तावदेव च मेषादौ त्याज्यमुक्तं मुनीश्वरैः ॥३८॥

लग्नमानं भवेद्यत्र स्वल्पं गण्डान्तमानतः ।

समं वा तत्र भो विज्ञ ! मुन्युक्तेः सङ्गतिः कथम् ॥३९॥

और भी—मुनियों का कथन है कि—मीन लग्न के अन्त और मेष लग्न के आरम्भ में आधा-आधा घटी लग्न गण्डान्त होता है । उसको

सब सत्कार्यों में त्याग देना चाहिये । किन्तु जहाँ स्वदेशोदय सिद्ध लगन-मान गण्डान्त घड़ी के तुल्य या उससे भी अल्प हो तो हे विजजन ! वहाँ मुनि वचनों की सङ्गति किस प्रकार हो सकती है ? ॥३५-३६॥

उच्यतां चेदिदं शास्त्रं तद्वेशार्थं न चोदितम् ।

इत्युक्तिरपि मूर्खोक्तिसमैव प्रतिभाति मे ॥४०॥

यदि यह कहा जाय कि—यह शास्त्र उस स्थान वासियों के लिए नहीं कहा गया है ? तो ऐसा कहना भी मूर्खों के कथन के समान ही मैं समझता हूँ ॥४०॥

साङ्गवेदपुराणानि सर्वभूतहितेच्छया ।

कृतानि मुनिभिः सर्वैर्नहि त्वेकस्य हेतवे ॥४१॥

क्योंकि षडङ्ग (जोतिष आदि) सहित वेद और पुराण समस्त पृथ्वी स्थित प्राणियों के हितार्थ कहे गये हैं किसी एक व्यक्ति के लिए नहीं ॥४१॥

ये सन्ति संहिता-होरा-सिद्धान्तेषु कृतश्रमाः ।

जानन्ति सर्वभेदतो ज्ञास्यन्ति च सुबुद्धयः ॥४२॥

तानहं प्रार्थये विज्ञान् सुहृदश्च कृताञ्जलिः ।

यद्भवन्तोऽनृतं मार्गं त्यक्त्वा गच्छन्तु सत्यथम् ॥४३॥

एतावदिद्वनपर्यन्तं यदस्माभिः प्रमादतः ।

कृतं तद् विगतं तत्तु न शोच्यं जातु पण्डितैः ॥४४॥

यदभूत् तदभूत् भूते नास्ति तत्र प्रतिक्रिया ।

नाग्रे यथा प्रमादः स्यात् यतितव्यं तथा सदा ॥४५॥

जिन्होंने संहिता, होरा और सिद्धान्त ज्योतिष का अध्ययन किया है वे इस विषय को अच्छी तरह जानते हैं और जानेंगे, उन सुहृद् वर्गों से मेरी करबद्ध प्रार्थना है कि आप असत् मार्ग को छोड़कर सत्यपथ पर चलें । इतने दिन हम लोगों ने प्रमादवश जो किया वह तो बीत गया उसके लिए पंडितों को सोच नहीं करना चाहिये । जो पीछे हो गया सो हो गया उसकी तो अब कुछ भी प्रतिक्रिया नहीं है, आगे फिर प्रमाद न हो ऐसा यत्न सर्वदा करना चाहिये ॥४२-४५॥

अब मैं—यात्रा-यज्ञ-विवाह-जातकादि के शुभाशुभ फल ज्ञानार्थ मुनियों ने जिस लगन का आदेश और उसका साधन जिस प्रकार बतलाया है उसे सकल साधारण-जनों के उपकारार्थ-सोदाहरण दिखलाता हूँ ।

यथा—जन्मकालादि से शुभाशुभ फल समझने के लिये—मैत्रेय से महर्षि पराशर ने कहा है—

“अथाऽहं संप्रवक्ष्यामि तवाग्रे द्विजसत्तम ! ।

भावन-होरा-घटी-संज्ञ-लग्नानीति पृथक् पृथक्” ॥४६॥

महर्षि पराशर ने कहा—हे द्विजश्रेष्ठ (मैत्रेय) ! अब मैं भावलग्न, होरा लग्न और घटी लग्न को पृथक्-पृथक् कहता हूँ ॥४६॥

विवरण—स्वभावतः प्राणियों के मन में सामान्यतया शरीर, धन, पराक्रम, सुख, सन्तान, आरोग्य, स्त्री, आयु, धर्म, कर्म, आय और व्यय इन भावों का उदय हुआ करता है, उसका शुभाशुभत्व मुख्यतया जिस काल के द्वारा होता है उसको भावलग्न कहते हैं । सूर्योदय के अनन्तर ६० घटी में १ भचक्र के भ्रमण होने के कारण—१२ राशियों के उदय हो जाते हैं । अतः नक्षत्र अहोरात्र में ६० घटी होने के कारण ५, ५ घड़ी में एक भाव राशि का उदय हुआ करता है ॥४६॥

अथ भावलग्नसाधनम्—

इष्टं घट्यादिकं भक्त्वा पञ्चभिर्भादिकं फलम् ।

योज्यमौदयिके सूर्ये भावलग्नं स्फुटं च तद् ॥४७॥

सूर्योदय से घट्यादि इष्टकाल में ५ का भाग देकर लब्धि राश्यादि फल को औदयिक सूर्य में जोड़ने से स्पष्ट भावलग्न होता है ॥४७॥

विवरण—पूर्व कहा जा चुका है कि लग्न दो प्रकार के होते हैं । उनमें अपनी-अपनी दृष्टिवश (अपने-अपने स्थानीय राशयुदय द्वारा सिद्ध) जिस लग्न से ग्रहणादि की गणना होती है वह केवल ‘लग्न’ शब्द से बोधित किया गया है । तथा जिससे उपरोक्त भावों के फल का ज्ञान होता है वह ‘भावलग्न’ शब्द से व्यवहृत है । उसके अन्तर्गत उसी के सूक्ष्म अवयव आधा और पञ्चमांश के उदय, होरालग्न और घटीलग्न नाम से व्यवहृत है ॥४७॥

अथ होरालग्नसाधनम्—

तथा सार्धद्विघटिका—मितादर्कोदयाद् द्विज ।

प्रयाति लग्नं तन्नाम होरालग्नं प्रचक्षते ॥४८॥

इष्टघट्यादिकं द्विघ्नं पञ्चमां भादिजं च यत् ।

योज्यमौदयिके भानौ होरालग्नं स्फुटं च तद् ॥४९॥

एवं अढ़ाई घटीमान से जिसका उदय होता है उसे होरालग्न कहा गया है । उसका साधन प्रकार यह है कि, इष्ट घटीपल को २ से गुणा करके उसमें ५ के भाग देने से जो अंशादि लब्धि होती है, उसको उदय-कालिक सूर्य में जोड़ने से राश्यादि होरालग्न होता है ॥४८-४९॥

स्पष्टग्रह—

सू.	प.	म.	वृ.	वृ.	श.	श.	रा.	कं.
५	४	३	५	४	६	६	७	१
२१	१०	६	२८	१	६	२३	२०	२७
२६	३०	१	३८	५५	६	२८	३	३
१	१४	१	५५	४५	४०	६	५	५
५३	२	३३	२७	१०	७४	६	३	३
३१	२२	१	५१	३९	२६	२७	११	११
			व					

लग्नचक्रलेखनविधिः—

लग्नराशिः पुरः स्थाप्यस्ततो राशीत् क्रमाल्लिखेत् ।

तत्र तत्र ग्रहः स्थाप्यो यस्मिन् राशी च यः स्थितः ॥५३॥

१२ कोष्ठों का एक चक्र बनाकर उसके प्रथम (सामने वाले) कोष्ठ में लग्न राशि को लिखकर आगे क्रम से सब राशियों को लिखें, फिर जो ग्रह जिसमें हो उस राशि में उसको लिखें ॥ ५३ ॥

चलित-भावचक्रम्—

एवं भावफलं ज्ञातुं भावचक्रं पृथक् लिखेत् ।

संधैरल्पो ग्रहः पूर्व-भावे स्थाप्योऽधिकोऽग्रिमे ॥५४॥

सन्ध्यंशादिसमे सन्धौ ततो वाच्यं शुभाऽशुभम् ।

जन्म-यात्रा-विवाहादि—सत्कर्मसु विचक्षणैः ॥५५॥

इस प्रकार भावों का फल जानने के लिए एक भावचक्र पृथक् लिखना चाहिये। उसमें सन्धि से ग्रह अल्प हो तो पूर्व भाव में, सन्धि से अधिक हो तो अग्रिम भाव में ग्रह को लिखना। यदि सन्धि के अंश तुल्य ग्रह के अंश हो तो उसी सन्धि स्थान में उस ग्रह को लिखना चाहिये ॥ ५४-५५ ॥

राशिलग्न कुण्डली ।

१०	रा. ८	
११	६	शु. भा.
१२	६सू. मं. वृ.	
१	३	म. भा.
२के	४	

चलितभाव कुण्डली ।

१०	श. ८	
११	रा. ९	सू. भा.
१२	मं ६	
१	३के.	म. भा.
२	४	

जैसे—भावलग्न धनु है अतः चक्र से प्रथम (सम्मुख) स्थान में ९ लिखकर क्रम से सब राशि लिखी गई है। उसमें सूर्य कन्या राशि में है अतः ६ में सूर्य लिखा गया।

इस प्रकार लग्नराशि कुण्डली में सूर्य दशवे स्थान में है, तथा दशवाँ कर्म भाव है, उसके अग्रिम सन्धि से सूर्य अधिक है अतः उस सन्धि के अगले भाव (११ भाव) में सूर्य लिखा गया। एवं अन्य ग्रहों को लिखकर उपरोक्त चक्र में दिखाया गया है ॥५४-५५॥

अथोभयकुण्डलीनां प्रयोजनम्—

राशिचक्राच्च खेटानां नित्यं स्थानादिजं बलम् ।

सूर्यात् वेशिमुखा योगाश्चन्द्राच्च सुनफादयः ।

संख्याश्रयादिका योगा विचिन्त्या दैवचिन्तकैः ॥५७॥

ग्रहयोगफलं तद्वत् फलं खेटर्षयोगजम् ।

किन्तु-केन्द्रत्रिकोणादि-संज्ञा चक्रद्वयादपि ॥५८॥

लग्नराशि चक्र में स्थित ग्रहों के—उच्च-गृह-नीच-मित्रगृह अदि तथा सूर्य से वेशि, वाशि आदि एवं चन्द्रमा से अनफा, सुनफादि योग तथा संख्या, आश्रय और नामस आदि योग, द्विग्रह आदि योग, ग्रहराशियोग आदि का विचार लग्नराशि चक्र से ही करना चाहिये। किन्तु भाव या ग्रह से केन्द्र, त्रिकोण आदि संज्ञा दोनों ही चक्र में समझना चाहिये ॥५६-५८॥

लग्नात् भावफलं यद् यद् ग्रहयोगात् प्रकीर्तितम् ।

तत् तत् शुभाशुभं सर्वं भावचक्राद् विचिन्तयेत् ॥५९॥

खेटे भावसमे पूर्णं शून्यं सन्धिसमे स्मृतम् ।

फलं तद्भावखेटोत्थं ज्ञेयं मध्ये-ऽनुपाततः ॥६०॥

लग्न से तनु आदि भावों में ग्रह योग सम्बन्धो जो फल कहे गये हैं उनको भाव चक्र से समझना चाहिये। भाव के अशादि तुल्य ग्रह तो पूर्ण-फल और सन्धि के अंशादि तुल्य हो तो शून्यफल एवं सन्धि और भाव के बीच में हो तो अनुपात से फल समझना चाहिये ॥ ५९-६० ॥

विवरण—अनुपात यह है कि—सन्धि से १५ अंश अन्तर पर (भावतुल्य) होने से पूर्णफल (६० कला) तो इष्ट सन्धि ग्रहान्तर में क्या ? इस त्रैराशिक से लब्धिभावफल=६०' (सं ७ ग्र)=४' (सं ७ ग्र)। इससे उत्पन्न होता है कि—

सन्धिग्रहान्तरांशाद्यं वेदैः क्षुण्णं कलादिकम् ।

फलं तद्भावखेटोत्थं विज्ञेयं दैवचिन्तकैः ॥६१॥

सन्धि ग्रहान्तरांश संख्या को ४ गुना करने से भावफल का मान होता है । जैसे सूर्य-५२२४१४।४८ और सन्धि ५।६।३।४८ इन दोनों का अन्तर अंशादि ७।५२।० को ४ से गुणा करने से ३०।४८।० यह सूर्य सम्बन्धी १ भाव का फल प्रमाण हुआ ॥६१॥

एवं कलादि फल ४० से ऊपर पूर्ण, ४० से नीचे तक २० तक मध्यम और २० से अल्प हो तो हीन समझा जाता है ।

होरालग्नोदाहरण—इष्टघटी १।१३ को हुना करने से २२।२६ इसमें ५ के भाग देने से लब्धि राश्यादि ४।१४।३६ को औदयिक सूर्य ५।०४।१४।४८ में जोड़ने से १०।८।५०।४८ यह राश्यादि होरा लगनमान हुआ ।

घटी लग्नोदाहरण—

इष्ट घटीपल ११।१३ घटी तुल्य ११ राशि और पल १३ के आधा ६ अंश ३० कला इसको औदयिक सूर्य में जोड़ने से ५।०।४४।४८ यह राश्यादि—घटी लगनमान हुआ ॥६१॥

स्थानलग्नवशाद्यस्माद् भासिद्धिर्न जायते ।

तस्मात् जातक्यात्रादौ भावलग्नान् फलं वदेत् ॥६२॥

चूँकि स्वोदयमानसिद्धि लग्न से भावसिद्धि नहीं होती अतः भावलग्न से ही फल कहना चाहिये ॥६२॥

इति संक्षेपतो लग्नविवेकः कथितो मया ।

यदि क्वचित् त्रुटिः सा हि क्षन्तव्या तत्त्ववेदिभिः ॥६३॥

स्वभावादेव सन्तुष्टा भविष्यन्ति सुहृज्जनाः ।

भवन्तु मुदिता विज्ञा विज्ञाय मदुदीरितम् ॥६४॥

न ज्ञात्वा तत्त्वमत्तस्यमज्ञा अपि हसन्तु माम् ।

इत्यहं सफलं मन्ये सर्वथैव निजश्रमम् ॥६५॥

अथ पूर्वजनैः प्रोक्तं लक्षणं विज्ञमूढयोः ।

प्रसङ्गाद् विलिखाम्यत्र बालकानां मुदे यथा ॥६६॥

दोषं विलोक्यापि 'परम्परा मे' मत्वेति तां नैव जहाति मूढः ।

तातस्य कूपोऽयमिति ब्रुवाणाः क्षारं जलं कापुरुषाः पिबन्ति ॥६७॥

पुराणमित्येव न साधु सर्वं न वाऽपि काव्यं नवमित्यदद्यम् ।

सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः ॥६८॥

❀ अथ भावफलप्रकरणम् ❀

लग्नात्-तनुर्धनं भ्राता सुखं पुत्र-रिपु-स्त्रियः ।

मृत्युश्च धर्म-कर्माय व्ययश्चेति यथाक्रमम् ॥ १ ॥

१ तनु, २ धन, ३ भ्राता, ४ सुहृद्, ५ पुत्र, ६ रिपु, ७ स्त्री, ८ मृत्यु, ९ धर्म, १० कर्म, ११ आय, १२ व्यय ये बारह भाव कहे गये हैं ॥१॥

विषमोऽथ समः पुंस्त्री क्रूरः सौम्यश्च नामतः ।

चरः स्थिरो द्विस्वभावो मेषाद्याः राशयः क्रमात् ॥ २ ॥

मेषादि राशियों की क्रम से विषम, सम और पुरुष, स्त्री तथा क्रूर, सौम्य, चर, स्थिर, द्विस्वभाव संज्ञायें हैं । निम्नलिखित चक्र से स्पष्ट जानिये ॥२॥

मेष	वृष	मि०	कर्क	सिंह	कन्या	राशि
विषम	सम	विषम	सम	विषम	सम	विषमादि संज्ञा
पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष की संज्ञा
क्रूर	सौम्य	क्रूर	सौम्य	क्रूर	सौम्य	क्रूर सौम्य संज्ञा
चर	स्थिर	द्विस्व	चर	स्थिर	द्विस्व	चर आदि संज्ञा
मे०	वृ०	ध०	मकर	कुम्भ	मी०	राशि
विषम	सम	विषम	सम	विषम	सम	विषम आदि
पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष स्त्री संज्ञा
क्रूर	सौम्य	क्रूर	सौम्य	क्रूर	सौम्य	क्रूर सौम्य संज्ञा
चर	स्थिर	द्विस्व	चर	स्थिर	द्विस्व	चर आदि संज्ञा

दुश्चिक्यं स्यात्तृतीयं च चतुर्थं सुखसद्म च ।

बन्धुसंज्ञं च पातालं हिवुकं पञ्चमे च धीः ॥ ३ ॥

जन्मलग्न से तृतीय स्थान की दुश्चिक्य, चतुर्थ स्थान की सुख, बन्धु, पाताल, हिवुक और पञ्चम स्थान की धी संज्ञा है ॥३॥

द्युनं द्युनं तथाऽस्तं च जामित्रं सप्तमं स्मृतम् ।
दशमं त्वम्बरं मध्यं छिद्रं स्यादष्टमं गृहम् ॥४॥

सप्तम स्थान का द्युन, अस्त और जामित्र नाम है । दशम स्थान की अम्बर तथा मध्य संज्ञा है और अष्टम स्थान की छिद्र संज्ञा है ॥४॥

एकादशं भवेत्लाभः सर्वतोभद्र एव च ।
द्वादशं च गृहं रिष्कं त्रिकोणं नवपञ्चमे ॥५॥

ग्यारहवें स्थान की लाभ और सर्वतोभद्र संज्ञा कही गयी है । बारहवें भवन को रिष्क कहते हैं और नवम-पंचम घर की त्रिकोण संज्ञा है ॥५॥

त्रिंशद्दशमारीणां भवेदुपचयाख्यकम् ।
चतुर्थाऽष्टमयोः संज्ञा चतुरस्रं स्मृता बुधैः ॥६॥

तीसरे, ग्यारहवें, दशवें और छठवें स्थानों को उपचय कहते हैं और चौथे तथा आठवें घर को विद्वानों ने चतुरस्र कहा है ॥६॥

केन्द्रचतुष्टयकण्टकसंज्ञा लग्नास्तूर्यसप्तदशमानाम् ।

परतः पणफरमापोक्लिमं च वेद्यं यथाक्रमतः ॥७॥

पहला, चौथा, सातवाँ दशवाँ, इन स्थानों की केन्द्र चतुष्टय और कण्टक संज्ञा है । इनके आगे के स्थान (दूसरे, पाँचवें, आठवें और ग्यारहवें) की पणफर संज्ञा है । इनसे अन्य स्थानों (तीसरे, छठे, नवें) की आपोक्लिम संज्ञा है ॥७॥

वर्गोत्तमा नवमांशश्चरादिषु प्रथमपञ्चमान्त्यः ।

होरा विषमेऽर्केन्द्रोः समराशौ चन्द्रसूर्ययोः क्रमशः ॥८॥

वर्गोत्तम, नवांश, चर आदि राशियों के क्रम से पहला, पाँचवाँ, नवाँ (चर राशि का पहला, स्थिर राशि का पाँचवाँ, द्विस्वभाव राशि का नवाँ) वर्गोत्तम जाने । विषम राशियों में पहले १५ अंश तक सूर्य की होरा होती है । उसके पश्चात् चन्द्रमा की, और समराशियों में पहले १५ अंश तक चन्द्रमा की, बाद में सूर्य की होरा जाने । ८॥

स्वगृहाद् द्वादशभागा द्रेष्काणाः प्रथमपञ्चनवपानाम् ।

ज्ञेया बुधैश्च वर्णा षट्संख्या जातके श्रेष्ठाः ॥९॥

मेघाद्याश्चत्वारः सधन्विमकराः क्षपात्रला ज्ञेयाः ।

पृष्ठोदया विमिथुनाः शिरसाऽन्ये ह्युभयतो मीनः ॥१०॥

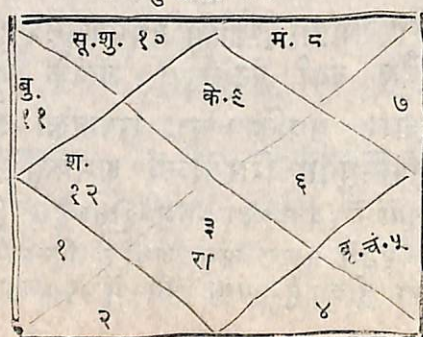
प्रत्येक राशियों में बारह द्वादशांश होता है । (३०) अंश की एक राशि होती है । इसमें बारह अंश अर्थात् हिस्सा करने से एक भाग २ अंश ३० कला होता है, यथा मेष में २ अंश ३० कला तक मेष

का द्वादशांश होता है और इसके बाद ५ अंश तक वृष का। इसी प्रकार सब राशियों का जाने। द्रेष्काण प्रत्येक राशि में तीन-तीन होते हैं। पहले १० अंश तक उसी राशि का, उसके बाद २० अंश तक उसके पाँचवीं राशि का, इसके बाद ३० अंश तक उससे नवीं राशि का द्रेष्काण होता है। जैसे मेषराशि के १० अंश तक मेष के स्वामी मंगल का, उसके बाद २० अंश तक सिंह के मालिक सूर्य का, इसके बाद ३० अंश पर्यन्त धनराशि के मालिक बृहस्पति का द्रेष्काण होता है। ऐसे ही सब राशियों के द्रेष्काण जाने। मेष से चार राशि (मेष, वृष, मिथुन, कर्क) और धन, मकर ये छः रात्रि में बली होती हैं और शेष राशि (सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, कुम्भ, मीन) दिन में बली होती है ऐसा जाने। जो राशि रात्रि में बली है, उनमें से मिथुन को छोड़कर शेष (मेष, वृष, कर्क, धन, मकर) राशि पृष्ठोदय हैं अर्थात् ये पीठ से उदित होती हैं। शेषराशि (मिथुन, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, कुम्भ शीर्षोदय हैं अर्थात् शिर से उदय होती हैं और मीन पृष्ठोदय और शीर्षोदय दोनों हैं ॥६-१०॥

सूर्यादिस्पष्टग्रह

सू.	चं.	मं.	बु.	वृ.	शु.	श.	रा.	के.
६	४	७	१०	४	६	११	२	८
२५	२३	२४	३	२३	५	१२	०	०
४	५३	२०	२	०	२१	१६	३६	३६
३३	२०	३१	४९	३७	५५	५५	३६	३६

जन्मकुण्डली चक्र—



उदाहरण श्रीसम्बत् १९६५ कार्तिक मास कृष्ण पक्ष में २ तिथि, वा० शनि, उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र, अतिगंड योग, गर करण में सूर्य उदय से घटी ५२ पल० पर पण्डित हरिचरण पाठकजी का जन्म है।

स्पष्टलग्न ८२८।४०।५६ धन लग्न है। इससे "लग्नेश बृहस्पति" हुआ। धन लग्न विषम है और १५ अंश से अधिक है। इससे "होरेश चन्द्रमा" हुआ। धन लग्न का २८ अंश बीता है। इससे ३ द्रेष्काण हुआ। इससे नवीं राशि सिंह का "द्रेष्काणेश" सूर्य हुआ। मेष से ६ वां धन होता है। अतः धन का नवांश हुआ। "नवांशेश बृहस्पति" हुआ। द्वादशांश बारहवां हुआ। धनराशि से बारहवीं राशि वृश्चिक है। अतः वृश्चिक राशि का द्वादशांश हुआ। "द्वादशांशेश मंगल" हुआ। धन विषम राशि है, २८ अंश तक बीत गया है अतः "त्रिंशांशेश शुक्र" हुआ। इस प्रकार षड्वर्गाधीश जाने।

वर्गोत्तम मात्र दिखाकर ग्रन्थकर्ता ने नवांश का आदेश मात्र इस पद्य में दिखाया है। त्रिंशांश के बारे में कुछ नहीं लिखा। इन दोनों का विवरण निम्नलिखित प्रकार से जाने।

एक राशि में नौ नवांश होते हैं और एक राशि तीस अंशों की होती है। जिसमें हर एक नवांश का तीन अंश, बीस कला मान होता है। मेष, सिंह और धनका नवांश मेषसे आरम्भ होता है। वृष, कन्या, मकर का नवमांश मकर से तथा मिथुन तुला और कुंभ का नवांश तुला से आरंभ होता है और बर्क वृश्चिक मोन का कर्क से आरंभ होता है।

सम राशि में पहले में पाँच अंश तक शुक्रका, फिर ७ अंश तक बुध का, ८ अंश तक बृहस्पति का, फिर पाँच अंश तक शनि, फिर ५ अंश तक मंगल का त्रिंशांश होता है। विषमराशि में ५ अंश तक मंगल का, ५ अंश तक शनि का, ८ अंश तक गुरु का, ७ अंश तक बुध का और ५ अंश तक शुक्र का त्रिंशांश होता है ॥६-१०॥

पापग्रहाः—

क्षीणश्चन्द्रो रविर्भीमः पापो राहुः शनिश्शिखी ।

बुधोऽपि तैर्युतः पापो होरा राश्यर्द्धमुच्यते ॥११॥

क्षीण चन्द्रमा, सूर्य, मंगल, राहु, शनि, केतु ये पापग्रह हैं और इन ग्रहों के साथ बुध रहे तो वह भी पापग्रह होता है, राशि के आधे भाग को होरा कहते हैं ॥११॥

अथ अहमंत्रि—

रवीन्दुमौमगुरवो

ज्ञराहुशनिभार्गवाः ।

स्वस्मिन्मित्राणि चत्वारि परस्मिञ्छत्रवः स्मृताः ॥१२॥

सूर्य, चन्द्र, मंगल और बृहस्पति ये चार ग्रह अपने में मित्र हैं और बुध, राहु, शनि, शुक्र ये चार ग्रह भी अपने में मित्र हैं और बुध, राहु शनि, शुक्र ये चार ग्रह पूर्वोक्त ग्रहों के शत्रु हैं ॥१२॥

ग्रहाणामुच्च-नीच-विचारः--

मेषे रविवृषे चन्द्रो मकरे च महीसुतः ।

कन्यायां रोहिणीपुत्रो गुरुः कर्के भूषे भृगुः ॥१३॥

शनिस्तुलायामुच्चश्च मिथुने सिंहिकासुतः ।

उच्चात्सप्तमया नीचा राशौ वाऽपि नवांशके ॥१४॥

मेष का सूर्य, वृष का चन्द्रमा, मकर का मंगल, कन्या का बुध, कर्क का बृहस्पति, मीन का शुक्र, तुला का शनि, मिथुन का राहु उच्च है। अपनी उच्च राशि से सातवीं राशि नीच होती है। जैसे मेष का सूर्य उच्च है तो इससे सातवीं राशि तुला का नीच होगा। इस प्रकार सब ग्रहों को जाने। जिस प्रकार राशि का उच्च नीच कहा गया है इती प्रकार नवांश में भी जाने ॥ १३-१४॥

फलम्

अर्थी भोगी धनी नेता जायते मण्डलाधिपः ।

नृपतिश्चक्रवर्ती च रथ्याद्यैरुच्चकैर्ग्रहैः ॥१५॥

सूर्य उच्च राशिका हो तो धनी, चन्द्रमा उच्चराश का हो तो भोगी, मंगल उच्च राशि का हो तो नेता, बुध उच्च का हो तो मण्डलाधिप, बृहस्पति उच्च राशि को हो तो राजा और शनि उच्च राशि का हो तो चक्रवर्ती बनाता है ॥१५॥

त्रिमिः स्वस्थैर्भवेन्मन्त्री त्रिभिरुच्चैर्नराधिपः ।

त्रिभिर्नीचैः भवेद्दासस्त्रिभिरस्तङ्गतैर्जडः ॥१६॥

जिस मनुष्य की कुण्डली में तीन ग्रह स्वस्थ अर्थात् अपनी राशि के हों तो वह मन्त्री होता है, तीन ग्रह उच्च के हो तो राजा होवे, तीन ग्रह नीच राशि के हो तो दास होता है, तीन ग्रह अस्त के हो तो जड़ (मन्द बुद्धिवाला) होवे ॥१६॥

सबलग्रहाः--

उदितः स्वगृहस्थश्च मित्रगेहे स्थितोऽपि वा ।

मित्रवर्गे मित्रदृष्टः स ग्रहः सबलः स्मृतः ॥१७॥

जो ग्रह उदित हो, अपनी राशि का हो, अपने मित्र के घर में हो

या मित्र के षड्वर्ग में या मित्र से देखा जाता हो तो वह बलवान् होता है ॥ १७ ॥

स्वामिना बलिना दृष्टं सबलैश्च शुभग्रहैः ।

न दृष्टं न युतं पापैस्तल्लग्नं सबलं स्मृतम् ॥१८॥

जो लग्न अपने बलवान् स्वामी से देखा जाय, जिस लग्न को बलवान् शुभ ग्रह देखें और उस लग्न को पाप ग्रह न देखता हो, न युक्त ही हो तो वह लग्न बलवान् जाने ॥१८॥

अथ राजयोगाः—

दशमे बुधसूर्यौ च भौमराहू च षष्ठ्यौ ।

राजयोगेऽत्र यो जातः स पुमान्नायको भवेत् ॥१९॥

अब राजयोग कहते हैं। जन्मलग्न से दशम स्थान में बुध सूर्य हो और छठें घर में मंगल राहु हो तो राजयोग होता है। इस योग में पैदा हुआ मनुष्य नायक अर्थात् बहुत मनुष्यों का मालिक होता है ॥१९॥

आदौ जीवः शनिश्चान्ते ग्रहा मध्ये निरन्तरम् ।

राजयोगं विजानीयात् कुटुम्बबलसंयुतम् ॥२०॥

आदि में गुरु, अन्त में शनि और इन दोनों के मध्य में शेष ग्रह (सू० च० म० बु० शु० रा० के०) हो तो बल (सैन्य) तथा कुटुम्ब से युक्त राजयोग होता है ॥२०॥

सहजस्थो यदा जीवो मत्स्यस्थाने स्थितः सितः ।

निरन्तरं ग्रहा मध्ये राजा भवति निश्चितम् ॥२१॥

जिस मनुष्य के जन्मलग्न से तीसरे बृहस्पति और आठवें शुक हों और इन दोनों के मध्य में शेष सब ग्रह हों तो वह निश्चय राजा होवे ॥२१॥

जीवो वृषे सुधारश्मिर्मिथुने बकरे कुजः ।

सिंहे भवति सौरिश्च कन्यायां बुधभास्करौ ॥२२॥

तुलायामसुराचार्यो राजयोगो भवेदयम् ।

अस्मिन् योगे समुत्पन्नो महाराजो भवेन्नरः ॥२३॥

अष्टमे द्वादशे वर्षे यदि जीवति स मानवः ।

सार्वभौमस्तदा राजा जायते विश्वपालकः ॥२४॥

बृहस्पति वृष राशि में, चन्द्रमा मिथुन राशि में, मंगल मकर राशि में, शनि सिंह राशि में और बुध तथा सूर्य कन्या राशि में और शुक्र तुला राशि में हो तो राजयोग होता है। इस योग में पैदा हुआ मनुष्य महाराजा होता है, यदि इन योगों में उत्पन्न मनुष्य आठवें तथा बारहवें वर्ष में मृत्यु से बच जाय तो संसार का पालन करने वाला सार्वभौम राजा होता है ॥ २२-२४ ॥

एको जीवो यदा लग्ने सर्वे योगास्तदा शुभाः ।

दीर्घजीवी महाप्राज्ञो जातको नायको भवेत् ॥२५॥

यदि जन्मकाल में केवल एक बृहस्पति ही बलवान होकर स्थित हो तो सम्पूर्ण (शुभाशुभ) योग शुभ ही होते हैं। इस योग में उत्पन्न मनुष्य बहुत समय तक जीने वाला और विशेष बुद्धिमान् होता है ॥ २५ ॥

चापे शुक्रश्च भौमश्च मीने जीवस्तुले बुधः ।

नीचस्थौ शनिचन्द्रौ च राजयोगोऽभिधीयते ॥२६॥

अस्मिन् योगे जाते च स राजा धनवर्जितः ।

दाता भोक्ता च विख्यातो मान्यो मण्डलनायकः ॥२७॥

जिस मनुष्य का शुक्र तथा मंगल धन राशि में हो, बृहस्पति मीन राशि में हो, बुध तुला राशि में हो, शनि तथा चन्द्रमा नीच राशि का (शनि मेष का और चन्द्रमा वृश्चिक का) हो तो राजयोग होता है। इस योग में उत्पन्न प्राणी दान, भोग आदि में विशेष धन व्यय होने से धनहीन राजा होकर दाता, भोगी, विख्यात और मान्य तथा मण्डल का नायक होता है ॥ २६-२७ ॥

मीने शुक्रो बुधश्चान्ते धने राहुस्तनी रविः ।

सहजे च भवेद्भौमो राजयोगोऽभिधीयते ॥२८॥

यदि शुक्र मीन राशि में, बुध व्ययभाव में, राहु धन भाव में, सूर्य जन्मलग्न में, मङ्गल सहज भाव में रहे तो राजयोग होता है ॥२८॥

सहजे च यदा जीवो लाभस्थाने च चन्द्रमाः ।

स राजा गृहमध्यस्थो विख्यातः कुलदीपकः ॥२९॥

बृहस्पति तीसरे घर और चन्द्रमा ग्यारहवें स्थान में हो तो अपने घर में स्थिर कुलदीपक राजा होता है ॥२९॥

शुभग्रहाः शुभक्षेत्रे भवन्ति यदि केन्द्रगाः ।

तदा शुभानि कर्माणि करोत्येव हि जातकः ॥३०॥

यदि शुभग्रह शुभ स्थान में और केन्द्र (१।४।७।१०) में हो तो ऐसे योग में उत्पन्न मनुष्य शुभकर्म को करने वाला होवे ॥३०॥

उच्चस्थानगताः सौम्याः केन्द्रेषु च भवन्ति चेत् ।

ध्रुवं राज्यं भवेत्तस्य वंशानां चैव पोषकः ॥३१॥

जिस मनुष्य के शुभग्रह उच्चस्थान में रहकर केन्द्र में पड़ जायें तो निश्चय वह जातक वंश का पालन करने वाला होवे ॥३१॥

मीने वृहस्पतिः शुक्रश्चन्द्रमाश्च यदा भवेत् ।

अत्र जातस्य राज्यं स्यात् पत्नी च बहुपुत्रिणी ॥३२॥

जिस जातक के गुरु, शुक्र और चन्द्रमा मीन राशि में हों तो उसको राज्य हो और उसकी स्त्री अधिक पुत्रवाली होती है ॥३२॥

सिंहे जीवस्तुलाक्रीटकोदण्डमकरेषु च ।

ग्रहाः यदा तदा जातो देशभोगी भवेन्नरः ॥३३॥

जिसके गुरु सिंहराशि में और अन्य ग्रह तुला, कर्क, धन, मकर इन राशियों में हों तो वह जातक देश भर का भोग करनेवाला यानी देश भर का राजा होता है ॥३३॥

तुलाकोदण्डमीनस्थो लग्नगः स्याच्छनैश्चरः ।

कोति भृपतेर्जन्म त्वन्यराशौ यदा ग्रहाः ॥३४॥

जिसका शनि तुला, धन तथा मीन राशि का होकर लग्न में बैठा हो और अन्य ग्रह अन्य राशियों में स्थित हों तो वह राजा होता है ॥३४॥

चन्द्रमा दशमे स्थाने नवमे च शुभग्रहाः ।

विद्यास्थाने यदा सौम्या राजयोगस्तदुच्यते ॥३५॥

यदि शुभ ग्रह विद्यास्थान (पञ्चम) में हो और चन्द्रमा दशम में हो तथा शुभग्रह नवें स्थान में भी हो तो राजयोग कहलाता है ॥३५॥

मकरे च घटे मीने वृषे मिथुनमेषयोः ।

ग्रहा यदाऽत्र विख्यातो राजा भवति मानवः ॥३६॥

जिसके सम्पूर्ण ग्रह मकर, कुम्भ, मीन, वृष, मिथुन और मेष इन राशियों में हों तो वह प्रसिद्ध राजा होता है ॥३६॥

चतुर्थे भवने शुक्रो गुश्चन्द्रो धरासुतः ।

रविसौरियुताः सन्ति राजा भवति निश्चितम् ॥३७॥

जिसके शुक्र चन्द्रमा, बृहस्पति, मंगल, सूर्य और शनि चौथे स्थान में हों वह निश्चय राजा होवे ॥३७॥

अष्टमे च व्यये क्रूरो मध्यगौ क्रूरसौम्यकौ ।

राजयोगेऽत्र यो जातश्चत्वारिंशत्स जीवति ॥३८॥

यदि क्रूर (पाप) ग्रह आठवें और बारहवें हों और इन दोनों के मध्य में क्रूर सौम्य दोनों प्रकार के ग्रह हों तो वह राजयोग होता है। इस योग में जन्म लेनेवाला चालीस वर्ष पर्यन्त जीवित रहता है ॥३८॥

लग्ने मौरिस्तथा चन्द्रस्त्रिकोणे जीवभास्करौ ।

कर्मस्थाने भवेद्भौमो राजयोगोऽभिधीयते ॥३९॥

यदि शनि और चन्द्र लग्न में बृहस्पति और सूर्य त्रिकोण (६।५) में तथा मंगल दशम स्थान में हों तो भा राजयोग होता है ॥३९॥

द्वित्रितूर्यसुते षष्ठे कर्मण्यपि यदा ग्रहाः ।

राजयोगं विजानीयाञ्जातस्तत्र नृपो भवेत् ॥४०॥

जिसके द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम, षष्ठ और दशम इन स्थानों में सब ग्रह हों तो राजयोग होता है। इस योग में उत्पन्न मनुष्य राजा होता है ॥४०॥

लग्ने क्रूरो व्यये सौम्यो धने क्रूरश्च जायते ।

राजयोगो न राजा च दाता द्रारीद्रघमाक् सदा ॥४१॥

जिसके लग्न में पापग्रह, बारहवें शुभग्रह और दूसरे में भी पाप ग्रह हों तो राजयोग होता है, परन्तु वह राजा नहीं किन्तु दाता होता है और दरिद्र रहता है ॥४१॥

धने चन्द्रश्च सौम्यश्च मेषे जीवो यदा भवेत् ।

दशमे राहुशुक्रौ च राजयोगोऽभिधीयते ॥४२॥

जिसके दूसरे भाव में चन्द्रमा अथवा बुध हो और मेषराशि में बृहस्पति होवे, दशम स्थान में राहु और शुक्र होवे तो राजयोग होता है ॥४२॥

शनिचन्द्रौ च कन्यायां सिंहे जीवो घटे तमः ।

मकरे च कुजस्तत्र जातः स्याद् विश्वपालकः ॥४३॥

जिसके शनिेश्वर तथा चन्द्रमा कन्या राशि में, बृहस्पति सिंह राशि में, राहु कुम्भ में और मंगल मकर राशि में हो तो वह ससार का पालने वाला (राजा) होता है ॥४३॥

कर्कलग्ने जीवयुक्ते लाभे चन्द्रभार्गवोः ।

मेघे भानौ च यो जातः स राजा विश्वपालकः ॥४४॥

जिसके जन्मलग्न में कर्क हो और लग्न बृहस्पति से युक्त हो, ग्यारहवें चन्द्रमा तथा बुध शुक्र हो और मेघ राशि में सूर्य हो तो वह मनुष्य संसार का पालन करने वाला राजा होता है ॥४४॥

कर्मस्थाने यदा जीवो बुधः शुक्रस्तथा शशी ।

सर्वकर्माणि सिद्धयन्ति राजमान्यो भवेन्नरः ॥४५॥

यदि दशवें स्थान में बृहस्पति, बुध, शुक्र और चन्द्रमा हों तो उस मनुष्य का सब कार्य सिद्ध होता है और वह राजाओं में माननीय होता है ॥४५॥

षष्ठे पञ्चमे च नवमे द्वादशे तथा ।

सौम्यक्रूरग्रहैर्योगे राजपान्यः सकष्टकः ॥४६॥

जिसके छठें, आठवें, पाँचवें, नवें और बारहवें स्थान में शुभग्रह और पापग्रह दोनों हों तो भी वह मनुष्य राजाओं में माननीय, परन्तु कष्ट भोगनेवाला होता है ॥४६॥

लग्ने सौरिस्तथा चन्द्रश्चाष्टमे भार्गवो यदा ।

जायते च तदा राजा मानी पत्नीरतः सदा ॥४७॥

लग्न में शनि और चन्द्र हो और आठवें शुक्र हो तो ऐसे योग में उत्पन्न हुआ मनुष्य राजा होता है और अभिमानी तथा स्त्री में आसक्त (लीन) रहता है ॥४७॥

मिथुनस्थो यदा राहुः सिंस्थो भूमिनन्दनः ।

अत्र जातः पितुर्द्रव्यं प्राप्नोति सकलं नृपः ॥४८॥

यदि मिथुन राशि में राहु तथा सिंह राशि में मंगल हो तो इस योग में उत्पन्न मनुष्य अपने पिता के सब द्रव्यों को लेनेवाला राजा होता है ॥४८॥

चापमे पूर्वे-भाणस्थौ सूर्या-चन्द्रमसौ यदा ।

लग्ने च सवलो मन्दः मकरे च कुजो भवेत् ॥४९॥

अत्र योगे समुत्पन्नो महाराजो भवेन्नरः ।

दूरादेव नमन्त्यस्य प्रतापैश्वर्यं नृपाः ॥५०॥

यदि धनराशि के पूर्वार्द्धे अर्थात् १५ अंश पर्यन्त चन्द्रमा से युक्त सूर्य हो, लग्न में बलवान् शनि तथा मकर राशि में मंगल हो तो इस योग में उत्पन्न हुआ मनुष्य राजा होता है। इसके प्रताप से दूर ही से और राजा लोग उसके चरणों पर शिर नवाते हैं ॥४९-५०॥

उच्चाभिलाषी सविता त्रिकोणस्थो यदा भवेत् ।

अपि नीचकुले जातो राजा स्याद्भनपूरितः ॥५१॥

जिसके उच्चराशि के सूर्य त्रिकोण (१५) में हों, उस मनुष्य का नीच कुल में भी जन्म हो तो भी वह धन से पूर्ण राजा होता है ॥५१॥

धनस्थाने यदा शुक्रो दशमे च बृहस्पतिः ।

षष्ठे च सिंहिकापुत्रो राजा भवति विक्रमी ॥५२॥

जिसके धनस्थान में शुक्र, दशम स्थान में गुरु और छठें घर में राहु होवे तो वह पराक्रमी राजा होता है ॥५२॥

चतुर्ग्रहा एकगताः पापाः सौम्या भवन्ति चेत् ।

भ्रातृधीधर्मलग्नार्था राजयोगो भवेदयम् ॥५३॥

जिसके एक स्थान में शुभग्रह और पापग्रह दोनों मिलकर चार हों, परन्तु वह स्थान तीसरा, पाँचवाँ, नवाँ, पहला, दूसरा इन्हीं स्थानों में से कोई स्थान हो तो राजयोग होता है ॥५३॥

सर्वग्रहैर्यदा चन्द्रो विनालिं च निरीक्षितः ।

षष्ठेऽष्टमे च यामित्रे स दीर्घायुर्धर्मापतिः ॥५४॥

यदि चन्द्रमा वृश्चिक राशि को छोड़कर अन्य राशि का होकर छठवें या आठवें अथवा सातवें स्थान में स्थित हो और उसको सब ग्रह देखते हों तो वह विशेष आयु वाला राजा होता है ॥५४॥

अष्टमे च यदा पापाः केन्द्रस्थाने शुभग्रहाः ।

सर्वसिद्धिर्भवेत्तस्य राजसम्मानमेव च ॥५५॥

जिस मनुष्य के पापग्रह आठवें हों और शुभग्रह केन्द्र में हो तो उसको सर्वसिद्धि होवे और राजाओं से मान (इज्जत) पावे ॥५५॥

मेषलग्ने यदा भातुश्चतुर्थे च बृहस्पतिः ।

दशमे च कुजो ज्ञातो विश्वस्याधिपतिर्भवेत् ॥५६॥

यदि मेषलग्न में जन्म हो और उसी में सूर्य हो एवं चौथे स्थान

में बृहस्पति हो और मंगल दशवें हो तो वह मनुष्य संसार को पालने वाला राजा होता है ॥५६॥

लग्ने सौरिस्तथा चन्द्रस्त्रिकोणे जीवभास्करो ।

कर्मस्थाने भवेद् भौमो राजयोगो विधीयते ॥५७॥

यदि शनि तथा चन्द्रमा लग्न में, बृहस्पति तथा सूर्य त्रिकोण (६।५) में और मंगल दशम स्थान में हो तो राजयोग जाने ॥ ५७ ॥

केन्द्रे स्वोच्चे स्थिते सौम्ये राजलक्ष्मीपतिर्भवेत् ।

केन्द्रे पापे स्वोच्चसंस्थे राजा स्याद् दुहितुर्गृहे ॥५८॥

यदि शुभग्रह अपनी उच्चराशि में होकर केन्द्र में हो तो वह राजलक्ष्मी का स्वामी होता है और यदि पापग्रह अपनी उच्च राशि में होकर केन्द्र में हो तो वह अपनी कन्या के घर में राजा होता है ॥५८॥

चतुर्केन्द्रगताः सौम्याः पापा द्वादशषष्ठगताः ।

स राजा विश्वविख्यातो ध्वजच्छत्रविभूषितः ॥५९॥

यदि शुभग्रह चारों केन्द्रों में हों और पापग्रह बारहवें तथा छठवें हों तो वह संसार में विख्यात, ध्वज और छत्र से शोभित राजा होता है ॥ ५९ ॥

लग्नादष्टमो भौमस्त्रिकोणे जीवगो रविः ।

धार्मिको जायते राजा बलवानपि जायते ॥६०॥

जिसके जन्मलग्न से अष्टम मंगल हों और त्रिकोण में बृहस्पति तथा सूर्य स्थित हों तो वह धर्मात्मा और बलवान् राजा होवे ॥ ६० ॥

कारकयोगः—

एकादशे यदा सर्वे ग्रहाः स्युर्दशमेऽपि वा ।

द्विलगने सम्मुखे वापि कारकाः परिकीर्तिताः ॥६१॥

उत्पन्नः कारके योगे नीचोऽपि नृपतां व्रजेत् ।

राजवंशसमुत्पन्नो राजा तत्र न संशयः ॥६२॥

जिसके सम्पूर्ण ग्रह ग्यारहवें या दशवें अथवा लग्न में हो तो कारक योग होता है। इस योग में उत्पन्न नीच कुल का भी मनुष्य राजा होता है और राजा के वंश में उत्पन्न हुए बालक के राजा होने में तो कोई सन्देह नहीं है ॥ ६१-६२ ॥

छत्रयोगः--

धने व्यये तथा लग्ने सप्तमे च यदा ग्रहाः ।

छत्रयोगस्तदा ज्ञेयः स्ववंशे नायको भवेत् ॥६३॥

दूसरे, बारहवें, लग्न तथा सातवें भाव में सम्पूर्ण ग्रह हो तो छत्रयोग होता है । इस योग में उत्पन्न मनुष्य अपने वंश में नायक होता है ॥६३॥

हंसयोगः

त्रिकोणे सप्तमे लग्ने भवन्ति च यदा ग्रहाः ।

हंसयोगं विजानीयात् स्ववंशस्याऽत्र पालकः ॥६४॥

यदि सब ग्रह त्रिकोण (६।५), सप्तम, लग्न में हों तो हंसयोग होता है । इस योग में जायमान मनुष्य अपने वंश का पालन करता है । ६४॥

ध्वजयोगः

अष्टमस्था यदा क्रूराः सौम्या लग्ने स्थिता ग्रहाः ।

ध्वजयोगेऽत्र यो जातः स पुमान्नायको भवेत् ॥६५॥

यदि पापग्रह आठवें और शुभग्रह लग्न में हो तो ध्वजयोग होता है, इस योग में उत्पन्न मनुष्य श्रेष्ठ होता है ॥ ६५ ॥

चतुःसागरयोगः--

चतुर्षु केन्द्रस्थानेषु सौम्यपापग्रहस्थितिः ।

चतुःसागरयोगोऽयं राज्यदो धनदो भवेत् ॥६६॥

जिसके चारों केन्द्र स्थानों में शुभग्रह और पापग्रह दोनों प्रकार के ग्रह हों तो चतुःसागरयोग होता है, यह योग राज्य तथा धन देने वाला होता है ॥ ६६ ॥

सिंहासनयोगः--

षष्ठेऽष्टमे द्वादशे च द्वितीये च यदा ग्रहाः ।

सिंहासनाख्ययोगेऽस्मिन् राजा सिंहासने वसेत् ॥६७॥

यदि सम्पूर्ण ग्रह छठें, आठवें, बारहवें और दूसरे स्थानों में ही पड़े हों तो सिंहासन योग होता है । इस योग में उत्पन्न हुआ मनुष्य सिंहासन पर बैठता है ॥ ६७ ॥

चक्रवर्तियोग --

नीचस्थितो जन्मनि यो ग्रहः स्यात् तद्राशिनाथश्च तदुच्चनाथः ।

भवेत्त्रिकोणे यदि केन्द्रवर्ती राजा भवेद्दार्मिकचक्रवर्ती ॥६८॥

जिसके जन्म लग्न में जो नीच राशि वा ग्रह हो (उस नीच राशि का स्वामी) अपनी उच्च राशि का होकर यदि त्रिकोण (६।५) अथवा केन्द्र (१।४।७।१०) स्थान में स्थित हो तो वह घामिक और चक्रवर्ती राजा होता है ॥६८॥

धनयोगः--

कन्यायां च यदा राहुः शुक्रो भौमः शनिस्तथा ।

तत्र जातस्य जायेत कुबेरादधिकं धनम् ॥६९॥

यदि राहु शुक्र, मंगल और शनि कन्या में हों तो वह कुबेर से भी अधिक धनी होवे ॥६९॥

चन्द्रेण मङ्गलो युक्तो जन्मकाले यदा भवेत् ।

तस्य जातस्य गेहं तु लक्ष्मीर्नैव विमुञ्चति ॥७०॥

जिसके जन्मकाल में चन्द्रमा से युक्त मंगल हो उस बालक के घर को लक्ष्मी नहीं छोड़े ॥७०॥

एकावलीयोगः--

लग्नतश्चान्यतो वापि क्रमेण पतिता ग्रहाः ।

एकावली समाख्याता महाराजो भवेन्नरः ॥७१॥

लग्न में वा अन्य किसी स्थान में क्रम से ग्रह पड़े हों तो एकावली योग होता है, इसमें उत्पन्न हुआ मनुष्य महाराज होता है ॥७१॥

कुलदीपकयोगः--

पञ्चमे च यदा षष्ठे चाष्टमे न मे क्रमात् ।

भौमराहुसितार्काः स्युर्जातोऽत्र कुलदीपकः ॥७२॥

जिसके पाँचवें मंगल, छठें राहु, आठवें शुक्र और नवें सूर्य हो तो इस योग में उत्पन्न मनुष्य कुलदीपक होता है ॥७२॥

भ्रातृस्थाने यदा जीवो लाभस्थाने यदा शनिः ।

स लोके गृहमध्यस्थो जायते कुलदीपकः ॥७३॥

जिसके बृहस्पति तीसरे और शनि ग्यारहवें हों तो वह बालक घर में रहता हुआ कुलदीपक होवे ॥७३॥

सिंहलग्ने यदा भौमः पञ्चमे च निशाकरः ।

व्ययस्थाने यदा राहुः स जातः कुलदीपकः ॥७४॥

जिसके मङ्गल सिंह राशि में और चन्द्रमा पाँचवें और राहु बारहवें घर में स्थित हों तो वह बालक कुल में दीपक के समान हो ॥७४॥

एकः पापो यदा लगने पापश्चैको रसातले ।

जायते च द्विनालाभ्यां स जातः कुलदीपकः ॥७५॥

जिसके एक पापग्रह लगन में और एक पापग्रह चौथे हों तो वह बालक दो नाल से जायमान होकर कुल का दीपक हो ॥७५॥

विख्यातपुत्रयोगः--

लगने वा सप्तमे भौमः पञ्चमे च दिवाकरः ।

जीवेदरण्यमध्येऽपि विख्यातः स न संशयः ॥७६॥

मङ्गल जिसके लगन में अथवा सातवें हों और सूर्य पाँचवें हों तो बालक वन में भी जीवित रहे और उसके विख्यात होने में कोई सन्देह न रहे ॥७६॥

विद्वान्योगः--

लग्नात् पञ्चमस्थाने यदा सूर्यबृहस्पती ।

तदा विद्याधनैः पूर्णो जायते जातकोत्तमः ॥७७॥

यदि लगन से पाँचवें स्थान में सूर्य और बृहस्पति हों तो उत्पन्न हुआ बालक विद्या तथा धन से पूर्ण और श्रेष्ठ होवे ॥७७॥

एकोऽपि यदि केन्द्रस्थः शुक्रो जीवोऽथवा बुधः ।

जायते च तदा वालो धनाढ्यो वेदपारगः ॥७८॥

जिसके शुक्र, बृहस्पति और बुध इन तीन ग्रहों में से यदि एक भी बलवान् होकर केन्द्र (१।४।७।१०) में हो तो वह धन से युक्त वेद में पारंगत होवे अर्थात् सम्पूर्ण वेद को पढ़े ॥७८॥

अन्ययोगाः--

पञ्चमस्थो यदा जीवो दशमस्थश्च चन्द्रमाः ।

स पूज्यश्च महाबुद्धिस्तपस्वी च जितेन्द्रियः ॥७९॥

जिसके गुरु पञ्चम भाव में और चन्द्रमा दशम भाव में स्थित हो, तो वह मनुष्य पूजनीय, महाबुद्धिमान्, यशस्वी और जितेन्द्रिय होता है ॥७९॥

बुधमार्गवजीवाकिंपुक्तो राहुश्चतुष्टये ।

कुर्वते श्रियमारोग्यं पुत्रं मानाधिकं फलम् ॥८०॥

यदि बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि इन चार ग्रहों के साथ राहु केन्द्र में हो तो लक्ष्मी, आरोग्य, पुत्र और सत्कार प्राप्त होता है ॥८०॥

मिहे जीवोऽथ कन्यायां मार्गो मिथुने शनिः ।

स्वक्षेत्रे हिवुके भौमः स पुमान्नायको भवेत् ॥८१॥

जिसके बृहस्पति सिंह राशि में, शुक्र कन्या राशि में, शनि मिथुन राशि में, मंगल मेष या वृश्चिक में होकर चौथे स्थान में हो तो वह मनुष्य नायक (श्रेष्ठ) हो ॥ ८१ ॥

शुक्रो जीवो रविर्भौमश्चापे मकरकुम्भयोः ।

मीने च वत्सरे त्रिंशो जातः स्यात् सर्वकर्मकृत् ॥८२॥

जिसके शुक्र धनु में, बृहस्पति मकर में सूर्य कुम्भ में, मंगल मीन में हों ऐसे योग में उत्पन्न मनुष्य ३० वर्ष में ही सम्पूर्ण कार्य को करने वाला होता है ॥ ८२ ॥

लग्ने शुक्रबुधौ न स्यात् केन्द्रे नास्ति बृहस्पतिः ।

दशमेऽङ्गारको नास्ति स जातः किं करिष्यति ? ॥ - ३॥

यदि शुक्र, बुध लग्न में न हों और बृहस्पति केन्द्र (११४।७।१०) में न हों, मंगल दशमें न हों तो वह उत्पन्न हुआ मनुष्य क्या करेगा ? (अर्थात् कुछ भी नहीं कर सकता) ॥ ८३ ॥

कर्मस्थाने निजक्षेत्रे भौमशुक्रबुधैर्युतः ।

यदि राहुर्भवेत्तस्य क्षयो वृद्धिः क्षयो क्षयः ॥८४॥

यदि दशमस्थान में स्वक्षेत्री राहु (कन्या राहु का क्षेत्र व मिथुन केतु का क्षेत्र होता है) मंगल, बुध व शुक्र से युक्त बैठा हो, तो उस कुण्डलीवाले की क्षण में वृद्धि तथा क्षण में ही क्षय होता है ॥ ८४ ॥

भिक्षुकयोगः—

द्वित्रिसौम्याः खगा नीचा व्ययभावेऽथवा पुनः ।

भवन्ति धनेनः षष्ठे निधनेऽन्ते च भिक्षुकाः ॥८५॥

जिसके शुभग्रह दूसरे तीसरे स्थान में हो और पापग्रह बारहवें हों, तो वह धनवान् होता है और यदि सम्पूर्ण ग्रह छठवें, आठवें, बारहवें इन्हीं भावों में स्थित हों तो जातक भिक्षुक (भिक्षा मांगने वाला) होवे ॥८५॥

अष्टमस्थो यदा भौमस्त्रिकोणे नीचगो रविः ।

स शीघ्रमेव जातः स्याद् भिक्षाजीवी च दुःखितः ॥८६॥

मंगल जिसके आठवें स्थान में हो और सूर्य अपनी नीच राशि (तुला) का होकर त्रिकोण (५।६) में हो तो वह बालक शीघ्र दुःखित होकर भिक्षा मांगकर अपनी जीविका करे ॥ ८६ ॥

अन्धयोगः—

सिंहलग्ने यदा शुक्रः शनिर्वापि व्यवस्थितः ।

तत्र जातस्य बालस्य नेत्रनाशो हि जायते ॥८७॥

यदि सिंह लग्न में जन्म हो और लग्न में ही शुक्र तथा शनि स्थित हों, तो उसमें पैदा हुए बालक का नेत्र नाश होवे ॥ ८७ ॥

सूर्योऽष्टमे रिपौ चन्द्रो धने भौमो व्यये शनिः ।

ग्रहदोषेण नेत्राणामन्धतां जनयन्त्यमी ॥८८॥

जिसके सूर्य आठवें, चन्द्रमा छठवें, मंगल दूसरे और शनि बारहवें स्थित हों, तो उसमें पैदा हुए बालक के नेत्रों का नाश करें ॥ ८८ ॥

काणयोगः—

होरायां द्वादशे राशौ स्थितो यदि दिवाकरः ।

करोति दक्षिणं काणं वामनेत्रं च चन्द्रमाः ॥८९॥

यदि सूर्य अपनी होरा में और बारहवीं राशि में स्थित हो तो दाहिने नेत्र को काना करे और यदि चन्द्रमा हो तो वाम नेत्र का विनाश करे ॥ ८९ ॥

कुच्छ्रजीवनयोगः—

लग्ने क्रूरः स्वभवने क्रूरः पातालगो यदि ।

दशमे भवने क्रूरः कष्टं जीवति बालकः ॥९०॥

जिसके क्रूरग्रह (पापग्रह) अपनी राशि का होकर लग्न में स्थित हो और क्रूरग्रह चौथे तथा दशवें स्थान में भी स्थित हो तो वह बालक कष्ट से जीवे ॥ ९० ॥

भातृहीनयोगः—

नवमे च यदा सूर्यः स्वगृहस्थो भवेद्यदा ।

तस्य जीवति न भ्राता स्यादेकोऽपि नृपैः समः ॥९१॥

जिसके नवें स्थान में सिंह राशि के सूर्य हों तो उसके भाई नहीं जीते और वह एक ही अनेक राजाओं के समान होता है ॥ ९१ ॥

धनस्थाने यदा भौमः शनैश्चरसमन्वितः ।

सहजे च भवेद्राहुर्घाता तस्य न जीवति ॥६२॥

यदि शनि युक्त मंगल दूसरे स्थान में हो और तीसरे राहु हो तो उसके भाई नहीं होता है ॥ ६२ ॥

पितृकष्टयोगः—

सप्तमे भवने मानुः कर्मस्थो भूमिनन्दनः ।

गह्वर्यये च तस्यैव पिता कष्टेन जीवति ॥६३॥

जिसके सूर्य सातवें स्थान में, मंगल दशवें स्थान में और राहु बारहवें हो तो उस बालक का पिता कष्ट से जीवे ॥ ६३ ॥

मातृपितृमृत्युयोगः—

पाताले चाम्बरे पापो द्वादशे च यदा स्थितः ।

पितरं मातरं हन्ति देशद् देशान्तरं व्रजेत् ॥६४॥

यदि पापग्रह चौथे, दशवें तथा बारहवें हो तो अपने पिता और माता का नाश करे और वह मनुष्य एक देश से दूसरे देश में जाता है ॥ ६४ ॥

पितृहन्तायोगः—

रिपुस्थाने यदा चन्द्रो लग्नस्थाने शनैश्चरः ।

कुत्रश्च सप्तमस्थाने पिता तस्य न जीवति ॥६५॥

यदि चन्द्रमा छठवें घर में हो, शनि लग्न में हो और मंगल सातवें घर में हों, तो उस बालक का पिता नहीं जीता ॥ ६५ ॥

राहुजीवौ रिपुक्षेत्रे लग्ने वाऽथ चतुर्थगौ ।

त्रयोविंशे तदा वर्षे पुत्रस्तातं विनाशयेत् ॥६६॥

जिसके राहु और बृहस्पति छठवें या लग्न में अथवा चौथे स्थान में बैठे हों तो वह बालक तेईसवें वर्ष में अपने पिता का नाश करे । अर्थात् २३ वर्ष का वह बालक हो तब उसके पिता की मृत्यु हो ॥ ६६ ॥

सूर्यः पापेन संयुक्तस्तदा पितृवधो भवेत् ।

लग्ने पापेन संयुक्तं लग्नं वा पापमध्यगम् ॥६७॥

यदि सूर्य पापग्रहों से युक्त हो और लग्न पापग्रहों के मध्य में हो तो पिता का नाश करे ॥ ६७ ॥

दशमस्थो यदा भौमः शत्रुक्षेत्रे स्थितस्तदा ।

त्रियते तस्य बालस्य पिता शीघ्रं न संशयः ॥६८॥

जिसके शत्रु क्षेत्र में होकर मङ्गल दशम स्थान में हों तो निःसन्देह उस बालक का पिता शीघ्र मरे ॥ ६८ ॥

मातृहन्तायोगः—

लग्नस्थाने यदा जीवो धनस्थाने शनैश्वरः ।

राहुश्च सहजस्थाने माता तस्य न जीवति ॥६९॥

यदि बृहस्पति लग्न में हो तथा शनि दूसरे घर में हो और राहु तीसरे घर में हो तो उस बालक की माता नहीं जीती ॥ ६९ ॥

सिंहे भौमस्तुले सौरिः कन्यायां च यदा सितः ।

मिथुने च यदा राहुर्जननी तस्य नश्यति ॥१००॥

जिसके मंगल सिंह राशि में, शनि तुलाराशि में, शुक्र कन्या राशि में और राहु मिथुन राशि में हो तो उस बालक की माता मर जाय ॥१००॥

चन्द्रः पापग्रहैर्युक्तश्चन्द्रो वा पापमध्यगः ।

चन्द्रात्सप्तमगः पापस्तदा मातृवधो भवेत् ॥१०१॥

यदि चन्द्रमा पापग्रहों से युक्त अथवा पापग्रहों के मध्य में हों वा चन्द्रमा से सातवें पापग्रह हो तो बालक की माता का नाश हो ॥१०१॥

भार्याहीनयोगः—

पृष्ठे च भवने भौमः सप्तमे सिंहिकासुत ।

अष्टमे च यदा सौरिर्भार्या तस्य न जीवति ॥१०२॥

जिसके मंगल छठवें स्थान में, राहु सातवें और शनि आठवें हो तो उसकी स्त्री नहीं जीवे ॥ १०२ ॥

परजातयोगाः—

धनस्थाने यदाः क्रूरः सहजे सप्तमे तथा ।

पञ्चमे भवने जीवो नीचजातस्तदा भवेत् ॥१०३॥

यदि पापग्रह दूसरे हो, बृहस्पति पांचवें, तीसरे या सातवें हो तो वह बालक नीच से उत्पन्न हुआ है, यह जाने ॥ १०३ ॥

तिथ्यन्ते च दिनान्ते च लग्नस्यान्ते तथैव च ।

चरराशौ यदा जातः सोऽन्यजातः शिशुर्भवेत् ॥१०४॥

जिसका जन्म तिथि के अन्त में, दिन के अन्त में, लग्न के अन्त में और चरराशि में हो तो उसने दूसरे से जन्म पाया है ऐसा जाने ॥ १०४ ॥

पितृपरोक्षे जन्मयोगः—

न पश्यति शशी लग्नं मध्ये वा सौम्यशुक्रयोः ।

ताते परोक्षे जन्मास्य भौमेऽस्ते वा यमे तनौ ॥१०५॥

यदि चन्द्रमा, बुध तथा शुक्र के बीच में होकर लग्न को न देखता हो और मंगल सातवें अथवा लग्न में हो तो उस बालक का जन्म पिता के परोक्ष में जाने ॥ १०५ ॥

जातकस्य मृत्युयोगाः—

चतुर्थे च यदा राहुः षष्ठे चन्द्रोऽष्टमेऽपि वा ।

सद्य एव भवेन्मृत्युः शङ्करो यदि रक्षति ॥१०६॥

यदि राहु चौथे स्थान में हो और चन्द्रमा छठवें या आठवें हो तो महादेव जी भी रक्षा करें तो भी वह तुरन्त मरता है ॥ १०६ ॥

लग्ने धने व्यये क्रूरो यदा मृत्यौ च जायते ।

विष्टया मार्गबन्धोऽस्य द्वादशाऽऽष्टमशतरे ॥१०७॥

जिसके पापग्रह लग्न में, दूसरे, बारहवें और आठवें होवें उसकी गुदा से मल न जाने से आठवें या बारहवें दिन मृत्यु होती है ॥ १०७ ॥

बालस्य जन्मकाले चेदष्टमस्थः शनैश्चरः ।

पापदृष्टो नाशकः स्यादन्यथा क्लेशदायकः ॥१०८॥

यदि बालक के जन्मलग्न से अष्टम शनि हो और पापग्रह उन्हें देखते हों तो बालक की मृत्यु होवे । यदि पापग्रह से अष्टम शनि देखा नहीं जाता हो तो क्लेश होता है ॥ १०८ ॥

क्षीणचन्द्रो यदा लग्ने पापाश्चाऽष्टमकेन्द्रगाः ।

स्मरे लग्नपतिः पापयुक्तो नश्येत्तदा शिशुः ॥१०९॥

जिस बालक के लग्न में क्षीण चन्द्रमा हो और पापग्रह से युक्त लग्नेश सातवें स्थान में हों तो वह बालक मरे । पाप युक्त लग्नेश सातवें स्थान में हो तो भी वह बालक मरे ॥ १०९ ॥

दशमस्थो दिवानाथः पापैर्बहुभिरीक्षितः ।

मेपवृश्चिकर्कस्य सद्यो मृत्युप्रदो भवेत् ॥११०॥

जिसके सूर्य, मेष, वृश्चिक अथवा कर्कराशि का होकर दशम स्थान में स्थित हो और बहुत से पापग्रहों से देखा जाता हो, तो वह तुरन्त मरे ॥ ११० ॥

त्रिकोणकेन्द्रगाः पापाः शुभा रन्ध्रव्यथारिगाः ।

सूर्योदये प्रसूतस्य हरन्ति खलु जीवनम् ॥१११॥

जिसके पापग्रह त्रिकोण (५।६) में और केन्द्र (१।४।७।१०) में हों तथा शुभग्रह आठवें, बारहवें हो और सूर्य के उदय में जन्म हो तो मृत्यु को प्राप्त होवे ॥ १११ ॥

सहजे सहजाधीशो लग्ने पुत्रे धनेऽपि वा ।

जायते च तदा बालो यदि जातो न जीवति ॥११२॥

तृतीयेच तीसरे, लग्न में, पांचवें अथवा दूसरे में हो, ऐसे योग में बालक उत्पन्न हो तो नहीं जीवे ॥ ११२ ॥

षष्ठाऽष्टमगश्चन्द्रः सद्यो मरणाय पपसंदृष्टः ।

अष्टमि शुभसदृष्टैर्वर्षैर्भिश्चैस्तदर्द्धेन ॥११३॥

जिसके चन्द्रमा छठवें, आठवें होवे और पापग्रह उसको देखते हों तो उस बालक की शीघ्र मृत्यु होवे और अष्टमस्थ चन्द्रमा शुभ ग्रहों से देखा जाता हो तो एक वर्ष में मरे, शुभग्रह, पापग्रह दोनों से देखा जाता हो तो छः मास में मृत्यु हो ॥ ११३ ॥

परिहारः—

शुक्लपक्षे निशायां च कृष्णजातो दिवा तदा ।

षष्ठाऽष्टमगश्चन्द्रो न शिशुं हन्ति तातवत् ॥११४॥

यदि शुक्लपक्ष में रात्रि को जन्म हो और कृष्णपक्ष में दिन को जन्म हो और चन्द्रमा छठवें और आठवें हो तो बालक को नहीं मारे । पिता के समान रक्षा करे ॥ ११४ ॥

लग्ने त्रिकोण-द्युने च व्यये पापयुतः शशी ।

शिशुं हन्ति न दृष्टश्चेद् बलवद्भिः शुभग्रहैः ॥११५॥

यदि चन्द्रमा पापग्रह से युक्त होकर लग्न में, त्रिकोण (५।६) में, सातवें, बारहवें इन स्थानों में से किसी स्थान में स्थित हो और बलवान् शुभ ग्रह से न देखा जाता हो, तो बालक का नाश करे ॥ ११५ ॥

सप्तमे चतुरस्रे च पापग्रहान्तरे स्थितः ।

करोति चन्द्रमा नाशं बालकस्य न संशयः ॥११६॥

जिसके चन्द्रमा दो पापग्रहों के अन्तर में स्थित होकर लग्न से चौथे, सातवें स्थित हो तो निःसन्देह उस बालक का नाश करे ॥ ११६ ॥

क्षीणचन्द्रो यदा लग्ने पापः केन्द्रेषु संस्थितः ।

अष्टमे भवने वाऽपि तदा मृत्युः शिशोर्भवेत् ॥११७॥

जिसके क्षीण चन्द्रमा लग्न में हो तथा पापग्रह केन्द्र (१४।७।१०) में या आठवें हो तो बालक की मृत्यु हो ॥ ११७ ॥

लग्नस्थश्च यदा भानुः पञ्चमस्थो निशाकरः ।

अष्टमस्था यदा पापस्तदा जतो न जीवति ॥११८॥

जिसके सूर्य लग्न में, चन्द्रमा पञ्चम में, और पापग्रह अष्टम स्थान में हों तो वह बालक नहीं जीवे ॥ ११८ ॥

त्रिकोणकेन्द्रगाः पापाः सौम्याः षष्ठ्ययाऽष्टगाः ।

सूर्योऽये संप्रसूतः प्राणांस्त्यजति बालकः ॥११९॥

जिसके पापग्रह त्रिकोण (५।६) तथा केन्द्र (१४।७।१०) में हो और शुभग्रह छठवें हों, बारहवें हों और सूर्य के उदयकाल में पैदा हुआ बालक प्राण को त्यागता है ॥ ११९ ॥

लग्ने षष्ठेऽष्टमे घूने शनियुक्तो यदा कुजः ।

शुभग्रहैरदृष्टश्च शिशुं हन्ति न संशयः ॥१२०॥

जिसके लग्न में तथा छठवें, सातवें यदि शनि से युक्त मंगल स्थित हो और शुभग्रहों से न देखा जाता हो तो निःसन्देह उस लड़के का नाश हो ॥ १२० ॥

उदितो यत्र नक्षत्रे केतुर्यस्तत्र जायते ।

रौद्रे मुहूर्ते सोऽप्येव स च प्राणैर्वियुज्यते ॥१२१॥

केतु का उदय जिस नक्षत्र में हो वह रौद्र मुहूर्त कहा जाता है । इस मुहूर्त में जिस बालक का जन्म हो, वह प्राण से रहित होता है ॥ १२१ ॥

वर्षमध्ये मरणयोगाः---

अष्टमस्थो निशानाथः केन्द्रे पापेन संयुतः ।

चतुर्थे च यदा राहुवर्षमेकं स जीवति ॥१२२॥

यदि चन्द्रमा आठवें घर में हो और पापग्रह केन्द्र में हों तथा राहु चौथे स्थान में हो तो वह बालक एक वर्ष जीता है ॥ १२२ ॥

एकः पापोऽष्टमस्थोऽपि शत्रुक्षेत्रे यदा भवेत् ।

पापेन वीक्षितो वर्षान्मास्यत्येव बालकम् ॥१२३॥

यदि एक पापग्रह अपने शत्रु के स्थान में होकर अष्टम स्थान में स्थित होवे और उसको पापग्रह देखते हों तो बालक को एक ही वर्ष में मार डाले ॥ १२३ ॥

भौषपास्करमन्दाश्च शत्रुक्षेत्रेऽष्टमे यदा ।

यमेन रक्षितोऽप्येवं वर्षमात्रं न जीवति ॥१२४॥

जिस बालक के मङ्गल, सूर्य, शनि शत्रु के घर में स्थित होकर अष्टम स्थान में स्थित होवे तो यम रक्षा करता हो तो भी वह एक वर्ष न जीवे ॥ १२४ ॥

शनिराहुकुजैर्युक्तः सप्तमे भवने शशी ।

सप्तमे दिवसे हन्ति मासे वा सप्तमे शिशुम् ॥१२५॥

जिसके सातवें चन्द्रमा, शनि राहु मंगल से युक्त होकर स्थित हो तो उस बालक की सातवें दिन अथवा सातवें मास में मृत्यु होवे ॥ १२५ ॥

जन्मलग्नपतिः षष्ठे व्यये मृत्यो च तिष्ठति ।

अस्तंगतो मृत्युकरो राशितुल्यैश्च वत्सरैः ॥१२६॥

यदि जन्मलग्न का स्वामी छठवें, बारहवें या आठवें स्थान में स्थित हो तो राशि के समान वर्षों में मृत्यु करे ॥ १२६ ॥

सौम्याः षष्ठेऽष्टमे पापैर्वकीभूतैर्विलोकिताः ।

शभैरदृष्टा मासेन मारयन्त्येव बालकम् ॥१२७॥

जिसके शुभग्रह छठें तथा आठवें हों और बकी पापग्रहों से देखे जाते हों तथा शुभग्रह न देखते हों तो एक ही महीने में बालक को मारे ॥ १२७ ॥

अष्टमस्थो यदा राहुः केन्द्रस्थाने च चन्द्रमाः ।

सद्य एव भवेन्मृत्युर्बालकस्य न संशयः ॥१२८॥

जिसके राहु आठवें हों और चन्द्रमा केन्द्र (१४।७।१०) में हो तो निःसन्देह उस बालक की शीघ्र मृत्यु होवे ॥ १२८ ॥

द्वादशस्थो यदा चन्द्रः पापः स्यादष्टमे गृहे ।

एकमासे भवेन्मृत्युस्तस्य बालस्य निश्चितम् ॥१२६॥

जिसके बारहवें चन्द्रमा हो और पापग्रह आठवें हो तो निश्चय उस बालक की एक महीने में मृत्यु होवे ॥ १२६ ॥

लग्नेऽष्टमे यदा राहुश्चन्द्रयुक्तो हि तिष्ठति ।

द्वादशाहे भवेत् तस्य बालकस्य मरणं ध्रुवम् ॥१३०॥

जिसके चन्द्रमा से युक्त राहु लग्न में या आठवें घर का हो तो उस बालक की निश्चय १० दिन में मृत्यु होवे ॥ १३० ॥

लग्नाच्च नवमे सूर्ये सूर्यपुत्रे तथाऽष्टमे ।

एकादशे भार्गवे च मासमेकं न जीवति ॥१३१॥

जिसके सूर्य लग्न से नवें और शनि आठवें तथा शुक्र ग्यारहवें हों तो वह बालक एक महीना भी न जीवे ॥ १३१ ॥

लग्ने शनिः पापदृष्टो हन्ति षोडशवासरैः ।

पापयुक्तश्च मासेन शुद्धो वर्षेण बालकम् ॥१३२॥

यदि शनि लग्न में हो और पापग्रह से देखा जाता हो तो सोलह दिन के भीतर ही बालक का नाश करता है तथा पापग्रहों के साथ हो तो एक मास में और शुद्ध याने शुभग्रह से युक्त हो तो वह एक वर्ष में बालक का नाश करे ॥ १३२ ॥

परिहारः--

स्वगेहे गुरुगेहे वा तुलालगने शनिः स्थितः ।

सूर्यमङ्गलमध्ये वा नायुर्हन्ति कदाचन ॥१३३॥

यदि शनि अपनी राशि में अथवा बृहस्पति के गृह में वा तुला लग्न में स्थित हो अथवा सूर्य मंगल के मध्य में हो तो आयु का नाश न करे ॥ १३३ ॥

वर्षद्वयमायुः--

वकी शनिभौमगेहे केन्द्रे षष्ठेऽष्टमेऽपि वा ।

कुजेन बलिना दृष्टो हन्ति वर्षद्वये शिशुम् ॥१३४॥

जिसके वकी शनि मंगल के घर (मेष, वृश्चिक) का होकर केन्द्र (१।४।७।१०) का छठवें अथवा आठवें हों, तो वह शनि दो वर्ष में बालक को मारे ॥ १३४ ॥

वर्षत्रयमायुः---

दृष्टः सूर्येन्दुमन्दारैर्न दृष्टो भृगुणा गुरुः ।

वर्षैस्त्रिभिः शिशुं हन्ति भौमगेहेऽष्टमे स्थितः ॥१३५॥

यदि सूर्य, चन्द्रमा, शनि तथा मंगल से बृहस्पति देखे जाते हों और शुक्र की दृष्टि न हो और भौम की राशि में स्थित होकर आठवें स्थान में हों तो बृहस्पति तीन वर्ष में बालक का नाश करे ॥ १३५ ॥

चतुर्थवर्षे मरणम्---

क्रूरैर्दृष्टो जन्मलग्नात् षष्ठे वाऽप्यष्टमे बुधः ।

चतुर्वर्षे भवेन्मृत्युः शङ्करो यदि रक्षति ॥१३६॥

यदि जन्मलग्न से बुध छठवें अथवा आठवें स्थान में स्थित हो और पापग्रहों से देखा जाता हो तो महादेवजी उस बालक की रक्षा करते रहें तो भी चौथे वर्ष में मरे ॥ १३६ ॥

पष्ठाऽष्टमे कर्कराशौ चन्द्रदृष्टो भवेद् बुधः ।

चतुर्भिर्वत्सरैर्वालं मारयत्येव निश्चितम् । १३७॥

जिसके बुध कर्कराशि में होकर छठवें या आठवें हों और चन्द्रमा से देखे जाते हों तो निश्चय चार वर्ष में बालक को मारते हैं ॥ १३७ ॥

षष्ठेऽष्टमे च मूर्तो च शनिक्षत्रे यदा बुधः ।

पापाक्रान्तश्चतुर्वर्षे मारयत्येव बालकम् ॥१३८॥

यदि शनि के क्षेत्र का होकर बुध छठे या आठवें अथवा लग्न में हो और पापग्रहों से युक्त हो तो उस बालक को चौथे वर्ष में मारता है ॥१३८॥

षड्वर्षे मृत्युः---

कर्के सिंहेऽष्टमे षष्ठे व्यये च भृगुनन्दनः ।

सर्वैर्दृष्टो शुभैर्वालं षड्भिर्वर्षैर्विनाशयेत् ॥१३९॥

यदि शुक्र कर्क अथवा सिंह राशि में होकर छठवें, आठवें, बारहवें इन स्थानों में-से किसी स्थान में स्थित हो और शुभग्रहों की दृष्टि हो तो छः वर्ष में बालक का नाश करे ॥ १३९ ॥

सप्तमे वर्षे मृत्युः---

लग्नात् सप्तमगः पापस्तदा चात्मबधो भवेत् ।

अपकर्मा तदा जातः सप्तवर्षाणि जीवति ॥१४०॥

यदि पापग्रह सातवें हो तो स्वयं सात वर्ष जीवे और कुकर्म करके अपनी आत्मा का वध करे ॥ १४० ॥

दशमे, द्वादशे, षोडशब्दे वा मृत्युः—

भौमक्षेत्रे यदा जीवो जीवक्षेत्रे च मूसुतः ।

द्वादशे वत्सरे मृत्युर्बालकस्य न संशयः ॥१४१॥

यदि मंगल के गृह में बृहस्पति हो और बृहस्पति के गृह में मंगल हो तो वह बालक बारहवें वर्ष में मरे इसमें संशय नहीं है ॥ १४१ ॥

केन्द्रे राहुः पापदृष्टो दशभिर्हन्ति वत्सरैः ।

बालं द्वादशभिः कश्चित् कश्चित् षोडशभिर्वदेत् ॥१४२॥

यदि राहु केन्द्र में हो और पापग्रहों से देखा जाता हो तो दश वर्ष में बालक का नाश करे । किसी आचार्य के मत से १२ वर्ष में, किसी के मत से १६ वर्ष में नाश करते हैं ॥ १४२ ॥

शनिक्षेत्रे यदा भानुर्भानुक्षेत्रे यदा शनिः ।

द्वादशे वत्सरे मृत्युस्तस्थ जातस्य जायते ॥१४३॥

जिसके सूर्य, शनि के घर में तथा शनि सूर्य के गृह में हो तो १२ वर्ष में उस बालक की मृत्यु होवे ॥ १४३ ॥

सप्तमे भवने राहुः शत्रुक्षेत्रे यदा भवेत् ।

प्राप्ते च षोडशे वर्षे तस्य मृत्युर्न संशयः ॥१४४॥

जिसके राहु शत्रु के घर का होकर सातवें हो तो १६ वर्ष में उस बालक की मृत्यु होवे, इसमें सन्देह नहीं है ॥ १४४ ॥

राजदोषेण मृत्युः—

षष्ठाऽष्टमे यदा चन्द्रो बुधयुक्तस्तु तिष्ठति ।

विषदोषेण हि तस्य तदा मृत्युश्च जायते ॥१४५॥

जिसके चन्द्रमा बुध से युक्त होकर छठवें, आठवें हो तो विष से उस बालक की मृत्यु होवे ॥ १४५ ॥

राजदोषेण मृत्युः—

भानुना संयुतश्चन्द्रः षष्ठाऽष्टमगतो यदा ।

राजदोषेण मृत्युर्वा मिहदोषेण वा भवेत् ॥१४६॥

यदि चन्द्रमा सूर्य से युक्त छठें, आठवें स्थान में हो, तो उस बालक की राजा से या सिंह से मृत्यु होवे ॥ १४६ ॥

कष्टयोगाः--

स्मरे व्यये च सहजे मध्ये क्रूरा यदा ग्रहाः ।

तदा जातस्य बालस्य शरीरे कष्टमादिशेत् ॥१४७॥

जिसके क्रूर (पाप) ग्रह सातवें, बारहवें, तीसरे तथा दसवें स्थान में हों तो उस बालक के शरीर को कष्ट होवे ॥ १४७ ॥

क्रूरलग्ने यदा जातस्तत्स्वामी क्रूरवेष्टितः ।

आमवातो भवेत्तस्य शरीरे कष्टमादिशेत् ॥१४८॥

जिसके क्रूर (पाप) ग्रह लग्न में हों और लग्न का स्वामी क्रूर ग्रहों से युक्त हो तो उसको आमवात रोग होवे ॥ १४८ ॥

एकोऽपि यदि मूर्तौ स्याज्जन्मप्रकाले दिवाकरः ।

स्थानहीनो भवेद् बालः शोकमन्तापपीडितः ॥१४९॥

जिसके लग्न में एक सूर्य ही हो तो बालक स्थान से रहित होकर शोक और सन्ताप से पीडित रहे ॥ १४९ ॥

अरिष्टभङ्गयोगाः--

बली सौम्यग्रहो लग्ने केन्द्रस्थो यदि वीक्षति ।

तदा निहन्त्यरिष्टानि तमः सूर्योदये यथा ॥१५०॥

यदि शुभग्रह बली केन्द्र में स्थित होकर लग्न को देखते हों, तो वे अरिष्टों का नाश उसी प्रकार करते हैं, जैसे सूर्योदय से अन्धकार का नाश होता है ॥ १५० ॥

मेषे वृषे च कर्के च सर्वापद्रव्यो हि रक्षति ।

सिंहिकातनयो बालं प्रियं पुत्रं यथः पिता ॥१५१॥

यदि राहु, मेष, वृष, कर्क इन राशियों में हो तो सब आपत्तियों से रक्षा करे। जैसे पिता अपने प्रिय बालक की रक्षा करता है ॥ १५१ ॥

शनैश्चरस्तुलाकुम्भे मकरे यदि जायते ।

लग्नेऽष्टमे तृतीये वा तदाऽरिष्टं न जायते ॥१५२॥

यदि शनि तुला, कुम्भ या मकर में होकर लग्न, आठवें या तीसरे हों तो अरिष्ट नहीं होता है ॥ १५२ ॥

षष्ठे तृतीये लाभे च स्थितः सम्पत्तिकारकः ।

राहुः सर्वापदां हन्ता स्वगृहे च विशेषतः ॥१५३॥

यदि राहु छठें, तीसरे या ग्यारहवें हों तो सम्पत्ति देने वाला और सम्पूर्ण आपदाओं से रक्षा करनेवाला होता है और यदि अपनी राशि का होकर उक्त स्थानों में राहु हो तो विशेष फल होता है ॥ १५३ ॥

कुलनाशकयोगः—

लग्ने क्रूरो धने सौम्यो यदा वै जातको भवेत् ।

सप्तमे भवने क्रूरः परिवारक्षयंकरः ॥१५४॥

लग्न में पापग्रह, धनभाव में शुभग्रह और सप्तम भाव में भी पापग्रह हों, तो वह मनुष्य अपने कुल का नाश करनेवाला होता है ॥ १५४ ॥

क्रूराश्चतुर्षु केन्द्रेषु तथा क्रूरो धनेऽपि वा ।

दाग्निद्रघयोगं जानीयात् स्ववंशस्य क्षयंकरः ॥१५५॥

यदि चारों केन्द्र और दूसरे स्थान में पापग्रह हों तो दरिद्र योग जाने । इस योग में उत्पन्न मनुष्य दरिद्र और अपने वंश का नाश करने वाला होता है ॥ १५५ ॥

नवमे दशमे चन्द्रः सप्तमे च यदा सितः ।

पापे पातालसंस्थे च वंशक्षयकरो नरः ॥१५६॥

जिसके चन्द्रमा नवें, दशवें हों, शुक्र सातवें हो और पापग्रह चौथे में स्थित हो तो वह बालक वंश का नाश करे ॥ १५६ ॥

स्वस्थयोगः—

कन्यामिथुनगो राहुः केन्द्रे षष्ठे व्यये यदा ।

त्रिकोणे च यदा जातो दाता भोक्ता निरामयः ॥१५७॥

यदि राहु कन्या या मिथुन राशि का होकर केन्द्र (१।४।७।१०) में वा छठें, बारहवें अथवा त्रिकोण (५।६) में स्थित हो, तो बालक दानी, भोगी और आरोग्य शरीर वाला होवे ॥ १५७ ॥

अल्पायुयोगः—

सप्तमे भवने भौमश्चाऽष्टमे मार्गवो यदा ।

नवमे भवने सूर्यः स्वल्पायुस्तस्य जायते ॥१५८॥

यदि मंगल सातवें और शुक्र आठवें हो तथा सूर्य नवें स्थान में हो तो उस बालक की थोड़ी आयु होती है ॥ १५८ ॥

दीर्घायुयोगः—

स्वक्षेत्रस्थो यदा जीवो बुधः सौरिः स्वराशिनः ।

अत्र जातस्य दीर्घायुः सम्यदश्च भवन्ति हि ॥१५९॥

जिसके बृहस्पति, बुध और शनैश्चर, अपनी राशि में हो तो वह मनुष्य दीर्घायु तथा सम्पत्तिवान् होता है ॥ १५६ ॥

राहौ वृषे त्रिभिर्दृष्टे केतु-दृष्टे चतुष्टये ।

दृष्टे च गुरुशुक्राभ्यां दीर्घकालं स जीवति ॥१६०॥

जिसके, वृषराशि का राहु तीन ग्रहों से देखा जाता हो, केतु चौथे में देखा जाता हो और बृहस्पति शुक्र से भी देखा जाता हो तो वह बालक बहुत काल तक जीवे ॥ १६० ॥

अंगहीनयोगाः—

अष्टमे च यदा सौरिर्जन्मस्थाने च चन्द्रमाः ।

मन्दाग्निदुरोगी च गात्रहीनश्च जायते ॥१६१॥

जिसके शनि आठवें हो और जन्मस्थान में चन्द्रमा हो तो वह बालक मन्दाग्निवाला हो और पेट का रोगी तथा बरीर से हीन होवे ॥ १६१ ॥

भार्गवेण युतश्चन्द्रः षष्ठ्यष्टमगतौ भवेत् ।

मन्दाग्निः कुक्षिरोगी च हीनाङ्गोऽपि च बालकः ॥१६२॥

जिसके चन्द्रमा शुक्र से युक्त होकर छठवें, आठवें हो तो वह बालक मन्दाग्नि वाला, कुक्षि रोगी और अङ्ग से हीन होवे ॥ १६२ ॥

परमायुयोगः—

पञ्चमस्थो निशानाथस्त्रिकोणे च बृहस्पतिः ।

दशमे च महीधनुः परमायुः स जीवति ॥१६३॥

यदि चन्द्रमा पांचवें घर में तथा बृहस्पति त्रिकोण (५।६) में और मंगल दशवें स्थान में हो तो परमायु होता है ॥ १६३ ॥

अपस्मारीयोगः—

जन्मस्थाने यदा राहुः षष्ठ्यस्थाने च चन्द्रमाः ।

अपस्मारी तदा बालो जायते नात्र संशयः ॥१६४॥

यदि राहु जन्मस्थान में, चन्द्रमा छठवें घर में हो तो उस बालक को निश्चय अपस्मार (मृगी) रोग होवे ॥ १६४ ॥

तस्करयोगः—

बुधभौमौ यदा लग्ने षष्ठे वा यदि तिष्ठतः ।

तस्करो घोरकर्मा च हस्तपादौ विनश्यतः ॥१६५॥

जिसके लग्न में बुध और मंगल हों या छठें हों तो वह बालक चोर तथा कुकर्मी हो, उसके हाथ-पैर नष्ट होवें ॥ १६५ ॥

म्लेक्षयोगः—

धने गुरुः सैहिकेयो भौमः शुक्रश्च सप्तमे ।

अष्टमे रविचन्द्रौ च म्लेच्छः स्याद्यौवने हि सः ॥१६६॥

जिसके बृहस्पति और राहु दूसरे स्थान में हों, मंगल शुक्र सातवें हों और सूर्य, चन्द्रमा आठवें हों तो वह बालक युवा होने पर म्लेच्छ (मुसलमान) हो जाय ॥ १६६ ॥

जन्मफलम्—

शुभं वर्गोत्तमे जन्म वैशिस्थाने च सद्ग्रहे ।

अशून्येषु च केन्द्रेषु कारकाख्यग्रहेषु च ॥१६७॥

सूर्ये केन्द्रे राजसेवी वैश्यवृत्तिर्निशाकरे ।

शस्त्रवृत्तिः कृजे शरे बुधे चाध्यापको भवेत् ॥१६८॥

स्वानुष्ठानरतो नित्यं दिव्यबुद्धिर्नरो गुणै ।

शुके विद्यार्थसम्पन्नो नीचसेवी शनैश्चरे ॥१६९॥

जिसका, वर्गोत्तम में जन्म हो और २ रे शुभग्रह हों तथा केन्द्र स्थान शून्य न हो अर्थात् केन्द्र में कारक ग्रह हों तो वह सूर्य केन्द्र में हो तो राजा का सेवक, चन्द्रमा केन्द्र में हो तो वैश्यवृत्ति (खरीदने-बेचने आदि का लाभ) करने वाला, मंगल केन्द्र में हो तो पराक्रमी, शस्त्रवृत्तिवाला, बुध केन्द्र में हों तो अध्यापक, बृहस्पति केन्द्र में हो तो नित्य अपने अनुष्ठानों में रत और श्रेष्ठ बुद्धिवाला हो, शुक्र केन्द्र में हो तो विद्या तथा द्रव्य से युक्त हो और शनि केन्द्र में हो तो नीच की सेवा करने वाला होवे ॥१६७-१६९ ॥

तृतीयभावफलम्—

लग्नात्तृतीयभवने यदि सोमसुते भवेत् ।

द्वौ पुत्रौ कन्यकास्तिस्रो जायन्ते नात्र संशयः ॥१७०॥

जिसके लग्न से तीसरे स्थान में बुध स्थित हो, उसके दो पुत्र, तीन कन्या होंगे । इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ १७० ॥

लग्नात्तृतीयभवने बली वाचस्पतिर्यदा ।

पञ्च पुत्रास्तदा तस्य जायन्ते मानवस्य वै ॥१७१॥

जिसके बलवान् बृहस्पति लग्न से तीसरे स्थान में, हों उसके पांच पुत्र उत्पन्न होंगे ॥ १७१ ॥

लग्नात्तृतीयभवने वली शुक्रो यदा भवेत् ।

कन्याद्वयं त्रयः पुत्राः जायन्ते मानवस्य वै ॥१७२॥

जिसके बलवान् शुक्र लग्न से तीसरे हो, उसके निश्चय ही दो कन्या, तीन पुत्र होंगे ॥ १७२ ॥

लग्नात्तृतीयभवने शनिचन्द्रौ यदा स्थितौ ।

श्यामवर्णस्तदा बालो भ्रातृहीनस्तु जायते ॥१७३॥

यदि लग्न से तीसरे शनि तथा चन्द्र हो तो वह बालक श्यामवर्ण वाला हो और भाई से हीन रहे ॥ १७३ ॥

लग्नात्तृतीयभवने राहुयुक्तो यदा शर्शा ।

भ्रातृहीनो भवेद् बालो लक्ष्मीवानपि जायते ॥ १७४॥

यदि राहु से युक्त चन्द्रमा लग्न से तीसरे भाव में स्थित हो तो वह भाई से हीन हो और लक्ष्मीवान् होवे अर्थात् धनी होवे और उसके कोई भाई न रहे ॥ १७४ ॥

पञ्चमभावफलम्—

लग्नात्तृतीयभवने पञ्चमे वा धरासुतः ।

म्रियते पुरुदुःखेन नारी वा पुरुषोऽपि वा ॥१७५॥

जिस पुरुष अथवा स्त्री के लग्न से तीसरे और पांचवें स्थान में मंगल स्थित हो तो वह पुत्र के कष्ट से मरे ॥ १७५ ॥

लग्नात्सप्तमगेहस्थो यदि शुक्रो वली भवेत् ।

कन्याद्वयं त्रयः पुत्राः धनवन्तो भवन्ति हि ॥१७६॥

जिसकी कुण्डली में बलवान् शुक्र लग्न से सप्तम स्थान में स्थित हो तो वह दो कन्या, तीन पुत्र और धन से युक्त रहे ॥ १७६ ॥

षष्ठभावफलम्—

षष्ठे क्रूरे नरो जातः पापशत्रुविमर्दकः ।

षष्ठे सौम्ये सदा रोगी षष्ठे चन्द्रस्तु मृत्युदः ॥१७७॥

यदि पापग्रह छठवें हों तो पाप तथा शत्रु का नाश होवे और शुभ ग्रह छठवें हो तो रोगी होवे, चन्द्रमा छठें हो तो मृत्यु होवे ॥ १७७ ॥

इति पुरुषराजयोगः ।

❀ अथ स्त्रीजातकाध्यायः ❀

अथाग्ने स्त्रीणां लक्षणानां कालनिर्णयः--

शुभाऽशुभं पूर्वजनैर्विपाकात्सीमन्तिनीनामपि तत्फलं हि ।

विवाहकालत्पगतः प्रवीणैरसम्भवात्तत्पतिषु प्रकल्प्यम् ॥१॥

अतीवसारं फलमङ्गनानामुदीरितं शौनक-नारदाद्यैः ।

व्यक्तं यथा लग्ननिशाकराभ्यां मया तथैव प्रतिपाद्यते तत् ॥२॥

जितने उक्तानुक्त लक्षण हैं, वे सभी पूर्व जन्म के किये कर्मों के फल के रूप होते हैं। स्त्रीजनों के लिए भी वैसा ही समझना। परन्तु विवाह-काल के पश्चात् उक्त फल यदि स्त्री में न दीखे तो उसके पति को वे सुखादि भोगफल प्राप्त होते हैं। इससे लग्न और चन्द्रमा से जो-जो फल स्त्रियों के होते हैं, उन्हें मैं भी उसी तरह से प्रतिपादित करता हूँ ॥१-२॥

अथ स्त्रीणां सौभाग्यादि-भावसंज्ञा—

सौभाग्यं सप्तमस्थाने शरीरं लग्नचन्द्रयोः ।

वैधव्यं निधनस्थाने पुत्रे पुत्रं विचिन्तयेत् ॥३॥

स्त्री के सौभाग्य का सप्तम घर से, लग्न तथा चन्द्रमा से स्त्री के शरीर का, लग्न से अष्टम घर से वैधव्य का और लग्न से पञ्चम भाव से स्त्री के पुत्र होने का विचार करना चाहिए ॥३॥

अथ सौभाग्यवती तथा च दुष्टायोगः—

सौम्याभ्यां प्रवरा शुभत्रययुते जाया भवेद् भूपतेः

सौम्यैकेन पतिप्रिया मदनमे दृष्टे युते जन्मनि ।

पापैकेन पुनर्विलोलनयना पापद्वयेनाधमा

पापानां त्रितयेन सा परकुलं हत्वा पतिं गच्छति ॥४॥

जिस स्त्री की कुण्डली में लग्न से सप्तम घर को दो शुभग्रह देखें या लग्न से सप्तम घर में बैठे हों तो वह स्त्री, स्त्रियों में उत्तम होती है। यदि तीन शुभग्रह सप्तम घर को देखते हों या बैठे हों तो वह स्त्री राजा की रानी होती है, और एक शुभग्रह सप्तम घर को देखता हो या बैठा हो तो वह स्त्री अपने पति की प्रिया होती है। इसी तरह जिस स्त्री के सप्तम घर को एक पापग्रह देखता हो या बैठा हो तो चञ्चल नेत्रों वाली, दो पापग्रह देखते हों तब अत्यन्त अधमा (पुंश्चली) और तीन पापग्रह जिसके सप्तम घर को देखते हों या बैठे हों तो वह स्त्री महादुष्ट, अपने पति को मारकर पर-पुरुष के साथ रमण करने वाली होती है ॥४॥

अथ रूपगुणयुक्तपतिव्रतायोगः—

यस्याः शशाङ्को जनिलग्नमे वा रामर्क्षे सा प्रकृतिस्थिता स्यात् ।

शुभेक्षितं रूपवती गुणज्ञा पतिप्रिया चारुविभूषणाढ्या ॥५॥

जिस स्त्री के लग्न में अथवा लग्न से तीसरे घर में चन्द्रमा हो वह स्त्री स्थिर स्वभाव वाली होती है । यदि चन्द्रमा को शुभग्रह देखते हों तब वह स्त्री रूपवती, बड़ी गुणज्ञा, पति की सेवा करने वाली और दिव्य आभूषणों से सम्पन्न होती है ॥५॥

अथ नराकारकुरूपायोगः—

यदाङ्गचन्द्रावसमे भवेतां सा स्त्री नराकारसमा कुरूपा ।

पापेक्षितौ पापयुतौ विशेषाद् गदातुरा रूपगुणैर्विहीना ॥६॥

जिस स्त्री का लग्न और चन्द्रमा विषम राशि के हों तो वह स्त्री कुरूपा और पुरुष के समान आकार वाली होती है और जो लग्न तथा चन्द्रमा को पापग्रह देखते हों तब वह स्त्री विशेषकर रोगों से युक्त और रूप तथा शुभगुणों से रहित होती है ॥६॥

अथ स्त्रीणां राजयोगः—

केन्द्रे च सौम्या यदि पृष्ठभाजः पापाः कलत्रे च मनुष्यराशौ ।

राज्ञी भवेत् स्त्री बहुकोषयुक्ता नित्यं प्रशान्ता च सपुत्रिणी च ॥७॥

जिस स्त्री के सब शुभग्रह केन्द्र स्थान में हों और पृष्ठोदय राशि में हों तथा मनुष्य राशि में होकर सातवें स्थान में हों तो वह बहुत धन से युक्त, शान्त स्वभाववाली, सुन्दर पुत्र से युक्त रानी होवे ॥७॥

बुधे त्रिलग्ने यदि तुङ्गसंस्थे लाभस्थितो देवपुरोहितश्च ।

नरेन्द्रपत्नी वनिताप्रसंगे तदा प्रसिद्धा भवतीह भूमौ ॥८॥

जिस स्त्री के उच्चराशि (कन्या) का बुध लग्न में हो, बृहस्पति ग्यारहवें स्थान में हो तो वह पृथ्वी पर स्त्रियों में प्रसिद्ध होती है यानी राजा की स्त्री होती है ॥८॥

एकोऽपि जीवो रसवर्गशुद्धः केन्द्रे यदा चन्द्रनिरीक्षितश्च ।

राज्ञी भवेत् स्त्री सधना सपुत्रा रूपान्विता पीननितम्बविम्बा ॥९॥

जिस स्त्री के एक बृहस्पति ही षड्वर्ग में शुद्ध हो और केन्द्र में स्थित हो तथा चन्द्रमा से देखा जाता हो तो वह धन, पुत्रों से युक्त पुष्ट नितम्ब वाली होवे ॥९॥

कर्कोदये सप्तमगे पतङ्गे जीवेन दृष्टे परिपूर्णदेहा ।

विद्याधरी चात्र भवेत् प्रधाना राज्ञी गतारिर्वहुपुत्रपौत्रा ॥१०॥

जिस स्त्री का कर्कलग्न में जन्म हो, सूर्य सातवें हों और बृहस्पति से देखे जाते हों तो वह रानी, पूर्ण शरीर वाली, विद्याधरी, श्रेष्ठ, शत्रु रहित और विशेष पुत्र-पौत्रों से युक्त होती है ॥१०॥

षड्वर्गशुद्धैस्त्रिभिरेव राज्ञी चतुर्भिरंशैश्च तथैकपत्नी ।

पञ्चादिभिर्देवविमानभाजा त्रैलोक्यनाथप्रमदा तदा स्यात् ॥११॥

जिस स्त्री के जन्म समय के षड्वर्गों में से तीन वर्ग शुद्ध हों, तो वह रानी होवे, चार वर्ग शुद्ध होने से जगत् में एक विख्यात रानी हो और पाँच शुद्ध होने से देव-विमान पर बैठनेवाली त्रैलोक्यनाथ की स्त्री होवे ॥११॥

लाभस्थितः शीतकरो भृगुश्च कलत्रगः सोमसुतेन युक्तः ।

जीवेन दृष्टो भवतीह राज्ञी ख्याता धरण्यां सकलैः स्तुता च ॥१२॥

जिस स्त्री के जन्म लग्न से एकादश स्थान में चन्द्रमा, सप्तम स्थान में बुध से युक्त शुक्र हो तथा गुरु से देखा जाता हो तो वह सम्पूर्ण जनता से प्रशंसित, विख्यात कीर्ति जिसकी ऐसी रानी होती है ॥१२॥

फलं स्त्रीपुंसोस्तुल्यं जातके किन्तु सप्तमे ।

सौभाग्यं चन्द्रलग्नाच्च वपुराकृतिरुच्यते ॥१३॥

जातक-विचार में स्त्री-पुरुष के कुण्डली का भाव समान ही होता है, किन्तु स्त्री की कुण्डली में जन्म लग्न व चन्द्रमा से सप्तम स्थान पति का होता है, उस पर से सौभाग्ययोग, पति के शरीर का विचार करना चाहिए ॥१३॥

जनुःकाले यस्या मदनसदने दानवगुरौ

शुभाभ्यामाक्रान्ते भवति तदा सा विधुमुली ।

गजेन्द्राणां मुक्ताफलविमलमालावृतकुचा

प्रिया पत्युर्नित्यं प्रभवति शचीवत् क्षितितले ॥१४॥

समाक्रान्ते लग्ने त्रिदशगुरुणा वास्य भृगुणा

बुधे कन्याराशौ मदनभवने भूमितनये ।

मृगे कर्के चन्द्रे सति भवति लावण्यतिलका

तपोरेखा योषा प्रभवति विशेषात् क्षितिपतेः ॥१५॥

शशाङ्के कर्कस्थे भवति हि युवत्यां विधुसुते

तनौ जीवे मीने गत्रि भृगुसुते जन्मसमयम् ।

सहस्राली मान्या जगति नृपकन्या गुणवती

विशेषादेषा स्यान्नृपतिपतिका पुण्यलतिका ॥१६॥

जिस स्त्री के जन्म समय में लग्न से सप्तम घर में दो शुभग्रहों के साथ शुक्र बैठा हो तब वह स्त्री चन्द्रमा के तुल्य मुखवाली और गजमुक्ता की मालाओं से आच्छादित स्तनवाली होती है और जिसके नेत्र में तिल का चिह्न होता है वह स्त्री अपने पति को शची (इन्द्राणी) के समान प्यारी होती है। जिस स्त्री की कुण्डली में, लग्न में बृहस्पति बैठा हो और कन्या राशि का बुध लग्न से सप्तम घर में बैठा हो, मकर का मङ्गल बैठा हो और कर्क का होकर चन्द्रमा बैठा हो तो वह स्त्री लावण्य में शिरोमणि, अति तपस्विनी और राजरानी होती है। जिस स्त्री के जन्म समय में कर्कराशि का होकर चन्द्रमा, कन्या राशि का होकर बुध, लग्न में मीन राशि का होकर बृहस्पति और वृषराशि का होकर शुक्र बैठा हो, इस योग के होने से वह स्त्री एक हजार सखियों में मान (सत्कार) पाने वाली, राजकुल में जन्म लेने वाली, सद्गुणों से सम्पन्न, लता की तरह पुण्यकर्म सम्पादन करनेवाली और विशेषकर राजा की रानी होती है ॥१४-१६॥

अथ स्त्रीणां सप्तभावे प्रत्येकग्रहफलम्

तत्रादौ सप्तमस्थरविफलम्—

दिनपताविह कामनिकेतनं गतवति प्रवराऽप्यवरा भवेत् ।

जनुषि बल्लभभावविवर्जिता मुजनतारहिता वनिता भृशम् ॥१७॥

जिस स्त्री के लग्न से सप्तम घर में सूर्य वर्तमान हो, वह स्त्री उत्तम कुल में जन्मादि होने से उत्तमा भी हो तो अधम वरताव वाली होती है, और पति से परस्पर स्नेह रहित होकर मुजनता (सज्जनता) से रहित अर्थात् लज्जादि गुणों से रहित होती है ॥१७॥

अथ सप्तमगतचन्द्रफलम्—

वृषे राकानाथे भवति मक्षने जन्मसमये

भवेदेषा योषा विमलवसना चारुवदना ।

विनम्रा मुक्तालीचलितकुचभारेण नितरां

परालीलालक्ष्मी रतिरिव रमा सा क्षितितले ॥१८॥

जिस स्त्री के सप्तम घर में वृषराशि का होकर चन्द्रमा बैठा हो वह स्त्री उज्ज्वल वस्त्रों को पहननेवाली, मनोहर मुखवाली, बड़ी नम्रता से रहनेवाली, मोतियों की माला से आच्छादित, स्तनों के भार से नम्र कटि वाली, अनेक उत्तम लीला करनेवाली अथवा साक्षात् रति के समान सुन्दरी होती है ॥१८॥

अथ सप्तमभावगतभौमफलम्—

**अङ्गारके मदनमन्दिरमिन्दुभावं
मन्दान्विते हरिभगे जननेऽङ्गनाथाः ।**

**वैधव्यमेव नियतं कपटप्रबन्धद्-
वाराङ्गना भवति सैव वराङ्गनापि ॥१९॥**

जिसके जन्म समय में कर्कराशि का होकर मङ्गल सप्तम भवन में बैठा हो अथवा शनि के साथ मङ्गल सिंह राशि का होकर सप्तम घर में बैठा हो, इन दोनों योगों के होने से वह स्त्री अवश्य वैधव्य गुणयुक्त होती है और यदि उत्तम कुलोत्पन्न हो तब भी अनेक कपट युक्त बरताव से अवश्य वेश्या हो जाती है ॥१९॥

अथ सप्तमस्थबुधफलम्—

**अनेकश्रीमर्ता भवति मखकर्ता च मद्ने
बुधे तुङ्गे यस्या जनुषि खलु तस्याः पतिरिह ।**

**स्वयं वामा कामाकुलितहृदयामोदकलया
परीता मुक्तालीरजतकनकाली मणिमण्यैः ॥२०॥**

जिसके सप्तम घर में बुध बैठा हो, उस स्त्री का पति अनेक प्रकार की संपत्तियों का भर्ता (धारण करनेवाला), अनेक यज्ञों का करनेवाला होता है और वह स्त्री स्वयं भी सर्वदा आनन्दित रहनेवाली और मोतियों तथा सुवर्ण की माला और मणिनिर्मित आभूषणों से सम्पन्न होती है ॥२०॥

अथ सप्तमस्थगुरुफलम्

**परिक्रान्ते यस्या मदनभवने देवगुरुणा
गुणज्ञा धर्मज्ञा निजपतिपदाब्जं भजति सा ।**

**मनोज्ञा मालाभिः कनकघटिताभिश्च शिरसः
समाक्रान्ता कान्ता रतिपतिपताकेव शशिभा ॥२१॥**

यदि स्त्री की जन्म कुण्डली में लग्न से सप्तम भवन में बृहस्पति स्थित हो वह स्त्री गुणों को जानने वाली, धर्म को जाननेवाली, अपने

पति के चरण-कमल का सेवन करनेवाली, सुवर्णघटित मालाओं और मणिजड़ित मालाओं को कण्ठ में पहननेवाली और अपने पति की प्यारी, कामदेव की मूर्तिमती पताका की तरह दीखनेवाली, पुरुषों के मन में कामोद्दीपन करनेवाली होती है ॥२१॥

अथ सप्तमस्थशुक्रफलम्—

**कथौ यस्या जन्मन्यपि मदनगे मीनमधने
तदा कान्तो दान्तो रतिपतिकलाकीतुकपटुः ।**

**धनुर्धर्ता भर्ता स्वयमपि च मङ्गीतरसिका
विलोली पद्माक्षी वसनलसिता भूषणवृता ॥२२॥**

जिस स्त्री की कुण्डली में लग्न तथा सप्तम घर में शुक्र बैठा हो उस स्त्री का पति कामकला में अति प्रवीण, इन्द्रियों का दमन करनेवाला और धनुर्धारी होता है और वह स्त्री आप भी संगीत विद्या की रसिका, अति चंचला, कमलनयना, दिव्य वस्त्र और दिव्य भूषणों को धारण करने वाली होती है ॥२२॥

अथ सप्तमस्थशनिफलम्—

**मदनभावगते पतंगःत्मजे पतिरतीव गदाकुलितो भवेत् ।
मलिनवेषधरो विवलो महान् जनुषितुङ्गगते प्रवरो धनी ॥२३॥**

जिस स्त्री की जन्मकुण्डली में लग्न से सप्तम घर में शनि हो उस स्त्री का पति अनेक प्रकार के रोगों से अति व्याकुल, मलिन वेष धारण करने वाला और अतिनिर्वल होता है और जो कहीं शनि अपने उच्च का होकर सप्तम घर में बैठा हो तब उसका पति धनवान् और अत्यन्त प्रतिष्ठित होता है ॥ २३ ॥

अथ सप्तमगतराहुफलम्—

**सप्तमे सिंहिकापुत्रे कुलदोषविवर्द्धिनी ।
नारीसुखपरित्यक्ता तुङ्गे स्वामिसुखान्विता ॥२४॥**

जिस स्त्री की जन्मकुण्डली में लग्न से सप्तम घर में राहु बैठा हो वह स्त्री अपने कुल को दोष लगानेवाली और सुखभोग से रहित होती है और जो कहीं राहु उच्च का होकर सप्तम घर में बैठा हो तब वह स्त्री सदा अपने पति के सुख से सम्पन्न होती है ॥ २४ ॥

अथान्यदुष्कर्मयोगः—

**मिथस्थौ शुक्रार्की यदि लग्नगतौ वीक्षणभितौ
भवेतां वा लग्ने गुरुशनिलवे शुक्रभवने ।**

अनङ्गैरालीलाकलितनररूपाभिरनिशं

स्त्रियाभिः जातीभिः खलु मदनशान्तिं व्रजति सा ॥२५॥

जिस स्त्री की जन्मकुण्डली में शुक्र के नवांश में शनि और शनि के नवांश में शुक्र बैठा हो अथवा शुक्र को शनि और शनि को शुक्र देखता हो और वृष या तुला लग्न हो, उसमें गुरु का या शनि का जन्म समय में नवांश वर्तमान हो तब वह स्त्री कामदेव की लीलावाली, पुरुषाकार रूपधारण करने वाली, प्यारी स्त्रियों से निरन्तर युक्त होकर वह आप कामशांति को प्राप्त होती है। यानी उस स्त्री को कभी कामबाधा नहीं होती है ॥ २५ ॥

अथ मोहिनीरूपकारकयोगः—

**क्षपानाथे यस्या गतवति कुलीराङ्गमथवा
मदागारं सारं सुरगुरुबुधाभ्यामपि युतम् ।**

**महान्तोऽपि भ्रान्ताः कति-कति मनोजाधिकृतया
पुरस्तां पश्यन्तो दधति वरमानन्दलहरीम् ॥२६॥**

जिसके जन्म समय में कर्कराशि का होकर चन्द्रमा लग्न में स्थित हो अथवा जिसका सप्तम घर बृहस्पति और बुध सहित मंगल से युक्त हो अर्थात् मंगल, बुध और बृहस्पति ये तीनों ग्रह सप्तम घर में बैठे हों उसी स्त्री के रूप को देखकर, भ्रांत हुए पुरुष काम के आधिक्य होने से अपने मन में परम आनन्द की लहरी को प्राप्त होते हैं ॥२६॥

अथ सुभगायोगः—

**मृगागारे सारे गतवति विसारं सुरगुरौ
कवौ वा पातालं तपनतनयेनापि विलिते ।**

जनुःकाले यस्याः करिमुकुटमुक्ताफलमणि-

र्गजानां मालाभिर्वलितमुत वक्षोजयुगलम् ॥२७॥

जिस स्त्री के जन्म-समय में मकर राशि में मंगल बैठे हों, बृहस्पति मीन का हो और शनि संयुक्त शुक्र लग्न से चौथे घर में बैठा हो तब उस स्त्री के वक्षोज (स्तन) युगल अनेक गजभुजा की माला से और अनेक प्रकार की मणिमालाओं से संवलित (आच्छादित) होते हैं ॥२७॥

अथ स्त्रीणां वैधव्ययोगः—

**निशाकरात् सप्तमभावसंस्था महीजमन्दागुदिवाकराश्चेत् ।
लग्नेऽरिभे जन्मनि नैधने वा दिशन्ति वैधव्यफलं मदे वा ॥२८॥**

जिस स्त्री की जन्मकुण्डली में चन्द्रमा से सप्तम घर में मंगल, शनि, राहु और सूर्य इनमें से कोई ग्रह बैठा हो अथवा सप्तम घर में, लग्न में या छठे घर में या अष्टम घर में उक्त चारों ग्रहों में-से कोई ग्रह बैठा हो तब वह ग्रह उसको अवश्य वैधव्य योग को देता है यानी वह स्त्री अवश्य विधवा हो जाती है ॥२८॥

अथ स्वैरिणीयोगः—

लग्नाधिपो वाऽथ मदालयेशो वर्गे गतः पापनभश्चराणाम् ।

मदे तनौ वा खलखेटवर्गस्तदा कुलं मुञ्चति चञ्चलाक्षी ॥२९॥

जिस स्त्री का लग्नेश अथवा सप्तमेश पापग्रहों के षड्वर्ग का होकर बैठा हो अथवा सप्तम घर में तथा लग्न में पापग्रहों का, जन्म समय में षड्वर्ग हो तब चञ्चल नेत्रवाली वह स्त्री अपने कुल का परित्याग करती है अर्थात् वेश्या हो जाती है ॥२९॥

अथ व्यभिचारिणीयोगः—

प.पान्तराले यदि लग्नचन्द्रौ स्यातां शुभालोकनवर्जितौ तौ ।

अनङ्गलीला खलसङ्गमेन कुलद्वयं हन्ति तदा मृगाक्षी ॥३०॥

जिस स्त्री का जन्मलग्न और चन्द्रमा ये दोनों ही पापग्रहों के बीच में हों और उन दोनों को शुभग्रह न देखते हों तब वह स्त्री खल मनुष्यों के साथ पड़कर कामकला (विषय) में अति चञ्चल होकर अपने पितृ और श्वसुर दोनों के कुल को भ्रष्ट करती है यानी परपुरुषगामिनी हो जाती है ॥३०॥

अथ पुंश्चलीयोगः—

जनुःकाले यस्या मदनभवने दानवगुरुः

पतिं त्यक्त्वा नूनं कुपितहृदया भूमितनये ।

अवश्यं वैधव्यं सपदि कमलाक्षी रविसुते

जरां पापैर्दृष्टे निजपतिविरोधं व्रजति वा ॥३१॥

जिस स्त्री की कुण्डली में लग्न से सप्तम घर में शुक्र हो तो वह अपने पति का परित्याग करनेवाली और सदा क्रोध से युक्त होती है । जिसके सप्तम घर में मङ्गल बैठा हो तो वह स्त्री अवश्य विधवा होती है और जिसके सप्तम भवन में शनि बैठा हो तो वह स्त्री शीघ्र ही वृद्धा हो जाती है और जिसके सप्तम घर को पापग्रह देखते हों तो वह स्त्री अपने पति से विरोध करने वाली होती है ॥३१॥

व्ययेऽष्टमे भूमिसुतस्य राशावगौ सपापे भवतीह रण्डा ।

मदे कुलीरे सरवौ कुजेऽपि धनेन हीना रमतेऽन्यलोकैः ॥३२॥

जिस स्त्री के जन्मलग्न से सातवें तथा बारहवें घर में दोनों घरों में मंगल की राशि विद्यमान हो अर्थात् सप्तम भवन में वृश्चिक और बारहवें घर में मेषराशि हो, उसमें पापग्रह सहित राहु बैठा हो तब वह स्त्री राँड़ होती है और जो सप्तम घर में कर्कराशि के होकर सूर्य और मंगल बैठे हों तब वह स्त्री धन से हीन होने से अन्य लोगों से रमण करने वाली होती है ॥ ३२ ॥

तनौ चतुर्थे निधने व्यये वा मदालये पापयुतः कुजश्चेत् ।

अनङ्गलीला प्रकरोति जारैः पतिं तिरस्कृत्य विलोलनेत्रा ॥३३॥

जिस स्त्री की कुण्डली में लग्न, चतुर्थ, अष्टम, द्वादश या सप्तम घर में से किसी घर में पापग्रह सहित मंगल बैठा हो तो वह स्त्री अपने पतिका तिरस्कार करके परपुरुषों के साथ रमण करने वाली होती है ॥ ३३ ॥

परम्परांशोपगतो भवेतां महीजशुकौ जननेऽङ्गानायाः ।

स्वयं मृगाक्षीत्यभिसारिकेव प्रयाति कामाकुलितान्यगेहे ॥३४॥

जिस स्त्री की कुण्डली में शुक्र के नवांश में मंगल और मंगल के नवांश में शुक्र बैठा हो तो वह स्त्री आप ही कामाकुलिता होकर अभिसारिका की तरह अन्य पुरुष के घर में जाने वाली होती है (अपने प्रिय के संकेत स्थान को, शृङ्गार कर प्रतिज्ञात समय पर जाने वाला स्त्री को अभिसारिका कहते हैं) ॥ ३४ ॥

अथ पत्याज्ञया व्यभिचारिणीयोगः—

पापग्रहे सप्तमगे बलोने शुभेन दृष्टे पतिसौख्यहीना ।

स्यातां मदे भौमकवीसचन्द्रौ पत्याज्ञया सा व्यभिचारिणी स्यात् ॥३५॥

जिस स्त्री की जन्मकुण्डली में बलहीन पापग्रह सप्तम घर में स्थित हो और उसे कोई शुभग्रह न देखते हों, तब वह पति के सुख से रहित होती है और जिसके सप्तम घर में चन्द्रमा सहित मंगल और शुक्र बैठे हों तो वह स्त्री अपने पति की आज्ञा से व्यभिचारिणी (परपुरुष-गामिनी) होती है ॥ ३५ ॥

अथ सप्तमाष्टमेऽब्दे रण्डायोगः—

पापग्रहे सप्तमलग्नगेहे भर्ता दिवं गच्छति सप्तमाब्दे ।
निशाकरे चाष्टमवैरिभावे तदाष्टमाब्दे निधनं प्रयाति ॥३६॥

जिस स्त्री की जन्मकुण्डली में सप्तम और लग्न में पापग्रह हों उस स्त्री का भर्ता सप्तम वर्ष में स्वर्गगामी होता है और यदि चन्द्रमा भी अष्टम अथवा छठें घर में बैठा हो, तब उसका पति अष्टम वर्ष में मृत्यु पाता है ॥ ३६ ॥

अन्यच्च रण्डायोगः—

सप्तमेशोऽष्टमे यस्याः सप्तमे निधनाधिपः ।
पापेक्षणयुतो बाला वैधव्यं लभते ध्रुवम् ॥३७॥

जिस स्त्री के सप्तम घर का स्वामी अष्टम में और अष्टमेश सप्तम घर में बैठा हो और उन्हें पापग्रह देखता हो तो वह बाल्य अवस्था में ही विधवा हो जाती है ॥ ३७ ॥

सप्तमाष्टपती षष्ठे व्यये वा पापपीडितौ ।
तदा वैधव्यमप्नोति नारी नैवात्र संशयः ॥३८॥

जिस स्त्री के सातवें आठवें घर के स्वामी, दोनों ग्रह पापग्रह से पीडित (दृष्ट) होकर छठें या बारहवें घर में बैठे हों, तब वह स्त्री अवश्य विधवा हो जाती है ॥ ३८ ॥

मात्रा सह व्यभिचारिणीयोगः—

मन्शरराशौ सप्तिते शशाङ्के खल्लेक्षिते लग्नगते मृगाक्षी ।
मात्रा सहैव व्यभिचारिणी स्यान्मन्दे खलांशे व्रणविद्रयोनिः ॥३९॥

जिस स्त्री की कुण्डली में शनि मंगल की राशि में शुक्र सहित चन्द्रमा यदि लग्न में बैठा हो, उसे पापग्रह देखता हो तो वह स्त्री अपनी माता सहित व्यभिचारिणी (परपुरुषगामिनी) होती है और जिसके सप्तम घर में पापग्रह का नवांश होता है तो उस स्त्री की योनि पर घाव का चिन्ह होता है ॥ ३९ ॥

❀ अथ ग्रहराशिवशेन प्रत्येकत्रिंशांशफलानि ❀

तत्रादौ कुजस्य राशेः त्रिंशांशफलम्—

यदाङ्गचन्द्रौ कुजमे कुजस्य त्रिंशांशके दुष्टतमैव कन्या ।
मन्दस्य दासी हि गुरोस्तु साध्वी मायात्रिनी ज्ञस्य कवे कुशुत्ता ॥४०॥

जिस स्त्री की कुण्डली में लग्न में मंगल की राशि हो और चन्द्रमा भी मंगल की राशि का हो अथवा लग्न में मंगल का

त्रिंशंश हो तो वह कन्या अति दुष्टा होती है और शनिका त्रिंशंश हो तो दासी, बृहस्पति के त्रिंशंश होने से पतिव्रता, बुध के त्रिंशंश के होने से अनेक प्रकार से छल संयुक्त और शुक्र के त्रिंशंश होने से खोटे बरताव वाली होती है ॥४०॥

अथ शुक्रराशो—

**शुक्रमे भौमत्रिंशंशे दुष्टा सौरेः पुनर्भवा ।
गुरोर्गुणमयी विज्ञा बुधे कामातुरा कवेः ॥४१॥**

जिस स्त्री की जन्मकुण्डली में लग्न और चन्द्रमा दोनों शुक्र की राशि में मंगल के त्रिंशंश के हों तो वह स्त्री अति दुष्टा होती है, लग्न चन्द्रमा दोनों शुक्र की राशि में, शनि के त्रिंशंश के हों तो वह स्त्री पुनर्भू अर्थात् कन्यावस्था में प्रथम गर्भिणी होकर पश्चात् विवाह होनेवाली होती है, लग्न चन्द्रमा दोनों शुक्र की राशि में बृहस्पति के त्रिंशंश के हों तो वह सकल शुभगुण युक्ता होती है, यदि लग्न और चन्द्रमा दोनों शुक्र की राशि में बुध के त्रिंशंश के हों तो वह स्त्री बड़ी विज्ञा होती है और लग्न और चन्द्रमा दोनों शुक्र की राशि में शुक्र के ही त्रिंशंश के हों तो वह स्त्री सदा कामातुरा होती है ॥४१॥

अथ बुधराशो—

**बुधमे भूमिपुत्रस्य कपटी क्लीबवच्छनेः ।
गुरोः सतीः विदा विज्ञा कवे कामातुरा भवेत् ॥४२॥**

यदि लग्न और चन्द्रमा बुध की राशि में मंगल के त्रिंशंश के हों तो वह स्त्री कपट से युक्त होती है, शनि के त्रिंशंश के हों तो क्लीब (नपुंसक) के तुल्य होती है; बृहस्पति के त्रिंशंश के हों तो वह स्त्री विशेष जाननेवाली होती है और कवि (शुक्र) के त्रिंशंश के होने पर स्त्री अति चतुर होती है ॥४२॥

अथ चन्द्रराशो—

**कुलीरमे भूमिसुतस्य वेश्या शनेः पतिप्राणविघातकर्त्री ।
गुरोर्गुणव्रातवती बुधस्य शिल्पक्रियाज्ञा कुलटा भृगोः स्यात् ॥४३॥**

यदि लग्न और चन्द्रमा दोनों कर्कराशि में मंगल के त्रिंशंश में बैठे हों तो वह स्त्री वेश्या होती है और शनि के त्रिंशंश में हों तो वह स्त्री अपने पति के प्राणों का नाश करने वाली होती है। यदि बृहस्पति के त्रिंशंश में हो तो वह स्त्री सौभाग्यादि अनेक गुणों से युक्त होती है। यदि बुध के त्रिंशंश में हो तो वह स्त्री अनेक कारीगरी जानने वाली होती

है और शुक्र के त्रिंशांश में हो तो वह स्त्री घर-घर डोलने वाली पुंश्चली होती है ॥४३॥

अथ सूर्यराशौ—

सिंहे नराकारधरा कुजस्य वाराङ्गना भानुसुतस्य नारी ।

गुरोरिलाधीशबधुवुधस्य दुष्टा तथा स्वांगजगामिनी स्यात् ॥४४॥

जिसकी कुण्डली में लग्न और चन्द्रमा दोनों सिंहराशि में मंगल के त्रिंशांश में बैठे हों तो वह स्त्री पुरुषाकार रूपवाली होती है और शनि के त्रिंशांश में हों तो वह स्त्री वारांगना (वेश्या) होती है। यदि बृहस्पति के त्रिंशांश में हों तो वह स्त्री राजरानी और बुध के त्रिंशांश में हों तो दुष्टा और शुक्र के त्रिंशांश में लग्न तथा चन्द्रमा के होने से स्त्री अपने पुत्र के साथ गमन करने वाली होती है अर्थात् सर्वगामिनी होती है ॥४४॥

अथ गुरुराशौ—

गुरोर्विचित्रा गुरुमे कुजस्य मन्दस्य मन्दा गुणतस्त्रविज्ञा ।

जीवस्य विज्ञा शशिनन्दनस्य शुक्रस्य रम्यापि भवेदरम्या ॥४५॥

यदि चन्द्रमा और लग्न दोनों बृहस्पति की राशि (धन, मीन) में मंगल के त्रिंशांश में बैठे हों तो विचित्र सद्गुणों से संपन्ना, शनि के त्रिंशांश में हों तो मन्दा, बृहस्पति के ही त्रिंशांश में हों तो विशेषकर गुणों को जानने वाला, बुध के त्रिंशांश में हों तो सब बातों को जाननेवाली और यदि शुक्र के त्रिंशांश में लग्न और चन्द्रमा हो तो वह स्त्री यदि रम्य (सुन्दर) भी हो तो अरम्य (कुरूपा) हो जाती है ॥४५॥

अथ शनिराशौ—

मन्दालये भमिसुतस्य दासी शनेरसाध्वी भवतीति साध्वी ।

गुरोर्निशानार्थसुतस्य दुष्टा शुक्रस्य बन्ध्या क्रमतः प्रदिष्टा ॥४६॥

जिस स्त्री के जन्म समय में लग्न और चन्द्रमा दोनों शनि की राशि १०।११ में मंगल के त्रिंशांश के होकर बैठे हों तो वह दासी अर्थात् चाकरी करनेवाली, शनि के त्रिंशांश में हो तो परपुरुषगामिनी, बृहस्पति के त्रिंशांश में हों तो पतिव्रता, बुध के त्रिंशांश में हों तो अत्यन्त दुष्टा और यदि शुक्र के त्रिंशांश में लग्न और चन्द्रमा दोनों हों तो वह स्त्री बन्ध्या होती है ॥४६॥

अथ पुरुषवत्तथा ब्रह्मवादिनीयोगः—

मन्दे मध्यबले कवीन्दुशशिजैर्वीर्यच्युतैः प्रायशः

शेषैर्वीर्यसमन्वितैः पुरुषवन्नारी यदोजे तनुः ।

**जीवाङ्गाररवीन्दुजैर्बलयुतैश्चेदङ्गराशौ समे
गीतातस्वविचारसारचतुरा वेदान्तवादिन्यपि ॥४७॥**

जिस स्त्री की कुण्डली में शनि तो मध्यबली होकर बैठा हो, शुक्र, चन्द्रमा, बुध क्षीणवीर्य हों, वाकी ग्रह (सूर्य, बुध, मंगल) बलवान् हों और बृहस्पति, मंगल, सूर्य और बुध बलवान् होकर सम जन्मलग्न या सम जन्मराशि में बैठे हों तो वह स्त्री गानविद्या के तत्त्व का विचार जानने वाली, बड़ी चतुरा और वेदान्त विद्या में प्रवीण होती है ॥४७॥

अथाष्टमस्थग्रहाणां फलम्—

**यदाऽष्टमे देवगुरौ भृगौ वा विनष्टगर्भा मृतपुत्रिका च ।
कुजेऽष्टमे सा कुलटा मृगाक्षी चन्द्रेऽष्टमे स्वामिसुखेन हीना ॥४८॥
मन्देऽष्टमे रोगरतस्य भार्या दिनाधिपे सा परितापतप्ता ।
अनङ्गरङ्गा परकान्तसङ्गा मृतावगौ सा कुलधर्मभङ्गा ॥४९॥**

जिस स्त्री के कुण्डली में लग्न से अष्टम में बृहस्पति या शुक्र बैठा हो तो वह स्त्री विनष्टगर्भा होती है यानी उसके गर्भ पाँच या सात मास के होकर गिर पड़ते हैं अथवा मृतापत्या होती है । यदि मंगल अष्टम घर में स्थित होवे तो वह स्त्री कुल में डोलने वाली और यदि चन्द्रमा अष्टम घर में हो तो वह स्त्री पति के सुख से रहित होती है । यदि शनि अष्टम घर में हो तो वह रोगग्रस्त पति की भार्या होती है । सूर्य अष्टम में होवे तो परिताप से तप्त होती है और जिसके अष्टम घर में राहु होता है वह स्त्री कामदेव के रंग में मग्न परपुरुष का संग करने वाली और कुलधर्म से भ्रष्ट होती है ॥४८-४९॥

अथ स्त्रीणां पुत्रभावविचारः—

**पञ्चमे शुभसंदृष्टः पञ्चमाधिपतावपि ।
केन्द्रकोणे तदा नारी बहुपुत्रवती भवेत् ॥५०॥
पञ्चपुत्रवती जीवे सबले ससिते विधौ ।
सुता सुखवती पापे नारी सन्तानवर्जिता ॥५१॥**

जिस स्त्री के लग्न से पञ्चम घर को तो शुभग्रह देखता हो और पञ्चमेश केन्द्र में या त्रिकोण १।४।७।१०।१।९ में बैठा हो तो वह स्त्री बहुपुत्रवती होती है । जिसके पञ्चम घर में बृहस्पति बैठा हो तो वह पाँच पुत्र वाली होती है । यदि बलवान् चन्द्रमा शुक्रसहित पञ्चम घर में बैठा हो तो पुत्र के सुखवाली होती है और जिसके पञ्चम घर में बली होकर पापग्रह बैठा हो तो वह स्त्री सन्तान से रहित होती है ॥५०-५१॥

अथ विषाख्यायोगः—

भद्रासार्पानलवक्षणमे भानुमन्दारवारे
यस्या जन्म प्रभवति तदा सा विषाख्या कुमारी ।

पापे लग्ने शुभखगयुतः पापखेटावरिस्थौ
स्यातां तस्या जननसमये सा कुमारी विषाख्या ॥५२॥

आदित्यसप्तमोर्दिवसे द्वितीया भुजङ्गमे भौमदिनेऽम्बुजर्क्षे ।

चेत्सप्तमी वाऽथ रवौ विशाखा हरेस्थितौ वापि च सा विषाख्या ॥५३॥

धर्मगेहगते भौमे लग्नगे रविनन्दने ।

पञ्चमे दिवसाधीशे सा विषाख्या कुमारिका ॥५४॥

भद्रा, आश्लेषा, कुत्तिका, शतभिषा इनमें से कोई नक्षत्र और रवि, बनि, मंगलवार में-से कोई वार हो तो इस योग में जन्म लेने वाली कन्या विषाख्या होती है । लग्न में शुभग्रह के साथ पापग्रह हो और पापग्रह छठवें घर में बैठा हो इस योग में जिस स्त्री का जन्म होता है, वह स्त्री भी विषाख्या कहलाती है । शनिवार, द्वितीया तिथि, आश्लेषा नक्षत्र का जिसका जन्म हो या मंगलवार, सप्तमी, शतभिषा नक्षत्र में जन्म हो अथवा रविवार, द्वादशी, विशाखा नक्षत्र का जन्म हो तो वह कन्या विषाख्या होती है और जिसके जन्मकाल में नवम स्थान में मंगल, लग्न में शनैश्चर और पञ्चम स्थान में सूर्य हो तो वह कन्या विषाख्या होती है ॥५२-५४॥

अथ विषाख्ययोगफलम्—

विषाख्या शोकसन्तप्ता दुर्भंगा मृतपुत्रिका ।

वस्त्राभरणहीना च पुराणैरुदिता भवेत् ॥५५॥

जिसकी कुण्डली में विषाख्य नामक योग होता है, वह स्त्री शोक से सन्तप्ता, दुर्भंगा, मृतापत्या और वस्त्र तथा आभरणों से रहित होती है । ऐसा पुराण के ऋषियों ने कहा है ॥५५॥

अथ विषाख्यायोगभंगः—

मस्रमे सप्तमःधीशः शुभो वा लग्नचन्द्रयोः ।

विषयोगमलं हन्ति अहो हरिर्भिं यथा ॥५६॥

इत्थं विवाहकालेऽपि ज्ञातव्यं लग्नचन्द्रयोः ।

तदाधीनं यतः स्त्रीणां शुभाऽशुभफलं भवेत् ॥५७॥

जिसकी कुण्डली में सप्तम घर का स्वामी सप्तम घर में बैठा हो तब विषाख्य नामक योग के फल को वैसा ही नाश करता है जैसे हाथी को सिंह नाश करता है । इसी प्रकार विवाहकाल में भी लग्न का और चन्द्रमा का फल जानना चाहिये । क्योंकि स्त्रियों का शुभाशुभ विवाह के अधीन होता है ॥५६-५७॥

अथ वैधव्यभंगोपायः—

वैधव्ययोगयुक्तायाः कन्यायाः शान्तिपूर्वकम् ।

वेदोक्तविधिनोद्वाहं कारयेच्चिरजीविना ॥५८॥

जिस कन्या को विधवा योग हो, उसका वेदोक्त विधि से शान्ति कराकर पश्चात् विवाह करे ॥५८॥

अथ कन्यायाः शुभाऽशुभांगयुक्तलक्षणम्—

शुभलक्षणसंयुक्ता भवेदिह यदांगना ।

तत्करग्रहणादेव वर्द्धते गृहिणां सुखम् ॥५९॥

शुभाऽशुभं पुरा शीतं वेदव्यासेन धीमता ।

प्रकाश्यते तदेवात्र नारीणामङ्गलक्षणम् ॥६०॥

जो कन्या शुभ लक्षणों से युक्त होती है उस कन्या का पाणिग्रहण करनेवाले गृहस्थ पुरुषों को सब समय सुख की वृद्धि होती है । बुद्धिमान् श्रीवेदव्यासजी ने जो शुभाशुभ लक्षण निरूपित किये हैं, उन्हीं स्त्रियों के अंग लक्षणों को मैं प्रकट करता हूँ ॥५९-६०॥

युवतिपादतलं किल कोमलं शमपतीव जपाकुसुमप्रभम् ।

दिशति मांशलमुष्णभिलापतेरतिहितं बहुधर्मविवर्जितम् ॥६१॥

जिस स्त्री की पग-तली कोमल बराबर (बीच के गड्ढे से रहित), दुपहरिया के पुष्प के समान लाल, गरमाई सहित और कुछ मोटा होता है तो वह कन्या धर्म से रहित और राजा की पत्नी होती है ॥६१॥

कमलकम्बुगणध्वजचक्रवन्पृथुलमीनविमानवितानवत् ।

भवति लक्ष्म पदे यदि योषितां क्षितिभृतां वनिता विभुतावृता ॥६२॥

जिस स्त्री की पगतली में कमल, शङ्ख, रथ, ध्वजा, चक्र, मछली, विमान और चन्द्रके चिह्नों से युक्त, बीच के गड्ढे से रहित पाँव होता है वह स्त्री विभुता (ऐश्वर्य) से सम्पन्न राजा की रानी होती है । जिस स्त्री का चरण सूप के आकार का, रङ्ग से रहित, विशेषकर सूखा, कड़ा और रूखा होता है तो वह पाँव मन्दभाग्य की सूचना करने वाला होता है ॥६२॥

अथाङ्गुष्ठनखलक्षणम्—

यस्याः समुन्नताङ्गुष्ठो वर्तुलोऽतुलसौख्यदः ।

सूर्पाकारो नखो यस्याः सा भवेद् दुःखभागिनी ॥६३॥

जिस स्त्री के पाँव का अँगूठा उन्नत और गोल होता है, वह अतुल सुख देने वाली होती है और जिसके नख सूप के आकार के हों वह स्त्री दुःखों को भोगने वाली होती है ॥६३॥

अथ गणिकालक्षणम्—

सञ्चलन्त्याः पदा धूलिधारा पदा राजमार्गेष्वलायां बलादुच्छलेत् ।

पांसुला सा कुलानां त्रयं सत्त्वरं नाशयित्वा खलैर्मोदते सर्वदा ॥६४॥

जिस स्त्री के चलने में मार्ग में धूलि उड़ती हो वह स्त्री जारिणी (परपुरुषगामिनी) होकर अपने माता, पिता और पति तीनों के कुलों को दूषित करनेवाली होकर, सब समय दुष्ट एवं कामी पुरुषों के साथ आनन्द से विषय करनेवाली होती है ॥६४॥

अथ पादाङ्गुल्युपर्यङ्गुलिलक्षणम्

यस्या अन्योन्यमारूढा पादाङ्गुल्यो भवन्ति चेत् ।

सा पतीन् बहुधा हत्वा वारवामा भवेदिह ॥६५॥

जिसकी अङ्गुली में एक अङ्गुली पर एक चढ़ी हुई हो वह स्त्री अनेक प्रकार से अपने पति को मारकर वारांगना (वेश्या) होती है ॥६५॥

अथ कनिष्ठाङ्गुलिलक्षणम्—

कनिष्ठा न स्पृशेत् भूमिं चलन्त्या योषितस्तदा ।

सा द्रुतं स्वपतिं हत्वा जारेण रमते पुनः ॥६६॥

जिस स्त्री के पाँव की कनिष्ठा अङ्गुली चलने में भूमि को न स्पर्श करती हो वह स्त्री शीघ्र ही पति को मारकर परपुरुष से रमण करने वाली होती है ॥६६॥

अथानामिका तथा मध्याङ्गुलिलक्षणम्—

अनामिका च मध्या च यदि भूमिं न संस्पृशेत् ।

आद्या पतिद्वयं हन्ति चापरा तु पतित्रयम् ॥६७॥

अनामिका च मध्या च यदि हीना प्रजायते ।

तदा सा पतिहीना स्यादित्याह भगवान् स्वयम् ॥६८॥

जिस स्त्री के चलने में विचली और अनामिका (उँगली के पास की) दोनों अङ्गुली यदि भूमि का स्पर्श न करती हो, उनमें भी अनामिका

भूमि का स्पर्श न करे तो दो पतियों और मध्यमा अङ्गुली भूमि को स्पर्श न करती हो तब वह स्त्री तीन पतियों को मारती है । अनामिका, मध्यमा दोनों अङ्गुली जिस स्त्री की छोटी हो तब वह स्त्री पतिहीना होती है यह बात भगवान् ने अपने मुख से कही है ॥६७-६८॥

अथ पादनखलक्षणम्—

यदि पादनखाः स्निग्धा वर्तुलाश्च समुन्नताः ।

ताम्रवर्णा मृगाक्षीणां महाभोगप्रदायकाः ॥६९॥

जिसके पाँव के नख लाल, चिकने, गोल और उन्नत हों तब उस स्त्री को अनेक भोगों के देने वाले होते हैं ॥६९॥

अथ पादपृष्ठलक्षणम्—

यदि भवेदमलं किल कोमलं कमलपृष्ठवदेव मृगीदृशाम् ।

अरुणकुङ्कुमविद्रुमसन्निभं बहुगुणं पदपृष्ठमिति ध्रुवम् ॥७०॥

जिस स्त्री का पाद-पृष्ठ कोमल, उज्ज्वल, मूँगा या केशर के समान रंग का लाल और कमल के पृष्ठ का-सा हो तब वह स्त्री अनेक सद्गुणों से युक्त होती है ॥७०॥

अथान्याशुभलक्षणम्—

अङ्घ्रिमध्ये दरिद्रा स्यान्नम्रत्वेन सदाङ्गना ।

शिरालेनाधगा नारी दासी लोमाधिकेन सा ॥७१॥

जिस स्त्री की उँगलियों के बीच में गहरापन हो तब वह स्त्री दरिद्रा होती है । यदि वे ही उँगलियों का मध्यभाग शिराल (अधिक नस वाला) हो तो वह स्त्री रास्ता चलने वाली और जो अधिक रोमों से संयुक्त हो तब वह स्त्री दासी होती है ॥७१॥

अथ गुल्फयोर्लक्षणम्—

निर्मासेन सदा नारी दुर्भगा खलु जायते ।

गुल्फौ गूढौ शुभौ स्यातामशिरालौ च वर्तुलौ ॥७२॥

जिस स्त्री की पिडुली निर्मास (पतली) हो वह स्त्री दुर्भगा होती है और नसों के आधिक्य से रहित गोल और मांस से छिपी हो तो वह शुभफल को देने वाली होती है ॥७२॥

अगूढौ शिथिलौ यस्यास्तस्या दौर्भाग्यसूचकौ ।

गुल्फलक्षणमाख्यातं पार्श्वलक्षणमुच्यते ॥७३॥

जिस स्त्री के ठिगुना के मांस निकले और शिथिल हों तब वे दुर्भाग्य के जलानेवाले होते हैं। यह ठिगुनों का लक्षण कहा है। अब एड़ी का लक्षण कहते हैं ॥७३॥

अथ पाष्णिलक्षणम्—

समानपाष्णिः सुभगा पृथुपाष्णिश्च दुर्भगा ।

कुलटा तुङ्गपाष्णिश्च दीर्घपाष्णिर्गदाकुला ॥७४॥

जिस स्त्री की एड़ी समान होती है वह स्त्री सुभगा होती है और मोटी एड़ी होने से दुर्भगा, ऊँची एड़ी होने से परपुरुषगामिनी और लम्बी एड़ी होने से स्त्री रोगिणी होती है ॥७४॥

अथ जङ्घालक्षणम्—

जङ्घे रम्भोपमे यस्या रोमहीने च वर्तुले ।

मांसले च समे स्निग्धे राज्ञी सा भवति ध्रुवम् ॥७५॥

जिस स्त्री की जङ्घायें केले के समान चिकनी, रोम से रहित, गोल, समान और मांसल होती है वह स्त्री अवश्य राजरानी होती है ॥७५॥

अथ रोमलक्षणम्—

एकरोमा प्रिया राज्ञो द्विरोमा सौख्यभागिनी ।

त्रिरोमा विधवा ज्ञेया रोमकूपेषु कामिनी ॥७६॥

एक रोमवाली रोमराज्ञी होने से रानी, दो होने से सुख भोगने वाली और हर एक रोम-कूपों में तीन-तीन रोम होने से विधवा होती है ॥७६॥

अथ पुनर्जानुलक्षणम्—

भवति जानुयुगं यदि मांसलं तदतिवृत्तमतीव शुभप्रदम् ।

भवनभर्तुरतो विपरीतमादिभिरिदं विपरीतमृदीरितम् ॥७७॥

जिस स्त्री की दोनों जङ्घायें मोटी और अति गोल हों तो वह राजा की रानी होती है और इसमें विपरीत होने से विपरीत फल होता है (पूर्व पीड़ियों का और जाँघों का फल कहा है) ॥७७॥

अथ नितम्बकटिलक्षणम्—

समृन्नतनितम्बाद्या यस्याः सिद्धांगुला कटिः ।

सा राजपट्टमहिषी नानालीभिः समावृता ॥७८॥

निर्मासा विनता दीर्घा चिपिटा शकटाकृतिः ।

लघ्वी रोमाकुला नार्याः वैधव्यं दिशते कटिः ॥७९॥

जिस स्त्री के नितम्ब (कटिपश्चाद् भाग) ऊँचे हों और चौबीस अंगुल के प्रमाण की कमर हो, वह स्त्री अनेक सखीजनों के साथ रहने वाली राजरानी होती है और मांस से रहित, आगे को या पीछे को कुछ झुकी, लम्बी, चिपटी गाड़ी के आकार लम्बी और रोमसंयुक्त, जिस स्त्री की कमर हो वह स्त्री विधवा होती है ॥७८-७९॥

**सीमन्तिनीनां यदि चारुविम्बो भवेन्नितम्बो बहुभोगदः स्यात् ।
समृन्नतो मांसल एव यासां पृथुः सदा काममुखाय तासाम् ॥८०॥**

जिस स्त्री का नितम्ब, विम्ब के समान होता है वह स्त्री अनेक भोगों को भोगने वाली होती है और जिसका नितम्ब ऊँचा, मांसल और पुष्ट होता है वह सदा काम सुखों को भोगती है ॥८०॥

अथ योनिलक्षणम्—

**यदा गजस्कन्धसमानरूपो भगोऽथवा कच्छपपृष्ठवेषः ।
इलापतेः कामविनोददायी वामोन्नतः सोऽपि सुताजनेता ॥८१॥**

जिस स्त्री की योनि (भग) हाथी के कन्धे के समान हो या कच्छप की पीठ के आकार वाली हो वह कामक्रीड़ा करने वाली राजरानी होती है और वामभाग उन्नत (ऊँचे) भग होने से स्त्री कन्या सन्तान को उत्पन्न करने वाली होती है ॥८१॥

अश्वत्थदलरूपो वा भगो गूढमणिः शुभः ।

चुल्हिकोदररूपा यः कुरङ्गखुरसन्निभः ॥८२॥

रोमाकुलो दुष्टयोनिर्विकृतास्योऽमहाधनः ।

कामिनां न विनोदाही भगो भवति सर्वथा ॥८३॥

कामिन्या कञ्जुकावर्तो भगो दौर्भाग्यवर्द्धकः ।

स गर्भधारणेऽशक्तो वक्राकारोऽपि तादृशः ॥८४॥

वेतसवंशदलप्रतिभासः खर्पररूपवदेव भगो वा ।

लम्बगलो विकटो गजलोमा नैव शुमश्चिपिटोऽपि निरुक्तः ॥८५॥

जिस स्त्री का भग पीपल के पत्ते के समान आकार वाला, गुप्त मणितुल्य या चुल्हिका (चुल्हे) के समान या हरिण के खुर के आकार का होने से शुभ होता है और रोमों से आकुल रहने से जिसकी योनि दीखती नहीं वह स्त्री धनहीन होती है और वह कामी पुरुषों के विनोद करने योग्य नहीं होती और जो स्त्री का भग दोनों तरफ से उन्नत, मध्य में नीचा हो तब दुर्भाग्य बढ़ाने वाला और गर्भ को धारण करने में असक्त होता

है और वक्राकार भग का भी यही फल होता है। यदि बेंत या बाँस के दल के आकार का या खप्पर के आकार का भग हो अथवा लम्बे गलेवाला या विकट या हाथी के समान लोमवाला भग हो अथवा चिपटाकार भग होवे तो शुभ नहीं होता है ॥८२-८५॥

मृदुतरं मृदुरोमकुलाकुलं यदि यदा जघनं भगभाजनम् ।

उक्त समुन्नतमायतनं तदा पतिकलाकलितं गदितं बुधैः ॥८६॥

तदेव दक्षिणावर्तं मांसलं शुभसूचकम् ।

वामावर्तं च नारीणां खण्डितं खण्डिताश्रयम् ॥८७॥

निर्मांसं कुटिलाकारं रूक्षं वैधव्यसूचकम् ।

अतिस्थूलं महादीर्घं सद्यो दौर्भाग्यकारकम् ॥८८॥

जिस स्त्री का भग अथवा कटिपश्चाद्भाग अति कोमल, रोम वाला या सम्यक् प्रकार उन्नत (ऊँचा) या लंबा होवे तो वह पति की कला से आदरपूर्वक सेव्य कहा है, यही सब बुधजनों ने निर्णय किया है। यदि वही भाग दक्षिणावर्त और मांसल हो तो शुभसूचक होता है। यदि वह वामावर्त और खंडित हो तो खण्डिता (जारिणी) पन का आश्रय होता है। यदि वह मांस रहित और टेढ़े आकार वाला या रूखा हो तो वह वैधव्य को सूचना करता है और स्थूल या लंबा भग हो तो दौर्भाग्य (अभाग्य) का करने वाला होता है ॥८६-८८॥

वस्तिलक्षणम्—

मृदुला विपुला वस्तिः शोभना च समुन्नता ।

अशुभा रेखाक्रान्ता शिराला लोमसङ्कुला ॥८९॥

जिस स्त्री के नरम बड़े और ऊँचे नले हों तो शुभ और जो अनेक रेखावाली और नसें दीखती हों और रोमों से युक्त हों तब नसें अशुभ सूचक होती हैं ॥८९॥

अथ नाभिलक्षणम्—

गभीरा दक्षिणावर्ता नाभिर्भोगविवर्द्धिनी ।

व्यक्तग्रन्थिः समुत्ताना वामावर्तान शोभना ॥९०॥

जिस स्त्री की नाभि गहरी और दक्षिणावर्त हो तो वह भोगों को बढ़ाने वाली होती है। जिसकी ग्रन्थि (मध्य की घुंड़ी) दीखती, ऊँची हो, और वामावर्तयुक्त नाभि हो तब यह नाभि अशुभ फल देनेवाली होती है ॥९०॥

पृथूदरी यदा नारी क्षते पुत्रान् बहूनपि ।

भेकोदरी नरेशानां बलिनं चायतोदरी ॥६१॥

उन्नतेनोदरेणैव बन्ध्या नारी प्रजायते ।

जठरेण कठोरेण सा भवेद्धिन्दुकाङ्गना ॥६२॥

कोमलैर्मांससंयुक्तैः समानैः पार्श्वकैः शुभम् ॥६३॥

वितिरेणं मृदुत्वचा सपुत्री जठरेणातिक्रुशेन कामिनी सा ।

बहुधातुलयोगलालिता सानुदिनं मोदकं सत्फलाशिनी स्यात् ॥६४॥

घटाकारं यस्या भवति च मृदंगेन सदृशं

यवाकारं दैवादुदरमहिपुत्रैर्विरहितम् ।

अमद्रं नो भद्रं तदपि यदि कूष्माण्डसदृशं

निरुक्तं तत्त्वज्ञैः कठिनमुरुशालेन च समम् ॥६५॥

जिसका उदर पुष्ट होता है वह स्त्री अनेक पुत्रों को उत्पन्न करनेवाली होती है और जिसका पेट मेढक के आकार वाला होता है, वह स्त्री राजा और बलवान् पुत्रों को उत्पन्न करने वाली होती है, उन्नत पेटवाली स्त्री बन्ध्या (बाँझ) होती है । जिस स्त्री का कठोर उदर हो वह स्त्री भिन्दुक (अधम मनुष्यों में उत्तम) पुरुष की पत्नी होती है, वह स्त्री अवश्य दासी होती है, जिसकी नरम मांसयुक्त और समान कोखें होती हैं तो वह शुभगुणा होती है, और जिस स्त्री का नसों से रहित कोमल चर्म वाला और पतला उदर होता है, वह स्त्री अनेक भोगों से लालायित और प्रतिदिन अनेक प्रकार के मोदकों को खाने वाली और अनेक फलों को भोगने वाली होती है । जिस स्त्री का उदर घड़े के आकार या मृदंग के आकार अथवा यव के आकार का हो तो वह स्त्री पुत्र से रहित अमंगलरूपा होती है । यदि कूष्माण्ड (कुम्हड़े के फल) के सदृश आकारवाला हो तब वह अमंगलरूप नहीं किन्तु मंगलरूपा होती है । तत्त्वज्ञों ने कहा है कि जिस स्त्री के उरुशाल कठोर हों तो भी पूर्वोक्त ही उसका फल होता है ॥६१-६५॥

अथ त्रिवलीलक्षणम्—

कृशतरा त्रिवली सरसावली ललितनर्मविनोदवित्रिधिनी ।

भवति स कपिला कुटिलाकुला शुभकरी विरला महदाकृतिः ॥६६॥

जिस स्त्री के उदर में अति पतली सीधी त्रिवली हो, वह स्त्री मनोहर हास्य क्रीड़ा को बढ़ाने वाली होती है। यदि वह त्रिवली कपिल (धुरे) रंग की कुछ टेढ़ी हो तो वह स्त्री व्याकुल रहने वाली होती है और यदि छिछली और बड़ी त्रिवली हो तो वह शुभफल देनेवाली होती है ॥६६॥

अथ वक्षस्थललक्षणम्—

लोमहीन - हृदयं यदा भवेन्निम्नताविरहितं समायतम् ।
भोगभेत्य सकलं वराङ्गना सा पुनः प्रियवियोगमालभेत् ॥६७॥

उद्भिन्नरोमहृदया स्वपतिं निहन्ति

विस्तारस्रुपहृदया व्यभिचारिणी स्यात् ।

अष्टादशाङ्गुलमितं हृदयं सुखाय

चेद्रोमशं च विषमं न सुखाय किञ्चित् ॥६८॥

उन्नतं पीवरं शस्तं हृदया वरयोषिताम् ।

अपीवरमिदं नीचं पृथुर्भाग्यसूचकम् ॥६९॥

जिसका हृदय (छाती) रोमराशि और गढ़ेले से रहित बराबर तथा लंबा हो वह स्त्री सब भोगों को भोगने वाली होकर पश्चात् पति के वियोग को पाती है यानी विधवा हो जाती है। रोमयुक्त हृदय वाली स्त्री अपने पति को मारनेवाली और विस्तृत हृदयवाली परपुरुषगामिनी होती है और अट्टारह अंगुल प्रमाण का हृदय सुख देने वाली होती है परन्तु यदि अधिक रोमवाली या विषम (ऊँचा-खाला) हृदय हो तब उस स्त्री का सब समय दुःख का देने वाला होता है। उन्नत (ऊँचा) पुष्ट हृदय हो तब वह उत्तम स्त्रियों को सब समय अत्यन्त दुःख देनेवाला होता है और यदि पतला, नीचा हृदय हो तब स्त्री का दौर्भाग्य सूचक हृदय होता है ॥६७-६९॥

अथ स्तनलक्षणम्—

भवत एव समौ सुदृढाविमौ यदि घनौ सुदृशस्तु पयोधरौ ।

निजपतेरनिशं परिवर्तुलौ कुसुमवाणविनोदविवर्धकौ ॥१००॥

सुभ्रुवो विरलौ सूक्ष्मौ स्थूलाग्रावहिताविमौ ।

पयोधरौ तदा नार्याः प्रभवेद् दक्षिणोन्नतौ ॥१०१॥

पुत्रदोऽप्यथ कन्यादो यदा वामोन्नतो भवेत् ।

सान्तरालौ च विस्तारौ पीत्ररास्यौ न शोभनौ ॥१०२॥

मले स्थूलो क्रमकृशावग्रे तीक्ष्णौ पयोधरौ ।

सुखेदौ पूर्वकाले तु पश्चादत्यन्तदुःखदौ ॥१०३॥

जिस स्त्री के स्तन सम मजबूत और परस्पर मिले हुए गोल हों तो उस स्त्री को अपने पति के द्वारा कामक्रीडा के बढ़ाने वाले होते हैं। और बीच में अंतराल सहित सूक्ष्म और मोटे अग्रभाग वाले हों तो स्त्री को अहित करने वाले होते हैं और दक्षिणोन्नत स्तन होने से पुत्रसंतति देने वाले और वामोन्नत स्तन होने से कन्या संतति देने वाले होते हैं और यदि स्तनों के बीच खाली हो अर्थात् दूर-दूर हों या अति पुष्ट हों अथवा स्तनों का अग्रभाग मोटा हो तो शुभ नहीं होते। जड़ में स्थूल होकर तदनन्तर क्रम से कृश हो और अग्रभाग में तीक्ष्ण हो तो वे स्तन पूर्व अवस्था में सुख देने वाले और वृद्धावस्था में दुःख देनेवाले होते हैं ॥१००-१०३॥

अथ स्कन्धलक्षणम्—

पुत्रिणी विनतस्कन्धा ह्रस्वस्कन्धा सुखप्रदा ।
पुष्टस्कन्धा तु कामान्धा रतिभोगसुखावहा ॥१०४॥
मदान्धा कुटिलस्कन्धा स्थूलस्कन्धा च तादृशी ।
यदि लोमाकुलस्कन्धा वैधव्यं द्रूतमावहेत् ॥१०५॥

झुके हुए स्कंधों के होने से स्त्री पुत्र सन्तान वाली, ह्रस्वकंधों के होने से सुख भोगनेवाली, पुष्टकंधों के होने से स्त्री सब समय काम से अन्धी और रति भोगरूप सुख को देने वाली होती है। जिस स्त्री के कन्धे टेढ़े हों या स्थूल हों तब वह स्त्री सब समय मद में अन्धी होती है। यदि स्त्री के कन्धों में रोम अधिक हों तो उस स्त्री को शीघ्र ही वैधव्य प्राप्त होता है ॥१०४-१०५॥

अथ बाहुलक्षणम्—

स्रस्तांसा संहतांसा च धान्या भवति कामिनी ।
तुङ्गांसा विधवा ज्ञेया विमांसा सा तथैव च ॥१०६॥

जिस स्त्री के बाहुमूल घने (फैले हुये) अथवा दृढ़ (मजबूत) हों तब वह स्त्री धन्य कामिनी होती है और जिसके ऊँचे बाहुमूल हों अथवा मांस-रहित हों तो वह स्त्री विधवा होती है ॥१०६॥

अथ हस्ताङ्गुलीलक्षणम्—

अङ्गुष्ठाङ्गुलिकं युग्मं यत्पद्मकलिका समम् ।
बहुभोगाय नारीणां निर्मितं विधिना परा ॥१०७॥

जिस स्त्री की अँगूठे के पास की दोनों अङ्गुली कमलकली के समान हो तो वह बड़े भोगों को संपादन करनेवाली होती है। ऐसा ब्रह्मा जी ने कहा है ॥१०७॥

अथ करतललक्षणम्—

करतलं भुजयोर्यदि कोमलं विमलपद्मनिभं च समुन्नतम् ।

निजपतेः कुसुमायुधवर्धकं निगदितं मुनिना विधिनोदितम् ॥१०८॥

स्वच्छरेखाकुलं भद्रं न भद्रं हीनरेखया ।

अभद्रं रेखया हीनं वैधव्यं चातिरेखया ॥१०९॥

जिस स्त्री की करतली (हथेली) निर्मल और कमल के समान तथा ऊँची यानी ऊपर को उठी हो तो वह स्त्री पतिका कामोद्दीपन करनेवाली होती है। ऐसा सामुद्रिक जानने वाले ऋषियों का मत है और जिस स्त्री की करतली स्वच्छ (साफ) रेखाओं से युक्त हो वह कल्याण करने वाली और हीन रेखा वाली करतली अमङ्गल करनेवाली होती है। और बिल्कुल रेखा से रहित होने से अमङ्गल देनेवाली और बहुरेखा युक्त हथेली होने से वैधव्यदायक होती है ॥१०८-१०९॥

शिरालं कुरुते निःस्वं नारीकरतलं यदि ।

समुन्नतं च विशिरं करपृष्ठं सुशोभनम् ॥११०॥

सुभ्रुवः करपृष्ठस्य लक्षणं गदितं बुधैः ॥१११॥

जिस स्त्री के हाथों का पिछला भाग नसों से अधिक युक्त हो तो वह दरिद्र करता है और जिस स्त्री के हाथों का पिछला भाग ऊँचा और नसों के आधिक्य से रहित हो वह लाभदायक होता है और जिस स्त्री के हाथ का पिछला भाग रोमों से युक्त गंभीर और मांस से रहित हो, वह उस स्त्री के पति के प्राणों का नाश करनेवाला होता है। बुद्धिमान् पण्डितों ने इस प्रकार कर-पृष्ठका लक्षण कहा है ॥११०-१११॥

अथ शुभाशुभस्वप्नफलम्—

सर्वाणि शुक्लान्यतिशोभनानि कार्पासतक्रास्थिविबर्जितानि ।

सर्वाणि कुष्णानि च निन्दितानि गोवाजिह्वस्तस्वजनं विना हि ॥११२॥

रूई, तक्र, अस्थि (हड्डी) छोड़कर जितने शुक्ल (उजले) पदार्थ हैं। सबका स्वप्न में दर्शन शुभ फलदायक है और गाय, घोड़ा, हाथी और ब्राह्मण तथा अपने बन्धु वर्ग को छोड़कर जितने काले पदार्थ हैं उनके स्वप्न में दर्शन से अशुभ फल होता है ॥११२॥

❀ विशिष्ट-प्रकरणम् ❀

अङ्गस्फुरणफलम्—

ब्रुहि मे त्वं निमित्तानि अशुभानि शुभानि च ।

सर्वधर्मभृतां श्रेष्ठ त्वं हि सर्वं विबुध्यसे ॥१॥

मनु महाराज मत्स्य भगवान् से पूछते हैं कि, हे धर्मधारियों में श्रेष्ठ ! आप (अंगस्फुरण का) शुभाशुभ फल कहिये ॥१॥

अङ्गस्य दक्षिणे भागे प्रशस्तं स्फुरणं भवेत् ।

अप्रशस्तं तथा वामे पृष्ठस्य हृदयस्य च ॥२॥

(मत्स्य उत्तर देते हैं कि) अंग का फड़कना दक्षिण भाग में शुभ, वामे भाग में, पृष्ठ में और हृदय में अशुभ है ॥२॥

अङ्गानां स्पन्दनं चैव शुभाऽशुभविचेष्टितम् ।

तन्मे विस्तारतो ब्रुहि येन स्यात्तद्विदो भुवि ॥३॥

(मनु बोले) अंग के समस्त स्थानों के फड़कने का शुभाशुभ फल विस्तार सहित वर्णन कीजिये, जिससे संसार के लोग जान सकें ॥३॥

पृथ्वीलाभो भवेन्पद्मिन् ललाटे रविनन्दन ।

स्थानवृद्धिः समायाति भ्रूणसोः प्रियसंगमः ॥४॥

भृत्यलब्धिश्चाक्षिदेशे दृगुपान्ते धनागमः ।

उत्कण्ठाऽपगमे मध्ये दृष्टं राजन्विचक्षणैः ॥५॥

दृग्बन्धने संगरे च जयं शीघ्रमवाप्नुयात् ।

योषिर्लाभोऽपाङ्गदेशे श्रवणान्ते प्रियश्रुतिः ॥६॥

नासिकायां प्रीतिवीर्यं प्रियाप्तिरधरोष्ठोः ।

कण्ठे तु माग्यलाभः स्याद्भोगवृद्धिरथांसयोः ॥७॥

सुहृच्छ्रेष्ठश्च बाहुभ्यां हस्ते चैव धनागमः ।

पृष्ठे पराजयोत्सेधे जयो वक्षस्थले भवेत् ॥८॥

कक्षाभ्यां प्रीतिरुद्दिष्टा स्त्रियाः प्रजननं भगे ।

म्यानम्रंशो नाभिदेशे अन्त्रे चैव धनागमः ॥९॥

जानुसन्धौ परैः सन्धिर्वलवृद्धिर्भवेन्नृप ।

एकदेशे भवेत्स्वामी जंघाभ्यां रविनन्दन ! ॥१०॥

उत्तमस्थानमाप्नोति पादयोः स्फुरणे नृप ! ।

अलाभश्चाध्वगमनं भवेत्पादतले नृप ! ॥११॥

(मत्स्य बोले कि) मस्तक फड़कने से पृथ्वीलाभ, ललाट फड़कने से स्थान वृद्धि, भृकुटी के बीच का भाग फड़कने से प्रियदर्शन, नेत्रों के फड़कने से सेवक की प्राप्ति, नेत्रों की कोरों से धनलाभ, कण्ठ के मध्य भाग से राज्य प्राप्ति, नेत्र से युद्ध में जय, अपांगदेश से स्त्री लाभ, कर्णान्त से प्रिय मित्र की सुध, नासिका से सुख की प्राप्ति, अधरोष्ठ से प्रिय वस्तु का लाभ, कण्ठ से ऐश्वर्य लाभ, कंधे से भोग की वृद्धि, दोनों भुजाओं से मित्र से भेंट, दोनों हाथ से धन लाभ, पीठ से पराजय, ऊरु से जयलाभ, छाती से जयलाभ, काँख से प्रीति, शिशनेन्द्रिय से स्त्री लाभ, नाभि से स्थानभ्रष्ट, आँतों से धनलाभ, जानुकी सन्धि से बली शत्रु से संधि, जंघा से एकदेशाधिपति, पैरों से श्रेष्ठ स्थानों में मान और तालुओं के फड़कने से हानि एवं गमन होता है ॥४-११॥

स्त्रीणामङ्गस्फुरणफलम्—

लाञ्छनं पीठकं चैव ज्ञेयं स्फुरणवत्तथा ।

विपर्ययेण हि ततः सर्वं स्त्रीणां विपर्ययात् ॥

दक्षिणेऽपि प्रशस्तेऽङ्गे प्रशस्तं स्याद्विशेषतः ॥१२॥

स्त्रियों का अंग भृकुटी के बीच और पीठ में फड़के तो पुरुषों के समान ही फल जाने और सब अंग पुरुषों के विपरीत अच्छे हैं अर्थात् स्त्रियों का वामांग फड़कना शुभ माना गया है ॥१२॥

परिहारः—

अनन्यथासिद्धिरयत्नतोऽस्य फलस्य शस्तस्य च निन्दितस्य ।

अनिष्टनिर्दोषणमे द्विजानां कार्यं सुवर्णेन तु तर्पणं स्यात् ॥१३॥

अंगस्फुरण के अनिष्ट फल को दूर करने के लिए और दुःस्वप्नजनित अशुभ फल दूर करने के लिए ब्राह्मण को सुवर्ण देकर संतुष्ट करे ॥१३॥

अथ यात्रा-प्रकरणम्

यात्रालग्नविचारः—

चरलग्ने प्रयातव्यं द्विस्वभावे तथा नरैः ।

लग्ने स्थिरे न गन्तव्यं यात्रायां क्षेममिप्सुभिः ॥१४॥

चर और द्विस्वभाव लग्न में शुभ की अभिलाषा करनेवाले यात्रा करें । शेष लग्न में यात्रा न करें ॥१४॥

द्वादशस्थानानुसारेण यात्रालगने ग्रहबलम्—

जन्मस्थं चाष्टमं त्याज्यं लग्नं द्वादशमेव च ।

ग्रहाणां च बलं वीक्ष्य गच्छेद् दिग्विजयी नृपः ॥१५॥

लग्न में, अष्टम एवं द्वादश स्थानों में पापग्रह को छोड़, ग्रहबल देखकर यात्रा करने में विजय प्राप्त होती है ॥१५॥

स्थाने यदा स्युर्गुरुसौम्यशुक्राः सिद्धयन्ति कार्याणि च पञ्चमेऽह्नि ।

राज्ञः पदं वा सुखदेशलाभं मासस्य मध्ये ग्रहभावयुक्तम् ॥१६॥

लग्न में गुरु, बुध या शुक्र हो तो यात्रा करने पर ५ दिन में या १ मास में राज्यपद या देश लाभ हो ॥१६॥

धनस्थाने—

जीवो बुधो वा भृगुनन्दनो वा स्थाने द्वितीये गमनस्य काले ।

सुवस्त्रलाभो भवतीह तस्य मासस्य मध्ये च चतुर्दशेऽह्नि ॥१७॥

दूसरे स्थान में गुरु, बुध या शुक्र हो तो यात्रा करने पर १४ दिन में या १ मास में सुन्दर वस्त्र मिले ॥१७॥

यदा धनस्था रविराहुभौमाः सौरिश्च केतुस्त्रिभिरेव मासैः ।

वित्तस्य नाशं च ददाति मृत्युं सत्यं हि वाक्यं मुनयो वदन्ति ॥१८॥

दूसरे स्थान में रवि, राहु, मंगल, शनि या केतु हो तो यात्रा करने से ३ दिन में धनहीन होकर मृत्यु होती है। यह मुनियों का सत्य वचन जानो ॥१८॥

तृतीयस्थाने—

स्थाने तृतीये गुरुभार्गवौ च सोमस्य सनुश्च निशापतिश्च ।

करोति कार्यं सफलं च सर्वं पक्षद्वयेनापि दिनत्रयेण ॥१९॥

तीसरे स्थान में गुरु, शुक्र, चन्द्र या बुध हों तो यात्रा करने से ३ दिन में या १ मास में कार्य सिद्ध हो ॥१९॥

चतुर्थस्थाने—

क्रूराश्चतुर्थे गमने यदा तु न स्युश्च शेषाः शुभदा हि कार्ये ।

तत्रापि दैवेन भवेच्च सिद्धिर्मासत्रयेणापि दशाहमध्ये ॥२०॥

यात्रालग्न से क्रूरग्रह चौथे स्थान में हो तो शेष सब शुभग्रह सब कार्य में शुभदायक होते हैं। उस पर यदि भाग्य अनुकूल हो तो यात्रा करने पर

दस दिन या तीन महीने में कार्य सिद्ध हो जाता है ॥२०॥

वारपरत्वेन स्वरविचारः—

गुरौ शनौ रवौ भौमे शुभौ वै दक्षिणः स्वरः ।

अन्यवारेषु वामस्तु स्वरश्चैव शुभः स्मृतः ॥२१॥

निर्गमे वामतः श्रेष्ठः प्रवेशे दक्षिणः शुभः ।

यः स्वरः स च नासाग्रे योगिनां मतमीदृशम् ॥२२॥

गुरु, शनि, रवि और भौमवार में दक्षिण स्वर चलने पर प्रवेश करने में शुभ है। सोम, बुध और शुक्रवार में वाम स्वर के चलने पर यात्रा करना श्रेष्ठ है, ऐसा स्वर के ज्ञाता कहते हैं ॥२१-२२॥

अथ वारपरत्वेन छायाविचारः—

अष्टौ पादा बुधे स्युर्नव धरणिमुते सप्त जीवे पदानि
ज्ञेयं चैकादशार्कं शनिशशिभृगुषु प्रोक्तमर्थं चतुष्कम् ।

तस्मिन्काले मुहूर्ते सकलगुणयुते कार्यसिद्धिः शुभोक्ताः

नास्मिन् पञ्चाङ्गशुद्धिर्न खलु शशिवलं भाषितं गर्गमुख्यैः ॥२३॥

८ पैर अपनी छाया देखकर बुधवार को यात्रा करे। ९ पैर छाया देखकर भौम को यात्रा करे। ७ पैर छाया देखकर गुरुवार को, ११ पग छाया देखकर रविवार को, ४ पैर छाया देखकर शनि, सोम और शुक्रवार को यात्रा करे तो यह सर्वगुणयुक्त सिद्ध मुहूर्त होता है। इसमें चन्द्रबल देखने की आवश्यकता नहीं। यह गर्गाचार्य का वचन है ॥२३॥

काकशब्दशकुनविचारः—

काकस्य वचनं श्रुत्वा पादच्छायां तु कारयेत् ।

त्रयोदशयुतां कृत्वा षड्भिवै भागमाहरेत् ॥२४॥

लाभः खेदस्तथा सौख्यं भोजनं च धनागमः ।

अशुभं च क्रमेणैव गर्गस्य वचनं यथा ॥२५॥

काक का शब्द सुनकर, अपने पैरों से छाया नापकर, उनमें १३ और मिलावे, ६ का भाग दे, शेष १ बचे तो लाभ, २ में खेद, ३ में सुख, ४ में भोजन, ५ में धन, पूर्ण भाग लग जाने पर अशुभ जानना चाहिए। यह गर्ग मुनि का वचन है ॥२४-२५॥

पिगलशब्दशकुनविचारः—

उल्लासः किल्किले चैव चिल्पिल्यां भोजनं तथा ।

बन्धनं खिट्खिट् स्यात् कुक्कुशब्दे महद्भयम् ॥२६॥

यात्रा में किल्किल शब्द होने से उल्लास, चिल्पिल शब्द होने से भोजन की प्राप्ति, खिट्खिट् शब्द होने से बन्धन और कुक्कु शब्द होने से महा-भय होता है ॥ २६ ॥

छिककानुसारेण पादच्छायाशकुनविचारः—

बुधश्छिक्करवं श्रुत्वा पादच्छायां च कारयेत् ।

त्रयोदशयुतां कृत्वा चाऽष्टभिर्भागमाहरेत् ॥२७॥

लाभः सिद्धिर्हानिः शोको भयं श्रीदुःखनिष्फले ।

क्रमेणैवं फलं ज्ञेयं गर्गेण च यथोदितम् ॥२८॥

छींक के शब्द को सुन, अपने पैर की छाया नापकर १३ मिलावे, ८ से भाग दे, जो शेष रहे उसका फल इस प्रकार होता है—१ बचने से लाभ, २ से सिद्धि, ३ से हानि, ४ से शोक, ५ से भय, ६ से लक्ष्मी, ७ से दुःख और ८ के बचने से निष्फल, ऐसा गर्गमुनि का वचन है ॥२७-२८ ॥

छिककाशकुनम्—

छिककाफलं प्रवक्ष्यामि पूर्वस्यामशुभं फलम् ।

आग्नेय्यां शोकदुःखं स्यादरिष्टं दक्षिणे तथा ॥२९॥

नैऋत्यां च शुभं प्रोक्तं पश्चिमे मिष्टभक्षणम् ।

वायव्ये धनलाभस्तु उत्तरे कलहस्तथा ॥३०॥

ईशान्यां च शुभं ज्ञेयमात्मछिकका महद्भयम् ।

ऊर्ध्वं चैव शुभं ज्ञेयं मध्ये चैव महद्भयम् ॥३१॥

आसने शयने चैव दाने चैव तु भोजने ॥३२॥

वामाङ्गे पृष्ठतश्चैव षट् छिककाश्च शुभावहाः ॥३३॥

छींक का फल कहते हैं । पूर्व की छींक अशुभ है, आग्नेय की छींक शोक और दुःख देती है, दक्षिण की कष्ट देती है, नैऋत्य की शुभ है, पश्चिम की मधुर भोजन कराती है, वायव्य का धन देती है, उत्तर की क्लेश कारिणी, ईशान्य का शुभ, अपनी छींक अधिक भयदायक, ऊपर की

छोंक शुभ, मध्य की अधिक भयदायक, आसन पर बैठने के समय, सोते समय, दान के समय, भोजन करते समय, बाईं ओर की या पीछे की छोंक शुभ होती है ॥ २६-३३ ॥

पल्लीशब्दशकुनविचारः—

वित्तं ब्रह्मणि कार्यसिद्धिमतुलां शुके हुताशे भयं
याम्ये मित्रवधः क्षयश्च नैऋते लाभं समुद्रालये ।
वायव्यां वरमिष्टमन्नमशनं सौम्येऽर्थलाभस्तथा
ईशान्यां गृहमेधिकायमतुलं सर्वत्र भूमौ भयम् ॥३४॥

यात्रा काल में पूर्व में पल्ली का शब्द हो तो ब्रह्म सम्बन्धी कार्य में विशेष धन मिले । आग्नेय में शब्द होने से अग्निभय, दक्षिण में मित्रवध, नैऋत्य में क्षय, पश्चिम में लाभ, वायव्य में सुन्दर तथा मधुर भोजन की प्राप्ति, उत्तर में धन की प्राप्ति, ईशान्य में अर्थ-सिद्धि और भूमि में पल्ली का शब्द हो तो भय उत्पन्न करे ॥ ३४ ॥

पल्लीपतन-सरठाधिरोहणफलम्—

राज्यं तु शिरसि ज्ञेयं ललाटे बन्धुदर्शनम् ।
भ्रूमध्ये राजसम्मानमुत्तरोष्ठे धनक्षयम् ॥३५॥
अधरोष्ठे धनैश्वर्यं नासान्ते व्याधिनाशनम् ।
आयुष्यं दक्षिणे कर्णे बहुलाभस्तु वामके ॥३६॥
अक्षणोस्तु बन्धनं ज्ञेयं भुजे भूपतितुल्यता ।
राजक्षोभं तथा वामे कण्ठे शत्रुविनाशनम् ॥३७॥
स्तनद्वये च दुर्भाग्यमुदरे गुण्डनं शुभम् ।
प्रजानाशः पृष्ठदेशे जानुजङ्घे शुभावहम् ॥३८॥
करद्वये वस्त्रलाभः स्कन्धयोर्विजयी भवेत् ।
नाभौ बहुधनं प्रोक्तमूर्धोश्चैव भयादिकम् ॥३९॥
दक्षिणे मणिवन्धे च मनस्तापो धनक्षयः ।
मणिवन्धे तथा वामे कीर्तिवृद्धिधनप्रदम् ॥४०॥
नखेषु धान्यलाभं च वक्त्रे मिष्टान्नभोजनम् ।
गुल्फयोर्बन्धनं ज्ञेयं केशान्ते करणं ध्रुवम् ॥४१॥

अध्वा तु दक्षिणे पादे वामे बन्धुविनाशनम् ।
स्त्रीनाशः स्यात्पादमध्ये पादान्ते मरणं भवेत् ॥४२॥

पल्ल्याः प्रपतने ज्ञेयं सरटस्याधिरोहणे ।
यात्राद्यत्कमनुष्यस्यैतच्छुभाऽशुभसूचकम् ॥४३॥

छिपकली के गिरने और गिरगिट के चढ़ने का फल । अर्थ स्पष्ट है ॥ ३५-४३ ॥

यात्रायां दुष्टशकुनम्—

औषध्या च नियुक्तो हि धानं कृष्णं तु यद् भवेत् ।
कार्पासश्च तृणं शुष्कं शुकं गोमयमेव च ॥४४॥

औषधि के लिये जाता हुआ मनुष्य, काला धान्य, कपास, सूखे तृण और सूखा हुआ गोबर, प्रस्थान के समय यदि सामने से आवे तो अशुभ जाने ॥ ४४ ॥

ईन्धनं च तथाऽङ्गारं गुडसर्पिस्तथाऽशुभम् ।
अभ्यक्तो मलिनो मन्दस्तथा नग्नश्च मानवः ॥४५॥

ईन्धन, जलती हुई आग, गुड़, घी, शरीर में तेल लगाये मलिन, मन्द और नंगा मनुष्य, प्रस्थान के समय सम्मुख आने से अशुभ जानो ॥४५॥

मुक्तकेशो रुजार्तश्च काषायाम्बरधारिणः ।
उन्मत्तः कथितोऽसत्यो दीनो वाऽथ नपुंसकः ॥४६॥

विखरे वालों वाला, रोगी, गेरुआ वस्त्र पहने, उन्मत्त, कंथरी लिये, पापी, दरिद्र और नपुंसक मनुष्य प्रस्थान के समय सामने आने से अशुभ जानो ॥ ४६ ॥

अयः पङ्कस्तथा चर्म केशवन्धनमेव च ।
तथा निःसारवस्तूनि पिण्याकादि तथैव च ॥४७॥

लोहखंड, कीचड़, चर्म, केश बाँधता हुआ मनुष्य, निःसार पदार्थ और खली सामने आने से प्रस्थान के समय अशुभ जानो ॥ ४७ ॥

चाण्डालस्य शवश्चैव राजबन्धनपालकाः ।
बन्धकाः पापकर्माणो गर्भिणी स्त्री तथैव च ॥४८॥

चाण्डाल का मुर्दा, राजबन्धन का पालक, वध करने वाला, पापी और गर्भवती स्त्री के भी प्रस्थान के समय सम्मुख आने से अशुभ जानो ॥ ४८ ॥

तुषमस्मरूपालास्थि-भिन्नभाण्डानि यानि च ।

रिक्तानि चैव भाण्डानि मृतसारङ्ग एव च ॥

एवमादीनि चान्यानि ह्यप्रशस्तानि दर्शने ॥४६॥

भूसी, भस्म, खोपड़ी, टूटे एवं खाली बर्तन, मारा हुआ सारंग पक्षी आदि का प्रस्थान के समय सम्मुख आना अशुभ है ॥ ४६ ॥

क्व यासि तिष्ठ आगच्छ किं ते तत्र गतस्य तु ।

अन्यशब्दाश्च येऽनिष्टास्ते विपत्तिकरा अपि ॥५०॥

कहाँ जाते हो, ठहरो, आओ, वहाँ जाने से क्या होगा ? ऐसे अनिष्ट शब्द विपत्तिकारक जानो ॥ ५० ॥

ध्वजादौ वायसाऽऽस्थानं कव्यदानविगर्हितम् ।

स्खलनं वाहनानां च वस्त्रसङ्गस्तथैव च ॥५१॥

ध्वजा पर काक का बैठना, कव्याग्निदान, वाहनों का गिरना और वस्त्रका किसी पदार्थ में उलझना आदि को यात्रा और प्रस्थान के समय अशुभ जानो ॥ ५१ ॥

दुष्टशकुनपरिहारः—

दुष्टे निमित्ते प्रथमे अमङ्गल्यविनाशनम् ।

केशवं पूजयेद्विद्वान् स्तवेन अधुषुदनम् ॥५२॥

यात्रा के समय उपर्युक्त अपकुशनों में जो पहले अमंगल दृष्टि आवे तो नाशकारक जानो । इसके दोष को दूर करने के लिये विष्णुपूजन और विद्वान् से विष्णुसहस्रनाम का पाठ करावे ॥ ५२ ॥

द्वितीये च ततो दृष्टो प्रतीपः प्रविशेद् गृहम् ।

अथेष्टानि प्रवक्ष्यामि मङ्गलानि तथाऽनघ ॥५३॥

जो दूसरी बार भी अपकुशन दृष्टि में आवे तो घर को लौट जाय अर्थात् यात्रा बन्द कर दे । अब मंगलकारक शकुनों को कहते हैं ॥५३॥

यात्रासमये शुभशकुनविचारः—

प्रशस्तो वायशब्दश्च भिन्ने भेर्यशुभावहः ।

पुरतश्च इहागच्छ गच्छ पश्चाद् त्रिपर्ययः ॥५४॥

यात्रा समय में बाजों का शब्द शुभ, परन्तु फूटे बाजों का शब्द अशुभ है । सम्मुख से कोई 'आओ' ऐसा कहे तो शुभ और पिछाड़ी से 'जाओ' कहे तो शुभ और आगे से कहने पर अशुभ जानो ॥ ५४ ॥

श्वेतपुष्टः सुमनसः पूणकुम्भस्तथैव च ।

जलजाः पक्षिणश्चैव मांसं मत्स्यश्च पार्थिव ॥५५॥

यात्रा के समय सफेद पुष्ट फूल जलपूर्ण कुंभ, जल का पक्षी, मछली और मांस को शुभ जानो ॥ ५५ ॥

गावस्तुरंगमो नागो वृद्धः एकः पशुस्त्वजा ।

त्रिदशाः सुहृदो विप्रा ज्वलितश्च हुताशनः ॥५६॥

गौ, घोड़ा, हाथी, वृद्ध, एक पशु, बकरी, देवमूर्ति मित्र, ब्राह्मण, जलती अग्नि इनका यात्रा के समय दर्शन हो तो शुभ शकुन जानना चाहिए ॥ ५६ ॥

गणिका च महाभाग दूर्वाश्चाद्राश्च मोमयम् ।

रुक्मं रौप्यं च ताम्रं च सर्वरत्नानि चाप्यथ ॥५७॥

गणिका, हरो दूध, गोबर, सोना, चाँदी, ताम्र और सब प्रकार के रत्न यात्रा के समय सामने आने से शुभ जानो ॥ ५७ ॥

औषधानि च सर्वज्ञो यवाः सर्वार्थकास्तथा ।

खड्गपात्रपताकाश्च मृत्तिकायुधपीठकम् ॥५८॥

औषधि, सबज्ञ पुरुष, यव, सफेद सरसो खड्ग, पताका, मृत्तिका, आयुध, आसन इन्हें यात्रा समय में शुभ जानो ॥ ५८ ॥

राजलिंगानि सर्वाणि शवं रुदितवर्जितम् ।

घृतं दधि पयश्चैव फलानि विविधानि च ॥५९॥

सब भाँति के राजचिह्न, रुदन रहित मृतक, घी, दही, दूध और अनेक प्रकार के फलों को यात्रा समय में शुभ जानो ॥ ५९ ॥

स्वस्तिवृद्धिनिनादश्च नन्दावर्तश्च कौस्तुभः ।

वादित्राणां शुभः शब्दो गम्भीरः सुमनोहरः ॥६०॥

अपने लिये आशीर्वाद का शब्द, कौस्तुभ गणिके के साथ नन्दावर्तमणि, वाजा तथा उत्तम मनोहर शब्द यात्रा में विघ्ननाशक जानो ॥ ६० ॥

गांधारपड्जऋषभा ये गीताः सुस्वराः स्वराः ।

वायुः निःशबरोऽनुष्णः सर्वविघ्ननिनाशकृत् ॥६१॥

गांधार, पड्ज, ऋषभ, इन स्वरो में सुन्दर ढंग से गाते हुए गीत और मधुर शीतल पवन यात्रा में विघ्ननाशक जानो ॥ ६१ ॥

प्रतिलोमस्तथा नीचो विज्ञेयो भयकृद्द्विजः ।

अनुकूलो मृदुः स्निग्धः सुखस्पर्शः सुखावहः ॥६२॥

वर्णसंकर, नीच और भयानक पक्षी को भयदायक जानो । अपने अनुकूल पदार्थ, मृदु, स्निग्ध और सुखस्पर्श पदार्थ को सुखदा जानो ॥ ६२ ॥

शस्तान्येतानि धर्मज्ञ यत्र स्यान्मनसः प्रियम् ।

मनसस्तुष्टिरेवात्र परमं जयलक्षणम् ॥६३॥

हे धर्मज्ञ ! उपर्युक्त शकुनों को शुभ जानो । अपनी प्रिय वस्तु का दर्शन श्रेष्ठ और मन को प्रसन्न करने वाली वस्तु का दर्शन जयदायक जानो ॥ ६३ ॥

चित्तोत्सवत्वं मनसः प्रहर्षः शुभस्य लाभो विजयप्रवादः ।

मांगल्यलब्धिः श्रृणं च राज्ञा ज्ञेयानि नित्यं विजयावहानि ॥६४॥

यात्रा के समय मन में हर्ष, शुभ वस्तु का लाभ, विजयवाद और मंगल-प्राप्ति का श्रवण शुभ जानो ॥ ६४ ॥

क्षेमङ्करी नीलकण्ठाः श्वोलूकखरजम्बुकाः ।

प्रस्थाने वामतः श्रेष्ठा प्रवेशे च दक्षिणाः शुभाः ॥६५॥

मोर, कुत्ता, उलूक पक्षी, गधा और जंबुक प्रस्थान के समय बायें हों तो यात्रा में शुभ और प्रवेश के समय दक्षिण भाग में शुभ जानो ॥ ६५ ॥

❀ अथ प्रश्नप्रकरणम् ❀

तिथ्यादिप्रयुक्तप्रश्नः फलञ्च—

तिथिः प्रहरसंयुक्ता तारका वारभिश्चिता ।

अग्निभिस्तु हरेद्भागं शेषं सत्त्वरजस्तमाः ॥१॥

सिद्धिः तात्कालिकी सत्त्वे रजसा तु विलम्बकम् ।

तमसा निष्फलं कार्यं ज्ञातव्यं प्रश्नकोविदैः ॥२॥

जिस तिथि, वार, नक्षत्र और प्रहर में प्रश्न करे उसका उत्तर नीचे लिखे उदाहरण के अनुसार कहें ।

उदाहरण—तिथि ५, वार ३, नक्षत्र ७, प्रहर २, सब जोड़ने से १७ हुआ और ३ से भाग देने पर लब्धि ५, शेष २ बचा, अतः दूसरा रज तत्त्व हुआ । इसका फल कार्य में विलम्ब होता है । इस प्रकार से शून्य बचे तो निष्फल होता है, १ बचने से सत्त्व, कार्यसिद्धि इसका फल होता है ॥ १-२ ॥

स्वच्छायोपरि प्रश्नः—

आत्मच्छाया त्रिगुणिता त्रयोदशसमन्विता ।
वसुभिश्च हरेद्भागं शेषं चैव शुभाऽशुभम् ॥३॥
लाभश्चैके त्रिके सिद्धिवृद्धिः पञ्चमसप्तमे ।
द्वयोर्हानिश्चतुःशोकं षष्ठाष्टे मरणं ध्रुवम् ॥४॥

अपनो छाया को तिगुनीकर उसमें १३ मिलाकर, ८ का भाग दे, जो शेष
वचने उसका फल चक्र में देखे ॥ ३-४ ॥

शेष	१	२	३	४	५	६	७	८
फल	लाभ	हानि	सिद्धि	शोक	वृद्धि	मरण	वृद्धि	मरण

पन्थाप्रश्नाः—

तिथिः प्रहरसंयुक्ता तारका वारमिश्रिता ।
सप्तभिश्च हरेद्भागं शेषं तु फलमादिशेत् ॥५॥
वर्तमानं च नक्षत्रं गणयेत्कृत्तिकादितः ।
सप्तभिश्च हरेद्भागं शेषं प्रश्नस्य लक्षणम् ॥६॥
प्रश्नाक्षरं रुद्रयुक्तं सप्तभिर्भाजितं तथा ।
फलमेवं क्रमाज्ज्ञेयं सर्वेषां हि शुभाशुभम् ॥७॥

तिथि, वार, नक्षत्र और प्रहर का योग करके सात से भाग दे, शेष वचने
के अनुसार फल जाने । दूसरी रीति से कृत्तिका से वर्तमान नक्षत्र तक गिन-
कर सात से भाग दे, जो शेष वचने उनके अनुसार फल जाने ॥ ५-७ ॥

फलम्—

एकशेषे भवेत्स्थाने द्वितीये पथि वर्तते ।
तृतीयेऽप्यर्द्धमार्गे तु चतुर्थे ग्राममादिशेत् ॥८॥
पञ्चमे पुनरावृत्तिः षष्ठे व्याधियुतं वदेत् ।
शून्यं ज्ञेयं सप्तमे हि चैतत्प्रश्नस्य लक्षणम् ॥९॥

१ वचने से स्थान ही में जाने, २ वचने से मार्ग में, ३ वचने से अर्ध मार्ग
में, ४ वचने से ग्राम में, ५ वचने से मार्ग से लौट गया, ६ वचने से रोगी
और शून्य वचने से मृत्यु जानो ॥ ८-९ ॥

द्वितीयप्रकारः—

धनसहजगतौ सितामरेज्यौ कथयेच्चागमनं प्रवासपुंसाम् ।
तनुहिबुक्कगताविमौ तद्वत् भटिति नृणां कुरुते गृहप्रवेशम् ॥१०॥

प्रश्न लग्न से दूसरे स्थान में शुक्र, तीसरे स्थान में गुरु या लग्न से शुक्र,
चौथे स्थान में गुरु हों तो परदेशी शीघ्र आयेगा ऐसा जानो ॥ १० ॥

कार्याकार्यप्रश्नफलम्—

दिशाप्रहरसंयुक्ता तारका वारमिश्रिता ।
अष्टभिस्तु हरेद्भागं शेषं प्रश्नस्य लक्षणम् ॥११॥
पञ्चके त्वरिता सिद्धिः षट्चतुर्थे दिनत्रयम् ।
त्रिसप्तके विलम्बश्च द्वौ चाष्टौ न च सिद्धिदौ ॥१२॥

प्रश्न करने वाले का मुख जिस दिशा को हो वह दिशा, प्रहर, वार और
नक्षत्र संख्या को एकत्र कर आठ का भाग दे, जो शेष बचे उनसे शुभाशुभ
फल जाने । १ या ५ शेष बचे तो शीघ्र कार्य सिद्धि हो, ६ या ४ बचे तो
३ दिन में कार्य सिद्धि, ३ या ७ बचे तो विलम्ब, १ या आठ बचे तो कार्य
नहीं होगा ॥ ११-१२ ॥

अंकप्रश्नः, फलञ्च—

अंकं द्विगुणितं कृत्वा फलनामाक्षरैर्युतम् ।
त्रयोदशयुतं कृत्वा नवभिर्भागमाहरेत् ॥१३॥
एके हि धनवृद्धिश्च द्वितीये च धनक्षयः ।
तृतीये क्षेममारोग्यं चतुर्थे व्याधिरेव हि ॥१४॥
स्त्रीलाभः पञ्चशेषे स्यात्षष्ठे बन्धुविनाशनम् ।
सप्तमे ईप्सिता सिद्धिरष्टमे मरणं ध्रुवम् ॥१५॥
नवमे राज्यसम्प्राप्तिर्गणेशस्य वचनं यथा ॥१६॥

जितने अंक का नाम हो, उन अंकों को दूना कर फल और नाम के
अक्षरों को मिलावे, फिर १३ जोड़कर ९ का भाग दे, जो शेष बचे उसका
फल कहे । १ से धनवृद्धि, २ से धनक्षय, ३ से आरोग्य, ४ से व्याधि, ५ से
स्त्री लाभ, ६ से बन्धुनाश, ७ से कार्यसिद्धि, ८ से मरण, ९ से राज्य-प्राप्ति,
यह गर्ग मुनि का वचन है ॥ १३-१६ ॥

नवग्रहात्मकं यन्त्रं कृत्वा प्रश्नं निरीक्षयेत् ।
फलं पूर्वोक्तमेवात्र द्रष्टव्यं प्रश्नकोविदैः ॥१७॥

९ कोठों का चक्र बनाकर उसमें देखे जो अंक आवे उसका
फल पूर्वोक्त प्रकार से जाने ॥१७॥

४	३	८
९	५	१
२	७	६

अन्यमतेन -

सप्तत्रयाङ्के कथयन्ति वार्ता नवैकपञ्च त्वरितं वदन्ति ।
अष्टौ द्वितीयेन हि कार्यसिद्धिः साश्च वेदा घटिकात्रयं च ॥१८॥

पूर्वोक्त कथित अंकों पर उँगली रखकर प्रश्न विचारे, परन्तु फल भिन्न-
भिन्न रीति से कहे अर्थात् शेष ७ वा ३ रहे तो वार्ता करता जानो, ९।१।५
बचे तो शीघ्र कार्य होगा, ८।२ बचे तो कार्य नहीं होगा, ६।४ बचे तो तीन
वड़ी में कार्य होगा ऐसा कहें ॥१८॥

वारनक्षत्रप्रयुक्तपन्थाप्रश्नः—

बुधे चन्द्रे भवेत् मार्ग समीपे गुरुशुक्रयोः ।
रवौ भौमे तथा दूरे शनौ च परिपीड्यते ॥१९॥
निर्जीवाः सप्त ऋक्षाणि सजीवा द्वादशस्मृताः ।
व्याधिता नवऋक्षाणि सूर्यधिष्ण्यान्तु चन्द्रभम् ॥२०॥

बुध, चन्द्रवार को प्रश्न करने से यात्रो को मार्ग चलता जानो । गुरु शुक्र
को प्रश्न करने से समीप आया जानो । रवि और भौम को दूर जानो और
शनि को पीड़ायुक्त जानो । सूर्यनक्षत्र से चन्द्रनक्षत्र पर्यन्त लिखने के क्रम से
प्रथम ७ नक्षत्र पर्यन्त चन्द्रमा आवे तो निर्जीव और द्वितीय १२ नक्षत्र तक
चन्द्रमा आवे तो जीवित जानो । तृतीय ९ नक्षत्र पर्यन्त चन्द्र आवे तो रोगी
जानो । इस प्रकार पन्था प्रश्न कहना चाहिये ॥१९--२०॥

नष्टवस्तु प्रश्नः—

तिथिवारं च नक्षत्रं लग्नं वह्निविमिश्रितम् ।
पञ्चभिस्तु हरेद्भागं शेषं तत्त्वं विनिर्दिशेत् ॥२१॥

फलम्—

पृथिव्यां तु स्थिरं ज्ञेयमसु व्योम्नि न लभ्यते ।
तेजस्तु राजसाज्ज्ञेयं वायौ शौकं विनिर्दिशेत् ॥२२॥

प्रश्न की तिथि, वार, नक्षत्र और लग्न जोड़ ३ मिलाकर, ५ का भाग दे शेष १ बचे तो पृथ्वी में, २ बचे तो जल में परन्तु मिले नहीं। ३ बचे तो आकाश में यह भी मिले नहीं, ४ बचे तो तेज में, यह राज्य में गई जानो, ५ बचे तो वायु में इसमें शोकफल जानो ॥२१-२२॥

गर्भिणीप्रश्नः—

तत्प्रश्नलग्ने रविजीवभौमे तृतीयभूमृन्नवपञ्चमे च ।

गर्भः पुमान्वै ऋषिभिः प्रणीतश्चाऽन्यग्रहे स्त्री विबुधैः प्रणीताः ॥२३॥

गर्भिणी जिस लग्न में प्रश्न करे उसी लग्न से प्रश्न कहे। लग्न से तृतीय, सप्तम, नवम, पञ्चम स्थान में रवि, भौम, गुरु स्थित हों तो पुत्र हो और इन्हीं स्थानों में अन्य ग्रह पड़े हों तो कन्या हो ॥२३॥

मुष्टिप्रश्नम्—

मेघे रक्तं वृषे पीतं मिथुने नीलवर्णकम् ।

कर्के च पाण्डुरं ज्ञेयं सिंहे धूमं प्रकीर्तितम् ॥२४॥

कन्यायां नीलमिश्रं तु तुलायां पीतमिश्रितम् ।

वृश्चिके ताम्रमिश्रं च पापे पीतविमिश्रितम् ॥२५॥

नक्रे कुम्भे कृष्णवर्णं मीने पीतं वदेत्सुधीः ॥२६॥

प्रश्नकर्ता की मुट्टी की वस्तु बताने की रीति यह है। मेघ लग्न में प्रश्न होने से लाल रंग की वस्तु मुट्टी में है, वृष में होने से पीत, मिथुन में होने से नीली, कर्क में पाण्डुर रंग, सिंह में धुमिलो, कन्या में नील मिश्रित, वृश्चिक में ताम्रवर्ण मिश्रित, धनु में पीत मिश्रित, मकर कुम्भ में लोहमय अर्थात् काली और मीन लग्न में प्रश्न होने से पीली वस्तु जानो ॥२४-२६॥

लग्नबलेन मनश्चिन्तितप्रश्नः—

मेघे च द्विपदां चिंता वृषे चिंता चतुष्पदाम् ।

मिथुने गर्भचिंता च व्यवसायस्य कर्कटे ॥२७॥

सिंहे च जीवचिंता स्यात्कन्यायां च स्त्रियास्तथा ।

तुलायां धनचिंता च व्याधिचिंता च वृश्चिके ॥२८॥

चापे च धनचिंता स्यान्मकरे शत्रुचिंतनम् ।

कुम्भे स्थानस्य चिंता स्यान्माने चिंता च दैवकी ॥२९॥

मेघ लग्न में प्रश्न करने से मनुष्य का चिन्ता जानो। वृष में गाय, भैंस की, मिथुन में गर्भ की, कर्क में व्यापार की, सिंह में जोव की, कन्या में स्त्री

की, तुला में धन की, वृश्चिक में रोग की, धनु में धन की, मकर में शत्रु की, कुम्भ में स्थान की, मीन में देवता, भूत, पिशाचादि बाहरी बाधा की चिन्ता जानौ ॥२७-२९॥

संज्ञानुसारेण लग्ननामानि --

धातुमूलं जीवश्चरस्थिरद्विस्वभावश्च ।
मेषादयः क्रमेणैव ज्ञातव्याः प्रश्नकोविदैः ॥३०॥

मेषादि बारह लग्नों के नाम की दो-दो संज्ञायें हैं। धातु और चर मेष लग्न की संज्ञा। मूल स्थिर, वृष की, जीव द्विस्वभाव, कन्या की। धातु, चर, मकर को। मूल, स्थिर, कुम्भ की और जीव तथा द्विस्वभाव मोन की संज्ञा जानो ॥३०॥

अंकप्रश्नम् —

अष्टोत्तरशताऽङ्केषु प्रष्टा स्वेकं वदेल्लिखेत् ।
तस्मिन् द्वादशभिर्भक्ते शेषं चैव शुभाशुभम् ॥३१॥

फलम् —

एके दुर्गासप्तके वै विलम्बं नागे तुर्ये दिक्षु भृतेषु नाशः ।
रुद्रे सिद्धिर्युग्मके वृद्धिरुक्ता शीघ्रं कार्यं स्यात्त्रिषड्द्वादशेषु ॥३२॥

पृच्छक से एक सौ आठ अंकों में से एक अंक का नाम लिखावे वा कह-
छावे और उसमें बारह का भाग दे, जो शेष बचे उससे फल कहे—१।७।९
बचने से देर में काम होगा, ८।४।१०।५ बचने से नाश, ११ बचने से सिद्धि,
२ बचने से वृद्धि, ३।६।१२ बचने से शीघ्र कार्य होगा, ऐसा कहे ॥३१-३२॥

रोगिणां प्रश्नः—

तिथिवारं च नक्षत्रं लग्नं प्रहरमेकतः ।
अष्टभिस्तु हरेद्भागं शेषे तु फलमादिशेत् ॥३३॥

फलम् —

हयाग्नौ देवताबाधा, पित्रोर्वै नेत्रदन्तिषु ।
पृचतुर्षु भूतबाधा, न बाधा एकपञ्चके ॥३४॥

तिथि, वार, नक्षत्र, प्रहर और लग्न को एकत्र कर ८ का भाग दे, शेष
जो बचे उससे फल कहे। ७ वा ६ बचने से देवता की बाधा, २।८ से पितरों
की, ६।४ से भूत की, १।५ बचने से किसी की भी बाधा मत जानो ॥३३-३४॥

केवललग्नोपरि प्रश्नः—

मेघे च देवदोषः स्याद् वृषे दोषश्च पैत्रिकः ।
 मिथुने शाकिनीदोषः कर्कटे भूतदोषकः ॥३५॥
 सिंहे सहोदराणां वै कन्यायां कुलमातृजः ।
 तुले दोषश्चण्डिकायां नाडीदोषो हि वृश्चिके ॥३६॥
 चापे च यक्षिणीपीडा मकरे ग्रामदैवतात् ।
 अपुत्रा दृष्टिजः कुम्भे मीने आकाशगामिनः ॥३७॥

मेघ लग्न में रोगी के प्रश्न करने से देवी का दोष, वृष में नितृदोष, मिथुन में शाकिनी, कर्क में भूत, सिंह में भाइयों का, कन्या में कुल देवता का, तुला में चण्डिका का, वृश्चिक में नाडी दोष, धनु में यक्षिणी दोष, मकर में ग्राम देवता, कुम्भ में सूर्य को दृष्टि से अपुत्री और मीन लग्न में रोगी के प्रश्न करने से आकाशगामियों का दोष जानो ॥३५-३७॥

मेघफलम्—

आषाढस्याऽसिते पक्षे दशम्यादिदिनत्रये ।
 रोहिणी कालमाख्याति सुखदुर्भिक्षलक्षणम् ॥३८॥
 रात्रावेव निरभ्रं स्यात्प्रभाते मेघडम्बरम् ।
 मध्याह्ने जलविंदुः स्यात्तदा दुर्भिक्षकारणम् ॥३९॥

आषाढ के कृष्णपक्ष में दशमी, एकादशी और द्वादशी तिथि को, रोहिणी नक्षत्र होने से क्रमशः सुभिक्ष, मध्य और दुर्भिक्ष जानो। रात्रि मेघ रहित होवे, प्रातःकाल मेघ गर्जे और मध्याह्न में बूँदें पड़े तो उस सम्बत्सर में महर्घता जानो ॥३८-३९॥

जललग्नम्—

कुम्भकर्कवृषा मीनमकरौ वृश्चिकस्तुला ।
 जललग्नानि चोक्तानि लग्नेष्वेतेषु सूर्यभम् ।
 भवत्येव तदा वृष्टिर्जातिव्या गणकोत्तमैः ॥ ४० ॥

कुम्भ, कर्क, वृष, मीन, मकर, वृश्चिक और तुला जल लग्न हैं। इनमें सूर्य नक्षत्र के मिलने से वर्षा होती है ॥४०॥

जलदनक्षत्राणि—

अश्विनीमृगपुष्येषु पूषाविष्णुमघासु च ।
स्वात्यां प्रविशते भानुर्वर्षते नात्र संशयः ॥४१॥

अश्विनी, मृगशिरा, पुष्य, रेवती, श्रवण, मघा और स्वाती नक्षत्र में सूर्य के प्रवेश करने पर अधिक वर्षा होती है ॥ ४१ ॥

स्त्री-नपुंसक-पुरुषनक्षत्राणि—

आर्द्रादिदशकं स्त्रीणां विशाखादि-त्रिनपुंसकम् ।
मूलाच्चतुर्दशं पुंसां नक्षत्राणि क्रमात् बुधैः ॥४२॥
वायुर्नपुंसके भे च स्त्रीणां भे चाभ्रदशनम् ।
स्त्रीणां पुरुषसंयोगे वृष्टिर्भवति निश्चितम् ॥४३॥

आर्द्रा से दश नक्षत्र (आ०, पुन०, पु०, श्ले०, मघा, पू० फा०, उ० फा०, हस्त, चि०, स्वाती) स्त्री-संज्ञक हैं, विशाखा से तीन नक्षत्र (वि०, अनु०, ज्ये०) नपुंसक हैं और मूल से चौदह नक्षत्र (मू०, पू० षा०, उ० षा०, श्र०, ध०, श०, पू० भा०, उ० भा०, रेवती, अ०, भ०, कृ०, रो०, मृग०) पुरुष संज्ञक हैं। नपुंसक नक्षत्र में स्त्री नक्षत्र मिले तो मेघ दर्शन हो और स्त्री-पुरुष नक्षत्रों के योग से अवश्य वर्षा होती है ॥ ४२-४३ ॥

सूर्यर्क्षाणि चन्द्रर्क्षाणि च—

अश्विन्यादित्रयं चैव आर्द्रादिः पञ्चकं तथा ।
पूर्वाषाढादि चत्वारि चोत्तरारेवतीद्वयम् ॥
उक्तानि शशिभान्यन्यत् प्रोच्यते सूर्यभं तथा ॥४४॥
रोहिणी च मृगश्चैव पूर्वाफाल्गुकाद्वयम्
नक्षत्राणि करात् सप्त वारुणाद्वितये तथा ।
सूर्ये सूर्ये भवेद्वायुश्चन्द्रे चन्द्रे न वर्षति
चन्द्रार्कयोर्भवेद्योगस्तदा वर्षति मेघराट् ॥४५॥

अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वाषाढ, उत्तराषाढ, श्रवण, धनिष्ठा, उत्तरा और रेवती को चन्द्रनक्षत्र, शेष नक्षत्रों को सूर्यनक्षत्र जानो। (फल) िन का नक्षत्र और सूर्यनक्षत्र जो दोनों चन्द्र के हों तो मेघ नहीं वर्षे, जो चन्द्र और सूर्यनक्षत्र का योग हो तो अच्छी वर्षा होवे ॥ ४४-४५ ॥

पशुविषये प्रश्नः—

द्युमणिभान्नवभेषु वने पशुस्तदनु पङ्क्तु च कर्णपथे स्थितम् ।

अचलभेषु गतं गृहमागतं द्वयगतमेव मृतं त्रिषु चोच्यते ॥४६॥

सूर्य के नक्षत्र से वर्तमान दिन तक की नक्षत्र संख्या ९वें हो तो पशु को वन में जाने, छूटे होने से मार्ग में, सातवें होने से घर आया जाने, दूसरे होने से पशु नहीं आयेगा और सूर्य के नक्षत्र से वर्तमान नक्षत्र तीसरे होने से पशु की मृत्यु हो गई ऐसा जानो ॥ ४६ ॥

राज्यभंगादियोगः—

यदि भवति कदाचिच्चाऽश्विनी यद्यमायां

शनिरविकुजवारे स्वातिरायुष्ययोगे ।

गगनचरपशूनां जंगमस्थावराणां

नृपतिजनविनाशो राज्यभंगस्तथोक्तः ॥४७॥

शनि, रवि या भौमवार की अमावस्या को अश्विनी या स्वाती नक्षत्र एवं आयुष्मान् योग के होने से पक्षी, पशु, जंगम, स्थावर, राजा और प्रजा का नाश जाने । इस अशुभ योग के पड़ने से राजभङ्ग योग होता है ॥ ४७ ॥

सूर्य, चन्द्र, मंडलम्—

रविशशिपरिवेपे पूर्वयामे च पीडा

रविशशिपरिवेपे मध्ययामे च वृष्टिः ।

रविशशिपरिवेपे धान्यनाशस्तृतीये

रविशशिपरिवेपे राज्यभङ्गश्चतुर्थे ॥४८॥

रवि का अथवा चन्द्र का मंडल प्रथम प्रहर में होने से मनुष्य को पीडा, दूसरे प्रहर में होने से वर्षा, तीसरे प्रहर में होने से धान्य का नाश, चौथे प्रहर में होने से राजभङ्ग होता है ॥ ४८ ॥

❀ अथ सामुद्रिकाध्यायः ❀

अथोर्ध्वदेशे रेखाफलम्—

जनने प्रबलो यस्य राजयोगो भवेद्यदि ।

करे वा चरणेऽवश्यं राजचिह्नं प्रजायते ॥४९॥

अनामामूलगा रेखा सैत्र पुण्याभिधा मता ।

मध्यमाङ्गुलिमारभ्य मणिबन्धान्तमागता ॥५०॥

सोर्ध्वरेखा विशेषेण राज्यलाभकरी भवेत् ।

खण्डिता दुष्टफलदा क्षीणा क्षीणफलप्रदा ॥५१॥

जिसकी जन्मकुंडली में कोई प्रबल राजयोग होता है उस मनुष्य के हाथ, पाँव आदि अंगों में कोई एक न एक राज-चिह्न अवश्य होगा । अनामिका उँगली की जड़ में जो रेखा होती है, उसे पुण्या रेखा कहते हैं और जो मध्यमा (विचली) उँगली के नीचे से आरंभ कर मणिबंध तक खड़ी रेखा होती है, उसे ऊर्ध्वरेखा कहते हैं । यह ऊर्ध्वरेखा विशेष कर राज्यलाभ कराती है और यह रेखा यदि खण्डित हो तब दुःख देती है और यह रेखा क्षीण, पतली वा अपूर्ण हो तब यह रेखा क्षीण फल को देती है ॥ ४९-५१ ॥

अथ यवाकारचिह्नफलम्

अङ्गुष्ठमध्ये पुरुषस्य यस्य विराजते चारु यवो यशस्वी ।
स्ववंशभूषा सहितो विभूषा योपाजनैरर्थगणैश्च मर्त्यः ॥५२॥

जिस मनुष्य के अँगूठे के मध्य में यव का चिह्न होता है वह मनुष्य बड़ा यशस्वी, स्ववंश का भूषण और अनेक स्त्री, भृत्यगण एवं द्रव्यों से संयुक्त होता है ॥ ५२ ॥

अथ राजचिह्नम्—

वैसारणो वा तपवारणो वा चेद्वारणो दक्षिणपाणिमध्ये ।
सरोवरं वाऽङ्कुश एव यस्य वीणा च राजा भुवि जायते सः ॥५३॥

जिसके दक्षिण हस्त में मछली, छत्र अथवा हाथी, तालाब, अंकुश, वीणा इनमें से कोई चिह्न हो तो वह मनुष्य भूमिपति (राजा) होता है ॥ ५३ ॥

मुशलशैलकृपाणह्लाङ्कितं करतलं किल यस्य स वित्तपः ।
कुसुममालिकया फलमीदृशं नृपतिरेव नृपात्मभुवो यदा ॥५४॥

जिसके हाथ में मुशल, पर्वत, खड्ग, हल और पुष्प माला, इनमें से कोई एक चिह्न हो तो वह मनुष्य धनवान् होता है और ये योग यदि किसी राज-कुमार के हों तो वह अवश्य ही राजा होता है ॥ ५४ ॥

अथ लक्ष्मीप्राप्तिचिह्नम्—

करतलेऽपि च पादतले नृणां तुरगपङ्कजचापरथाङ्गवत् ।
ध्वजरथासनदोलिक्रिया समं भवति लक्ष्मी रमापरमालये ॥५५॥

जिस मनुष्य के हाथ में या पाँव में घोड़ा, कमल, धनुष, चक्र, ध्वज, रथ, आसन और डोलो, इनमें से कोई चिह्न हो तो उस पुरुष के घर में पूर्ण लक्ष्मी होती है ॥ ५५ ॥

अथाऽखण्डलक्ष्मीचिह्नम्—

कुम्भाः स्तम्भो वा तुरङ्गो मृदङ्गः पाणावङ्गौ वा द्रुमो यस्य पुंसः ।

चञ्चदण्डोऽखण्डलक्ष्म्या परीतः किंवा सोऽयं पण्डितः शौडिको वा ॥

घट, मृदङ्ग, वृक्ष और दण्ड इनमें से कोई चिह्न जिस मनुष्य की हथेली या पैर के तलवे में होता है वह पण्डित हो अथवा मद्य बेचने वाला हो । हाथ के तलवे में हो तो भी अखण्ड लक्ष्मी से युक्त पुरुष होता है ॥ ५६ ॥

अथोत्तमराजचिह्नम्—

विशालभालाम्बुजपत्रनेत्रः सुवृत्तमौलिः क्षितिमण्डलेशः ।

आजानुवाहुः पुरुषं तमाहुः क्षोणीभृतां मुख्यतरं महान्तः ॥ ५७ ॥

नाभिर्गंभीरा सरला च नासा वक्षःस्थलं रत्नशिलातलाभम् ।

आरक्तवर्णो मल्लु यस्य पादौ मृदू भवेतां स नृपोत्तमः स्यात् ॥ ५८ ॥

जिसका ललाट विशाल हो, कमलदल-से नेत्र हों, सुंदर गोल शिर हो, जानुपर्यंत लंबित भुजा हो वह मनुष्य भूमंडल का पालन करने वाला, राजाओं में मुख्य राजा होता है । जिसकी नाभि गंभीर हो, सीधी नासा हो, रत्नशिला के समान जिसका वक्षस्थल, पाँवों के तलवे लाल, कोमल दोनों पाँव हों वह पुरुष नृपोत्तम होता है ॥ ५७-५८ ॥

अथ करे वा पादतले वा तिललक्षणम्—

राजते करगो यस्य तिलोऽनुलघनप्रदः ।

तथा पादतले पुंसां वाहनार्थसुखप्रदः ॥ ५९ ॥

राजवंशप्रजातानां समस्तफलमीदृशम् ।

अन्येषामल्पतां याति तथा व्यक्तं सुलक्षणम् ॥ ६० ॥

जिसकी हथेली में तिल होता है वह असंख्य धन का स्वामी होता है और जिसकी दाहिनी पगतली में तिल होता है वह पुरुष अनेक उत्तमोत्तम सवारियों का सुख भोगता है । उक्त समस्त लक्षणों में यदि राजकुलोत्पन्न हो तब तो ये समस्त फल ऐसे ही होते हैं जैसे कि कहा है और अन्य किसी पुरुष के उक्त लक्षणों में-से कोई लक्षण हो तो कहे फल से न्यून फल होता है ॥ ५९-६० ॥

❀ अथ वर्षप्रवेशप्रकरणम् ❀

वर्षप्रवेश बनाने की विधि—

गताः समाः पादयुताः प्रकृतिघ्नसमागणात्
खवेदाप्तघटीयुक्ता जन्मवारादिसंयुताः ।

वर्षप्रवेशे वारादि सप्ततष्टेऽत्र निदिशेत् ॥१॥

गतवर्ष संख्या में अपना चतुर्थांश जोड़े, उसमें फिर गतवर्ष संख्या को २१ से गुणा करके ४० से भाग देने से लब्धि घटी आदि को जोड़ कर उसमें जन्म-कालिक वारादि इष्ट घटी जोड़े, उसको सात से तष्टित करने से शेष वारा-दिक वर्ष प्रवेश काल होता है ॥१॥

उदाहरण—वर्ष संख्या ३१, इसमें इसी का चतुर्थांश दिनादि ७।४५ जोड़ने से ३८।४५ । इसमें गताब्द ३१ को २१ से गुणा किया तो ६५१, इसमें ४० का भाग देकर लब्धि घटी, पल १६।१६ जोड़ने से ३९।१।१६ दिनादि में जन्मकालिक दिनादि इष्ट घटी १।४४।३५ जोड़ने से वर्षप्रवेश कालिक दिनादि इष्ट ४०।४५।५१ दिन में ७ का भाग देकर दिनादि वर्षेष्ट ५।४५।५१ हुआ अर्थात् गुरुवार के ४५ घड़ी ५१ पल पर ३२ वाँ वर्षप्रवेश होगा । उस समय में पूर्वोक्त विधि से स्पष्ट ग्रह और भावों का साधन करना चाहिए ।

इस प्रकार से वर्ष प्रवेश वारादि बनाने में वास्तव वर्ष प्रवेश काल नहीं आता है इसलिए वास्तव (सूक्ष्म) वर्ष प्रवेश काल ज्ञानार्थ प्रकार यह है ॥१॥

जन्मार्कस्य तदासन्नपंचत्यर्केण सहान्तरम् ।

कलीकृत्यार्कगत्याप्तदिनाद्येन युतो नितम् ॥२॥

तत्पंक्तिस्थं वारपूर्वं जन्मार्के चाधिकोनके ।

तद्वाराद्ये वर्षप्रवेशो विज्ञेयो गणकोत्तमैः ॥३॥

एवं मासादिनार्कभ्यां ज्ञेयौ मासद्युवेशकौ ।

राशिवृद्ध्या च मासार्को लववृद्ध्या द्युभास्करः ॥४॥

जन्मकालिक सूर्य के समान राश्यादि सूर्य जब होता है, तब वर्ष प्रवेश होता है । इसलिए वर्षपूर्ति के आसन्न समय में जन्मकालिक सूर्य के राश्यादि तुल्य या उसके आसन्न का सूर्य पञ्चाङ्ग में जिस पंक्ति में हो, उस पंक्ति के राश्यादिरवि और जन्मकालिक राश्यादिरवि के अन्तर करके कलात्मक बनाने, उसमें स्पष्ट सूर्य की गति कलाके भाग देने से जो दिनादि (दिन घटीपल) लब्धि हो उसको पंक्ति के दिनादि में, जोड़ने या घटाने से

(पंक्तिस्थसूर्य से जन्म का सूर्य अधिक हो तो जोड़ने, अल्प हो तो घटाने से) जो दिनादि हो, वही वर्ष प्रवेशकालिक स्पष्ट दिनादि समझना चाहिए, जन्म-कालिक और वर्षकालिक सूर्य राश्यादि तुल्य होते हैं। उनमें एक-एक राशि जोड़ने से, द्वितीयादि मास के रवि होते हैं। (उन मास) रवि में, एक-एक अंश जोड़ने से दिन के रवि होते हैं। तथा मास के और दिन के रवि पर से उक्त विधि से मास प्रवेशकाल और दिन प्रवेशकाल (वारादि) का ज्ञान करना चाहिए ॥२-४॥

वर्षप्रवेशकालिक तिथि का ज्ञान—

“शिवघ्नोऽब्दः स्वखाद्रीन्दुलवाह्यः खाग्निशेषितः ।

जन्मतिथ्यन्वितस्तत्र

तिथावद्प्रवेशनम् ॥५॥

गतवर्ष को ११ से गुणा करके उसमें १५० का भाग देकर लब्धि को उसी में जोड़ फिर शुक्लपक्षादि से गणना करके जन्मकालिक तिथि उसमें जोड़कर ३० का भाग देने से शेष वर्षप्रवेशकालिक तिथि होती है। तिथ्यानयन में मध्यममान होने के कारण कभी-कभी एक तिथि का अन्तर भी होता है। जिस समय में स्पष्टसूर्य जन्मकालिक स्पष्टसूर्य के बराबर हो उसे स्पष्ट वर्ष प्रवेश काल समझना चाहिए ॥५॥

उदाहरण—गत वर्ष ३१ को ११ से गुणाकर, गुणनफल ३४१ इसमें १७० का भाग देकर लब्धि २ को उसी ३४१ में जोड़कर ३४३, इसमें जन्म तिथि २५ (कृष्ण-पक्ष दशमी) जोड़कर ३६८, इसमें ३० का भाग देकर शेष ८ शुक्लपक्ष की अष्टमी हुई। अर्थात् शुक्लपक्ष की अष्टमी में वर्ष प्रवेश होगा। तिथि में कभी १ दिन का अन्तर भी हो जाता है। इसलिए उपरोक्त विधि से जो दिन आवे उस दिन में निश्चय जन्मकालिक सूर्यांश तुल्य सूर्य के अंश होते हैं। इसलिए वर्ष प्रवेश में आगत दिन को प्रामाणिक समझना चाहिए।

अब वर्षप्रवेश कालिक स्पष्ट ग्रह, तन्वादि द्वादश भाव पूर्वोक्त प्रकार से साधन करे। वर्षप्रवेश में ग्रहों के दृष्टिस्थान —

तृतीयैकादशे दृष्टिः शुभा स्यान्नवपञ्चमे ।

चतुर्थदशमे नेष्टा सप्तमैकगृहे तथा ॥६॥

परस्पर ३, ११ और ५, ९ में शुभ दृष्टि होती है। ४, १० तथा १, ७ में अशुभ दृष्टि होती है। बाकी स्थानों को ग्रह नहीं देखता है ॥६॥

वर्ष प्रवेश में मित्र शत्रु—

मित्रं त्रिकोणात्रिभवास्थितश्चेद् द्वायाष्टरिष्केषु समो ग्रहः स्यात् ।

केन्द्रेषु शत्रुः कथितो मुनीन्द्रैर्वर्षप्रवेशे फलनिर्णयाय ॥७॥

अपने स्थान मे ९, ५, ३, ११ वें स्थान में स्थित ग्रह मित्र और २, ६, ८, १२ वें स्थान में स्थित सम तथा केन्द्र १, ४, ७, १० में स्थित ग्रह शत्रु कहलाते हैं ॥ ७ ॥

मुंथहानयन—

गतवर्षागणः सैकः हतो द्वादशभिस्तथा ।

शेषराशौ बुधैर्ज्ञेया मुन्थहा जन्मलग्नतः ॥८॥

गतवर्ष में एक जोड़कर १२ के भाग देने से जो बचे जन्म लग्न से उतनी संख्यक राशि में मुंथहा होती है ॥ ८ ॥

उ०— गतवर्ष ३१ में एक जोड़कर ३२ इसमें १२ का भाग देने से शेष ८ जन्म लग्न वृश्चिक से अष्टम मिथुन में मुंथहा हुई ॥८॥

वर्षेशाधिकारी—

जन्मलग्नपतिरब्दलग्नपो मुन्थहाधिप इत्स्त्रिराशिपः ।

सूर्यराशिपतिरह्निचन्द्रमाधीश्वरो निशि विमृश्य पञ्चकम् ॥९॥

वलीय एषां तनुमीक्षमाणः स वर्षपो लग्नमनीक्षमाणः ।

नैवाब्दपो दृष्ट्यतिरेकतः स्याद्भूलस्य साम्ये विदुरेवमाद्याः ॥१०॥

१ जन्मलग्नेश, २ वर्षलग्नेश, ३ मुंथहेश, ४ त्रिराशेश तथा दिन में वर्षप्रवेश हो तो चन्द्रराशीश ५, इन पाँचों का बल विचार करके जो सबसे बली हो और लग्न को देखता हो वह वर्षेश होता है । यदि लग्न को न देखता हो तो वह वर्षेश नहीं होता । दो ग्रहों का बल यदि बराबर हो तो लग्न पर जिसकी विशेष दृष्टि हो वही वर्षेश होता है ॥ ९-१० ॥

त्रिराशीश—

त्रिराशिपाः सूर्यसिताकिंशुक्रा दिने निशीज्येन्दुबुधक्षमाजाः ।

मेषाच्चतुर्णा हरिभाद्विलोमं नित्यं परेष्वार्किंकुजेज्यचन्द्राः ॥११॥

दिन में वर्षप्रवेश हो तो मेषादिक चार राशियों में क्रम से सूर्य, शुक्र, शनि, शुक्र और रात्रि में गुरु, चन्द्र, बुध, मंगल त्रिराशिपति होते हैं । सिंहादि चार राशियों में इसका उल्टा (अर्थात् दिन वाले रात्रि में, रात्रि वाले दिन में) समझना । तथा धन, मकर, कुम्भ, मीन इन चार राशियों में दिन तथा सर्वदा क्रम से शनि, मंगल, गुरु, चन्द्रमा त्रिराशीश होते हैं ॥ ११ ॥

इष्टोच्चबलानयन—

स्वनीचोनः खगः षड्भाधिकश्चेच्चक्रतस्त्यजेत् ।
तदंशनवमो भागो ग्रहस्योच्चबलं स्मृतम् ॥१२॥

अपने नीच राशि अंश को ग्रह के राश्यादि में घटावे, शेष यदि ६ राशि से अधिक हो तो फिर उसको १२ में घटाकर अंश बनावे, उसमें ९ का भाग देने से लब्धि उच्चबल होता है ॥ १२ ॥

उदाहरण—राश्यादि स्पष्ट सूर्य १०।१५।२४।१४ में सूर्य के नीच राशि अंश ६।१० को घटाने से शेष ४।५।२४।१४ यह ६ राशि से अल्प है इसलिये इसी अंश के १२।१४ में ९ का भाग देने से लब्धि १३।५६ उच्च बल हुआ । इसी प्रकार सभी ग्रहों का उच्च बल बनाना चाहिए ॥१२॥

पञ्चवर्गीबल—

त्रिंशत्स्वभे दिंशतिरात्मतुङ्गे हद्देश्चन्द्रा दशकं दृकाणे ।
नवांशके पञ्चलवाः प्रदिष्टा विशोपका वेदलवैः प्रकल्प्या ॥१३॥
स्वस्वाधिकारोक्तबलं सुहृद्भे पादोनमर्धं समभेऽरिभेऽग्निः ।
एवं समानीय बलं तदैवये वेदोद्भृते हीनबलः शरीतः ॥१४॥
पञ्चाल्यो हीनवीर्यः स्यादधिको मध्य उच्यते ।
दशाधिको बली प्रोक्तः पञ्चवर्गीबलादिके ॥१५॥

स्वराशि में ३०, उच्च में २०, स्वहृदा में १५, स्वद्रेष्काण में १०, स्वनवांश में ५, ग्रहों का बल होता है । पाँचों बल के योग का चतुर्थांश विशोपक कहलाता है । अपने-अपने अधिकार (गृहादि) में जो बल कहा गया है उसका चतुर्थांशोन मित्र की राशि में, सम को राशि में आधा, शत्रु को राशि में चतुर्थांश, बल होता है । इस प्रकार गृहादि पञ्चवर्गीबल के योग को ४ राशि से भाग देने से ५ से अल्प हो तो ग्रह हीनबल होता है । ५ से अधिक १० के भीतर हो तो मध्यबली, १० से अधिक हो तो बली होता है ॥ १३ १५ ॥

वर्षपत्र लिखने की रीति—

आदित्यादिग्रहाः सर्वे नक्षत्राणि च राशयः ।
दीर्घमायुः प्रकुर्वन्तु यदीया वर्षपत्रिका ॥१६॥

शुभशाके १८५२ विक्रमसम्बत्सरे १९८७ सनाब्दे १९३८ चैत्रशुक्ल-
सप्तम्यां दण्डादि २९।५० मृगशिरानक्षत्रे दं० ३२।२८ सौभाग्ययोगे दं०

५१८ गरकरणे दं० ०।४८ गुरुवासरे श्रीसूर्योदयादिष्टघटचादिषु ४५।५१
धनुर्लग्नोदये शुभावलोकिते शुभसमये बाबू श्रीजगन्नाथशर्ममहोदयस्य
विजयप्रदवर्षप्रवेशः । गताब्दाः ३१ दिनमानम् ३०।१६ रात्रिमानम् २६।४४
भयात्तम् १३।३२ भभोगः ५-।४७ शुभम् ॥१६॥

जन्मलग्नम्

श. ९	७
चं. १०	रा.गु. ८
११ मं.	५
१२ कु.र.	२के.
१शु	३
६	४

वर्षलग्नम्

१०	८
११ गु.	श. ९
बु.र. १२रा	के. ६
१	३चं.गु.
२	मं४
५	५

तात्कालिक (इष्टकालिक) स्पष्टग्रहादि बनाने का उदाहरण—
प० चंद्रशुक्ल ८ शके मि० मा० ४५।१०

ग्रहादि	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	राहु
	११	×	३	११	२	१७	८	११
	१३	×	५	२६	१८	३	२७	२४
	२०	×	५१	४	१६	०	३१	११
	५९	×	३	३	१८	१९	३६	५८
गति	५९	×	१०	१३	४	७०	३	३
	०३	×	१७	२८	६	५५	४३	१

चैत्र शुक्ल ७ गुरुवार सूर्योदय से इष्ट घटी पल ४५।५१ में स्पष्ट ग्रह बनाना है तो पञ्चांग में समीप की पंक्ति ८ अष्टमी शुक्रवार में ग्रह बना है। इसलिये पंक्ति के दिनादि ६।४५।० में इष्टदिनादि ५।४५।५१ को घटाने से गत दिनादि (ऋणचालन) ०।५।१।१९ हुआ। इससे रवि की गति ५९।२३ को गोमूत्रिका विधि से गुणा करके ५८।४१ इसमें ६० का भाग देने से अंशादि ०।५८।४१ इसको गतदिनादि (ऋण चालन) होने के कारण पंक्ति के सूर्य ११।१३।१०।५९ में घटाने से ११।१२।२२।१८ यह इष्टकालिक सूर्य हुआ। इसी प्रकार चालन से मंगल आदि ग्रहों की गति को गुणाकर ६० का भाग देकर लब्ध अंशादि फल को मंगल आदि ग्रहों में घटाने से इष्टकालिक मंगलादिक स्पष्ट हो जायेगा। नीचे चक्र देखो।

तात्कालिक साधन चन्द्र का उदाहरण इसी ग्रन्थ में देखिए ।
इस प्रकार वर्षेष्टकालिक स्पष्ट ग्रह चक्र—

सू.	च	मं.	बु.	वृ.	शु	श.	के.
११	२	३	११	२	१०	८	६
१२	९	५	२४	१८	१	२७	२४
२२	५२	४	३१	१५	५०	२७	१५
१८	११	५३	३८	१५	१२	४४	१

‘मित्रं त्रिकोणत्रिभयस्थितश्चेत्’ इत्यादि श्लोकानुसार मित्र-सम-शत्रु
चक्र का उदाहरण—

इसी पुस्तक के पृष्ठ २७३ में वर्ष लग्न कुण्डली में देखिये, सूर्य से मित्र स्थान (५।६।११ में केवल मङ्गल है, इसलिये केवल मंगल सूर्य का मित्र हुआ । तथा समस्थान (२।६।८।१२) में केवल शुक्र है इसलिये शुक्र सूर्य का सम हुआ । तथा सूर्य से शत्रु स्थान (१।४।७।१०) में चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति हैं । इसलिये वे चारों इनके शत्रु हुए । इसी प्रकार हर एक ग्रह से मित्रादि का विचार करना । नीचे चक्र देखिए—

मित्र-सम-शत्रु चक्र

ग्रह	सू.	चं	मं.	बु.	वृ.	शु.	श.
मित्र	मं.	शु.	बु.सू.	मं.	शु.	च.वृ. श.	शु.
सम	शु	मं.	शु गु श.च.	शु.	मं.	सू.म. बु	मं.
शत्रु	च बु. वृ श.	बु वृ. श.सू.	०	सू.चं. वृ.श	सू.बु श चं.	०	सू.चं. बु.वृ.

पञ्चवर्गीय —

इसी ग्रन्थ में लिखित श्लोकानुसार सूर्य बृहस्पति के गृह में हैं, बृहस्पति सूर्य का शत्रु है इसलिये गृहबल (३०) का चतुर्थांश (७।३०) यह गृहबल हुआ तथा हृदा चक्रानुसार सूर्य गुरु के हृदा में है, गुरु सूर्य का शत्रु है इसलिये हृदा बल (१५) के चतुर्थांश ३।४५ सूर्य का हृदा बल हुआ । सूर्य मीन के

दूसरे द्रेष्काण में है, दूसरा द्रेष्काण चन्द्रमा का है, चन्द्रमा सूर्य का शत्रु है इसलिये द्रेष्काण बल (१०) का चतुर्थांश २।३० द्रेष्काण बल हुआ। तथा सूर्य शुक्र के नवमांश में है, शुक्र सूर्य का सम है इसलिये नवमांश बल (५) का आधा २।३० नवमांश बल हुआ। तथा उच्च बल के लिये स्पष्ट सूर्य ११।१२।२२।१८ में सूर्य के नीचे राश्यंश ६।१० घटाकर शेष ५।२।२२।१८ के अंश १५२।२८।१८ का नवमांश १६।५६ यह सूर्य का उच्च बल हुआ। सब बल का योग ३३।११, इसका चतुर्थांश ८।१८ वर्ष विशोपक बल हुआ। इसी प्रकार चन्द्रादि ग्रहों के पञ्चवर्गी बल का विचार करना चाहिये। चक्र देखिए--

पञ्चवर्गी बल चक्र -

ग्रह	सू.	च.	मं.	बु.	वृ.	शु.	श.
गुरु	७।३०	७।३०	१५।०	७।३०	७।३०	२७।३०	७।३०
बुध	३।४५	११।१५	१५।०	७।३०	७।३०	१५।०	१५।०
द्रेष्काण	२।३०	२।३०	५।०	१०।०	१०।०	७।३०	२।३०
नवमांश	२।३०	११।१५	५।०	१।१५	५।०	५।०	१।१५
उच्च	१६।५६	१५।१५	२।२८	१।३३	१।११	१३।५२	२।३०
योग	३३।३१	३८।२५	४२।१	३०।५३	१४।१	६३।५२	११।४५
विगी	८।१८	६।३६	१०।३२	७।४३	१२।२	५।५१	९।४१

वर्षेतिर्णय--

जन्मलग्नेश = मंगल । वर्षलग्नेश = बृहस्पति ।

मुन्धेश = बुध । त्रिराशीश = शनि । चन्द्रराशीश = बुध ।

इस पञ्चाधिकारियों में सबसे बली बृहस्पति लग्न को देखते हैं। इसलिये बृहस्पति वर्षेश हुए।

वर्षेश बृहस्पति का फल—

जीवेऽब्दपे बलयुते परिवारसौख्यं

धर्मो गुणग्रहिलता धनकीर्तिपुत्राः ।

विश्वास्पती जगति सन्मतिविक्रमाप्ति-

र्तामो निधेर्नृपतिगौरवमप्यरिघ्नम् ॥

स्पष्टार्थ । इस प्रकार और सब फल नीलकण्ठी आदि से कहना ।
मुद्दादशा—

जन्मर्क्षसंख्यासहिता गताब्दा नेत्रोनिता नन्दहतावशेषात् ।

अचंकुराजीशनुकेशुपूर्वा मुद्दादशाः स्युः किल वर्षप्रवेशे ॥

जन्म नक्षत्र संख्याको गतवर्ष में जोड़कर २ घटावे, उसमें ६ का भाग देने से १ आदि शेष में क्रम से सूर्य, चन्द्र, कुज, राहु, गुरु, शनि, बुध, केतु, शुक इनकी मुद्दादशा होती है ।

मुद्दादशा चक्र—

ग्रह	सू.	चं.	मं.	रा.	व.	श.	बु.	क.	शु.
मास	०	१	०	१	१	१	१	०	२
दिन	१८	०	२१	२४	१८	२७	२१	०१	०

त्रिपताकि चक्र विचार—

न्यसेद्भ्रुचक्रं किल तत्र सैकां याताब्दसंख्यां विभजेन्नभोगैः ।

शौषोन्मिते जन्मगचन्द्रराशेस्तुत्ये च राशौ विलिखेच्छशांकम् ।।

परे चतुर्भाजितशेषतुल्ये स्थाने स्वराशोः खचराश्च लेख्याः ।

शुभैश्च विद्धे हिमगौ शुभं स्यात् पापैश्च विद्धे हि शरीरपीडा ॥

मध्यरेखाग्र में वर्षलग्न राशि लिखकर क्रम से त्रिपताकिचक्र में १२ राशियों को लिखे । गतवर्ष में एक जोड़कर ६ का भाग देने से जो शेष बचे जन्मराशि से उतने संख्यक स्थान में चन्द्रमा को लिखे और ४ से भाग देकर शेष तुल्य राशि में जन्मकुण्डलीस्थ ग्रहस्थान से शेष ग्रहों को लिखे । चन्द्रमा शुभग्रह से विद्ध हो तो शुभफल, पापग्रह से विद्ध हो तो शरीर में क्लेश होता है ।

उदाहरण—गत वर्ष ३१ में १ जोड़कर ३२ में ६ का भाग देने से शेष ५ बचा, इसलिये जन्मकालिक चन्द्रराशि मकरसे पञ्चम वृषराशि में चन्द्रमा हुआ

और गत सैक गत वर्ष ४ का भाग देने से शेष ० अर्थात् ४ बचा इसलिये जन्मकालिक स्वस्वाश्रित राशि से चौथे-चौथे राशि में शेष सूर्यादिक ग्रह हुए । स्पष्टार्थ नीचे चक्र देखिए—

३ रेखा खड़ी और ३ रेखा तिरछी मिलकर पुनः कोण से परस्पर दो-दो रेखाओं में रेखा लगने से त्रिपताकी चक्र बनता है । उसमें सामने बीच वाली रेखा में वर्ष लिखकर उस क्रम से १२ राशियों को लिखे, फिर गतवर्ष संख्या में एक जोड़कर (अर्थात् वर्तमान वर्ष संख्या में) ६ के भाग देने से जो शेष बचे जन्मकालिक चन्द्राश्रित राशि से उतनी संख्या में जो राशि हो उस राशि में चन्द्रमा को लिखे । तथा उसी सैक गतवर्ष संख्या में ४ के भाग देकर जो शेष बचे 'जन्मकालिक ग्रहाश्रित राशि से' उतनी संख्या में जो राशि हो उस राशि में अन्य ग्रहों को लिखे, राहु और केतु को उल्टा गिनकर रखना चाहिये । इस प्रकार चक्र में ग्रहों के न्यास करने से जहाँ चन्द्रमा हो वहाँ से निकली हुई ३ रेखाओं में किसी रेखा के दूसरे भाग में ग्रह हो तो चन्द्रमा को विद्ध समझना चाहिये । यदि शुभग्रह से चन्द्रमा को वेध हो तो वर्ष में शरीरादि सुख श्रेष्ठ और पापग्रह से वेध हो तो अशुभ फल समझना चाहिये ।

त्रिपताकि चक्र—

	१०	६	८	
	/	X	X	\
गु. रा. ११	X	/	\	X
१२	X	\	/	X
६	\	X	X	/
	2	3	4	
	च.	सु.	शु.	
	मं.	बु.		

इस प्रकार त्रिपताकिचक्र में चन्द्रमा किसी ग्रह से विद्ध नहीं है, इसलिये शूभाशुभ फल देने में सामान्य हुआ ।

पुरुष के जन्मलग्न से ग्रहों का भावफल चक्र—

भाव	सूर्य	चन्द्र	भौम	बुध	गुरु	शुक्र	श. रा. के.
१ तनु	शरीर पीड़ा	सुख	रक्त-विकार	सुख	कान्तिमान	सुख	दुःख
२ धन	क्रोध धनहा	अतिलाभ	दुःख	अतिनाम	धनलाभ	लाभ	धन का नाश
३ सहज	नीरो-गता	निर्दय	क्रोधी बुखी	धनवृद्धि	यश	कृश कामी	स्त्रियों का प्रिय
४ माता	अति कष्ट	सुखभोग	कष्ट	सुखभोग	सुखी	भोगी	अतिपीड़ा
५ सुत	दुःख	अधिकपुत्र	सन्तान हानि	अल्पपुत्र	पुत्रवान्	पुत्रयुक्त	सन्तान हानि
६ शत्रु	शत्रुका नाश	रोग	शत्रु नाश	बहुरोग	विकलता	बुद्धिहीन	शत्रुपान्ध
७ स्त्री	कुस्त्री प्राप्ति	सुंदर स्त्री	स्त्रीनाश	सुंदर स्त्री	सुखी	चतुर	रोगी निधन
८ मृत्यु	रोगी	धर्मत्मा	दुष्टबुद्धि	अनिष्ट	पीड़ा	रोगी	क्लेशित
९ धर्म	अधर्मी	यशी	अधर्मी	धर्मरत	भाग्योदय	धर्मत्मा	दुष्टबुद्धि
१० कर्म	सुखी	धनलाभ	उपकारी	कीर्तिनाम	सत्त्वमं	धनवान्	सम्पत्ति-वान्
११ आय	राज मित्र	धनलाभ	लाभ	ज्ञानी	धनवृद्धि	गुणी	कीर्तिमान्
१२ व्यय	दुःस्व-भाव	नेत्रपीड़ा	पापी	निर्धन	दुर्वन	दुःखी कामी	आवसी

स्त्री के जन्मलग्न से ग्रहों का भावफल चक्र—

भाव	सूर्य	चन्द्र	भीम	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	रा. के.
१ तनु	विधवा	अल्पायु	विधवा	पति-व्रता	पतिव्रता	पतिव्रता	दरिद्रा	पुत्रनाश
२ धन	दुःखी	पुत्रवती	दुःखि-ता	सौभा-ग्यवती	सौभाग्य	सौभाग्य-वती	दुःख	दरिद्रा
३ सहज	पुत्र-वती	धनाढ्या	पुत्रिणी	धन-वती	पुत्रवती	पुत्रवती	लक्ष्मी-वती	धनवती
४ सुहृद्	दरिद्रा	दुर्भंगा	अल्प-सन्तति	सुखी	सुखी	सुखी	स्वल्प-दुःखी	पुत्रनाश
५ सुत	सन्तति-नाश	कन्या-धिका	पुत्र-मरण	उत्तम-फलप्रा.	उत्तम सुख	उत्तम-सुखी	रोगि-णी	मरण
६ रिपु	धन-वती	विधवा	धन-युक्ता	क्लेश-प्राप्ति	धनवती	दरिद्रा	धन-वती	धनाढ्या
७ पति	रोगि-णी	प्रवासिनी	स्वामी-नाश	क्षय	भयबंधन	भर्तुः-प्रिया	वैधव्य	धनहानि
८ मृत्यु	विधवा	अतिकष्ट	धन-वती	स्वजन-वियोग	स्वजन-वियोग	मरण	बहुत-सन्तान	मरणान्त-वि०
९ धर्म	धर्म-निष्ठा	पुत्रवती	कर्मका-रिणी	उत्तम-भोग	धर्मवृद्धि	धर्मवृद्धि	वन्ध्या	वन्ध्या
१० कर्म	पा-पिनी	व्यभिचार	मृत्यु	धन-वती	पति धन-वान् हो	पति धनी-हो	पा-पिनी	विधवा
११ आय	पुत्र-वती	लक्ष्मीवती	पुत्र-वती	सुखी	आयुष्मती	पुत्रवती	धन-वती	सौभाग्य-वती
१२ व्यय	अति-व्यय	दिवाग्धा	वन्ध्या	सुपुत्र-वती	सुशीला	पतिव्रता	अति-व्यथा	व्यभि-चारिणी

वर्ष प्रवेश कालिक ग्रहों का भावफल--

	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
सूर्य	क्लेश चिन्ता	शोक	धन लाभ	भय हानि	रोग भय	सुख	स्त्री कष्ट	कष्ट भय	धर्म अ.	सुख अर्थ	सुख लाभ	उद्योग पीडा
चंद्र	कफ ज्वर	नेत्र पीडा धन लाभ	धन हर्ष	सुख	सुख सुमति	पीडा व्यय	ज्वर भय	कष्ट	पुण्य धन	मुकर्म जय	यश धन	व्यय नेत्ररोग
भौम	वातार्त व्रण	मद्यम नेत्र रोग	धन	रोग भय	पुत्रार्ति	सुख	स्त्री कष्ट	रोग	धन पुण्य	कर्मोदय धन लाभ	धन	व्यय नेत्ररोग
बुध	सौख्य धन-लाभ	धन लाभ	रोग नाश	सुख	सुत लाभ	भय स्त्री कष्ट	स्त्री सुख	कष्ट	लाभ सुख	सुख धन	जय धन	विवाद व्यय
गुरु	सुख प्रा० अर्थ ला०	यश धन	धर्म धन	सुत लाभ	सुत सुख	कष्ट	स्त्री सुख	ज्वर	धर्म सुख	जय सुख	जय लाभ	व्यय व्यथा
शुक्र	सुमान धन लाभ	धन लाभ	सहज सुख	कृषि लाभ	पुत्र सुख	विवाद कष्ट	स्त्री सुख	कष्ट	धर्म धन	वस्त्र लाभ	धन लाभ	नेत्र रोग
शनि	रिपु नाश वात रोग	विरोध	धन भोग	गुप्त चिन्ता	मुन कष्ट	धन लाभ	स्त्री कष्ट	कष्ट	भार्य धन	धन हानि	धन लाभ	व्यय कष्ट
राहु केतु	शिर रोग कलह	भय पीडा	धन लाभ	कष्ट	बुद्धिनाश	शत्रु नाश	रोग भय	कष्ट भय	धर्म नाश	लाभ सुख	अति सुख	कष्ट
मृगश	धन यश	धन यश	सुख	रोग भय	पुत्र सुत	रोग भय	स्त्री कष्ट	धन कष्ट	लाभ सुख	कार्य सिद्धि	सौभाग्य सुख	व्यय रोग

अर्हों के शांथर्थ पदार्थ, दानपदार्थ और जप संख्या ४०५५

सूर्य	चन्द्र	कुज	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	राहु	केतु	मंथहा
माणिक्य	वंशपात्र	प्रवाल	सूँफ	घोड़ा	विनाम्वर	माण	गोमेद	वहूँप	वशापात्र
गेहूँ	तण्डुल	गेहूँ	हरित वस्त्र	चीनी	श्वेत अश्व	तिल	रत्न	तिल कम्बल	तण्डुल
धेनु	कर्पूर	मसूर	कांस्य	हल्दी	धेनु	तैल	अश्व	कस्तूरी शस्त्र	रक्तवस्त्र
कुसुम्भ	मौक्तिक	ताम्र वस्त्र	मृामद	पीतघातय	हीरा	कुलथी कृष्णगो	नीलवस्त्र	कृष्णवस्त्र	मोदक
गुड़	श्वेतवस्त्र	गुड़	घृत, दासी	पीतवस्त्र	रौप्य	महिषी लोह	कम्बल अन्नक	तैल छाग	लाक्षाभरण
ताम्रपात्र रक्तवस्त्र	वृष रौप्य	सुवर्ण	पञ्चरत्न	पुष्पाराग	सुवर्ण	श्याम वस्त्र	तिल	कृष्ण पुष्प	सधृत- कांस्यपात्र
रक्त वस्त्र	घृत कुम्भ	कनेर	हरितदन्त	लवङ्ग कांचन	सुगन्ध घृत	इद्रतील	तैल लोह	लोह पात्र	सुवर्ण
जप ७०००	जप ११०००	जप १००००	जप ६०००	जप १६०००	जप १६०००	जप २३०००	जप १५०००	जप १७०००	जप ११०००

अथ नवग्रहमन्त्राः

सूर्यस्य वैदिकमन्त्रः—

ॐ आकृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यञ्च ।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भवनानि पश्यन् ॥

तान्त्रिकमन्त्रः—ॐ घृणिः सूर्याय नमः ॥

चन्द्रस्य वैदिकमन्त्रः—

ॐ इमं देवा ऽऽसपत्नगं सुबध्वं महते क्षत्राय ज्येष्ठ्याय महते
जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय । इमममुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विश ऽएष
वोऽमी राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानागं राजा ॥

तान्त्रिकमन्त्रः—ॐ सों सोमाय नमः ॥

कुजस्य वैदिकमन्त्रः—

ॐ अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्याऽऽयम् । अपागं रेतागं
सि जिन्वति ॥

तान्त्रिकमन्त्रः—ॐ अं अङ्गारकाय नमः ॥

बुधस्य वैदिकमन्त्रः—

ॐ उदबुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिंटापूर्ते सगं सृजेथामयञ्च ।
अस्मिन्सधस्थेऽअध्युत्तरस्मिन् विश्वेदेवा यजमानश्च सीदत ।

तान्त्रिकमन्त्रः—ॐ वुं बुधाय नमः ॥

जीवस्य वैदिकमन्त्रः—

ॐ बृहस्पते ऽऽति यदर्यो ऽअर्हाद् द्युमद्विभाति क्रनुमज्जनेषु ।
यदोदयच्छवश ऋत प्रजात तस्दमासु द्रविणं धेहि चित्रम् ॥

तान्त्रिकमन्त्रः—ॐ वृं वृहस्पतये नमः ॥

शुक्रस्य वैदिकमन्त्रः—

ॐ अन्नात् परिस्त्रुतो रसं ब्रह्मणा वप्रिबत् क्षत्रं पयः सोम प्रजापतिः ।
ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपान् शुक्रमन्धऽइन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥

तान्त्रिकमन्त्रः—ॐ शुं शुक्राय नमः ॥

शनेर्वैदिकमन्त्रः—

ॐ शन्नो देवीरभिष्टय ऽआपो भवन्तु पीतये शंयोरमिस्रवन्तु नः ॥

तान्त्रिकमन्त्रः--ॐ शं शनैश्वराय नमः ॥

राहोर्वैदिकमन्त्रः--

ॐ कया नशिवत्र ऽआभुवदूती सदावृधः सखा । कया शचिष्ठयावृता ॥

तान्त्रिकमन्त्रः--ॐ रां राहवे नमः

केतोर्वैदिकमन्त्रः--

ॐ केतुं कृण्वन्न केतवे पेशो मर्या ऽअपेशसे । समुषद्भिरजायथाः ॥

तान्त्रिकमन्त्रः--ॐ के केतवे नमः ॥

इति तत्रग्रहमन्त्राः ।

अथ महामृत्युञ्जयमन्त्रः--

ॐ हौं ओं जूं सः भूर्भुवः स्वः त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुञ्चिष्य माऽमृतात् भूर्भुवः स्वरो जूं सः हौं ॐ ॥

लघुमृत्युञ्जयमूलमन्त्रः--(ॐ जूं सः)

जपार्थे सङ्कल्पः

ॐ अद्यामुकमासेऽमुकपक्षेऽमुकतिथौ 'अमुक'गोत्रस्य मम 'अमुक'शर्मणो
जन्मकालिकजन्मलग्नावधिक 'अमुक'स्थानस्थित 'अमुक' ग्रहसंसूचित-
सकलारिष्टद्विप्रशमनपूर्वकदीर्घायुष्यबलपुष्टिनैरुज्यप्राप्तिकामोऽच्चारभ्य
यथाकालं माध्यन्दिनीयशाखान्तर्गत 'अमुक' इति मन्त्रस्य यथासंख्याकजप-
रूपपुरश्चरणमहं करिष्ये ।

यहाँ 'अमुक' के स्थान में जो नाम आदि हो उसका उच्चारण करना
चाहिये ।

अथ अद्भुत-प्रकरणम्

घर पर गृध्र आदि पक्षीके बैठने का फल--

गृध्रः कङ्कः कपोतश्च उलूकः श्येन एव च ।

चिल्लश्च चर्मचिल्लश्च भासः पाण्डर एव च ॥ १ ॥

गृहे यस्य पतन्त्येत गृहं तस्य विपद्यते ।

पक्षान्मासात्तथा वर्षान्मृत्युः स्याद् गृहमेधिनः ॥ २ ॥

गीघ, कंक, कबूतर, उल्लू, बाज, चिल्ल, भास, पाण्डर, पक्षी,
अचानक (अद्भुतरूप से) किसी के घर पर बैठे तो उस मनुष्य के घर
में अनिष्टफल होता है ॥ १-२ ॥

यदि पूर्वगृहे चैव गृध्रश्चोपविशेत्तदा ।
 धनस्य नाशमाप्नोति याम्ये चैव धनागमः ॥३॥
 पश्चिमे भवने चैव किञ्चित् क्लेशमवाप्नुयात् ।
 उत्तरे च महापीडा कोणभागेऽश्चकं फलम् ॥४॥
 यदा च पूर्वाभिमुखो गृहोपरि विशेत्स्वतः ।
 तदा पीडाकरो नैव दक्षिणाभिमुखो महत् ॥५॥
 पश्चिमाभिमुखश्चैव नृणां भयमुपादिशेत् ।
 उत्तराभिमुखे चैव परां चिन्तामवाप्नुयात् ॥६॥
 अष्टभागं गृहं कृत्वा तत्फलं संविचारयेत् ।
 पूर्वभागे मनोद्विग्नं दक्षिणे धनमाप्नुयात् ॥७॥
 पश्चिमे धनचिन्ता स्यादुत्तरे पशुहानिकृत् ।
 आग्नेय्यामग्निभयदा नैर्ऋते भूमिलाभदः ॥८॥
 वायव्ये शस्यनाशः स्यादैशान्यां महती व्यथा ।
 मध्यभागे यदा वासस्तदा भयमुपागतम् ॥९॥
 अकारणाद्यदा वासस्तदैतत्फलमाप्नुयात् ।
 कारणादल्पदोषः स्यान्मुख्यशालां विशेषतः ॥१०॥

यदि घर के पूर्वभाग पर गृध्र बैठ जाय तब धन का नाश होता है और दक्षिण भाग पर बैठने से धन का आगम होता है । पश्चिम भाग पर बैठने से किञ्चित् क्लेश, उत्तर भाग पर बैठने से महापीडा होती है तथा कोण भाग पर बैठे तो अल्प फल होता है । यदि स्वतः (स्वयं आकर) गृह पर पूर्वाभिमुख करके बैठे तो अनिष्ट फल नहीं देता, किन्तु दक्षिणाभिमुख बैठने से और उत्तराभिमुख होने से अत्यन्त चिन्ता देने वाला होता है । पुनः घर को अष्टभाग (आठभाग) करके उसका फल विचारना चाहिये । उसमें पूर्वभाग पर बैठने से मन उद्विग्न, दक्षिण भाग पर बैठने से धन का आगम और पश्चिम भाग में बैठे तो धन चिन्ता, उत्तर में पशु नाशकारक होता है ; तथा अग्निकोण में बैठने से अग्निभय, नैर्ऋत्य में भूमिलाभ, वायु कोण में बैठने से धन नाश और ईशान कोण में बैठने पर महान् दुःख देनेवाला होता है, किन्तु ये फल कारण बिना बैठने से ही समझना

चाहिये । यदि किसी कारणवश ये पक्षी आकर बैठ जायें तो अल्प दोष कहा गया है और प्रधान घर के लिये विशेष रूप से दोष होता है । कारण यह है कि घर के समीप में मरे हुए पशु आदि का मांस हो या घर के समीप में गृध्र आदि का निवास हो इस कारणवश यदि ये घर पर आकर के बैठे तो अनिष्ट फल नहीं समझना चाहिये ॥३-१०॥

गृध्र आदि पक्षी की शान्ति इस प्रकार है -

शान्ति करने से पूर्वदिन में (शनिवार को) एक बार निरामिष भोजन करके, अगले दिन (रविवार को) पीला वस्त्र पहन करके शान्ति करे । जैसे पहिले चिकनी सफेद मिट्टी से घर को लीपकर पञ्चगव्य और गङ्गा जल से सींचकर पूजा आरम्भ करे । प्रथम पञ्चदेवता विष्णु की पूजाकर गणेश, लक्ष्मी, पृथ्वी, वास्तु पुरुष, दशदिक्पाल, नवग्रह की पूजा करे । फिर संकल्प द्वारा १००८ एक हजार आठ वार शान्ति के मन्त्र (शन्नो देवी० इत्यादि) तथा सूर्य के मन्त्र, (आकृष्णेन रजसा० इत्यादि) से होम करे अथवा दशहजार वैदिक सूर्यमन्त्र (आकृष्णेन रजसा० इत्यादि) से आँक (मदार) की लकड़ी में घृत लगाकर आम की लकड़ी की अग्नि में होम करके पुनः होम संख्या के दशांश तर्पण और तर्पण के दशांश मार्जन करे और यथाशक्ति ब्राह्मण भोजन करावे । होम करने में अशक्त हो तो होम की संख्या से द्विगुणित उक्त मन्त्र से जप करना या करवाना चाहिये । अथवा एक लाख पार्यिव शिव लिङ्ग का पूजन या शतचण्डी पाठ करा करके ब्राह्मण भोजन करावे । अथवा महामृत्युञ्जय मन्त्र का जप करे या करावे तो अनिष्ट फल का नाश होकर शुभफल होता है । कहा भी गया है—

यथा—

एवं तु क्रियमाणो वै नानिष्टफलभागभवेत् ।
विभवो नास्ति यस्यापि तत्स्थानं संत्यजेत्स्वतः ॥
तद्गृहं च परित्यज्य सर्वान् कामानवाप्नुयात् ॥ इति ॥

अथ त्रीतरशान्तिमाह, गर्गः—

सुतत्रये सुता चेत् स्यात्तत्रये वा सुतो यदि ।
मातापित्रोः कुलस्यापि तदाऽनिष्टं महत् भवेत् ॥
ज्येष्ठनाशो धने हानिर्दुःखं वा सुमहद् भवेत् ।
तत्र शान्तिं प्रकुर्वीत वित्तशाह्यं विवर्जितः ॥
जातस्यैकादशाहे वा द्वादशाहे शुभे दिने ।
आचार्यमृत्विजो वृत्त्वा ग्रहयज्ञपुरःसरम् ॥

ब्रह्मविष्णुपद्मेशेन्द्रप्रतिमाः स्वर्गतः कृताः ।
 पूजयेद्ब्रह्मपराशिश्यकलशोपरि शक्तितः ॥
 पञ्चमे कलशे रुद्रं पूजयेद्रुद्रसंख्यया ।
 रुद्रसूक्तानि चत्वारि शान्तिसूक्तानि मर्वशः ॥
 आचार्यो जुहुयात्तत्र समिदाज्यं तिलांश्चहम् ।
 अष्टोत्तरसहस्रं वा शतं वा त्रिशतं तु वा ॥
 देवताभ्यश्चतुर्वक्त्रादिभ्यो ग्रहपुरःसरम् ।
 ब्रह्मादिमन्त्रैरिन्द्रस्य यत इन्द्रमयामहे ॥
 ततः स्वेष्टकृतं हुत्वा बलिं पूर्णाहुतिं ततः ।
 अभिषेकं कुटुम्बस्य शान्तिपाठं तु कारयेत् ॥
 ब्राह्मणान् भोजयेच्छक्त्या दीनानाथांश्च तर्पयेत् ।
 कृत्वैवं विधिना शान्तिं सर्वांगिष्टाद्विसुच्यते ॥
 कांस्यपात्रं शर्कराज्यपालैः षोडशमानतः ।
 ब्राह्मणेभ्यः प्रदातव्यं शुभं भवति नाऽन्यथा ॥

३ कन्या के बाद पुत्र का या ३ पुत्र के बाद कन्या का जन्म हो तो त्रीतर कहलाता है । अर्थ स्पष्ट है ।

अथ यमलजननशान्तिः, काशीखण्डे—

त्रिविधा यमलोत्पत्तिर्जायते योषितामिह ।
 सुतौ च सुतकन्ये वा कन्ये वाऽपि तथा पुनः ॥
 एकलिङ्गौ विनाशाय द्विलिङ्गौ मध्यमौ स्मृतौ ।
 पित्रोर्विघ्नकरौ ज्ञेयो यत्र शान्तिर्विधीयते ॥
 हेममूर्ती विधातव्ये दस्योश्च द्विजोत्तम ।
 पलेन वा तदर्धेन तदर्द्धार्धेन वा पुनः ॥
 ब्रह्मवृक्षस्य पटटे च स्थापयेद्रक्तवाससी ।
 स्वस्तिके तण्डुलानां च न्यस्ते पीठे द्विजोत्तम ॥
 पूजयेद्रक्तपुष्पैश्च चन्दनेनावलेपयेत् ।
 दशाङ्गेनैव धूपेन धूपयेत् प्रयतः पुमान् ॥
 दीपैर्नीराजनश्चैव नैवेद्यं परिकल्पयेत् ।
 यस्मै त्वसुवृते जातवेद इति मन्त्रेणासुतैरर्चयेत् ॥

अनेनैव तु मन्त्रेण होमं कुर्यादन्दिनः ।
 अष्टोत्तरसहस्रं च पायसेन सप्तपिषा ॥
 शान्तिपाठं जपेद्विद्वान् सूर्यसूक्तं जपेत्ततः ।
 विष्णुसूक्तं तथा गाथां वैश्वदेवीं जपेद् बुधः ॥
 अश्वदानं ततो दद्यादाचार्य्य कुटुम्बिने ।
 तयोर्मूर्तिं प्रदातव्ये यजमानेन धीमता ॥

तत्र दानमन्त्रः—

अश्वरूपौ महाबाहू अश्विनौ दिव्यचक्षुषौ ।
 अनेन वाजिदानेन प्रीयेतां मे यशस्विनौ ॥

मूर्तिदानमन्त्रः—

आचार्य्यः प्रथमे वेधां विष्णुस्तु सविता भगः ।
 दत्तमूर्तिप्रदानेन प्रीयेतामशिनौ भगः ॥
 ततोऽभिषेचनं कार्यं दम्पत्योर्विधिवद् बुधैः ।
 ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चाद् दक्षिणाभिश्च तोषयेत् ॥
 सालङ्कारैश्च वस्त्रैश्च प्रथयेद्बचनैः शुभैः ।
 एवं कृते विधानेन यमलोत्पत्तिशान्तिकम् ॥ इति ।

अथ षोडशाब्दगर्भधारणशान्तिः, राजमातृण्ड—

षोडशाब्दे गर्भधरावाष्टममासप्रसूतिका ।
 उभयोर्मरणं वाच्यं सत्याचार्य्यः प्रभाषते ॥
 अब्दे पञ्चदशे गर्भे प्रसवः षोडशेऽपि वा ।
 दम्पत्योर्द्वि विनाशः स्यादेकस्मिनेकनाशनम् ॥
 षोडशाब्दमता नारी भवेद् गर्भसमन्विता ।
 अग्रतो म्रियते माता पश्चात् पुत्रो विनश्यति ॥

तत्प्रतीकारवच—

दद्याद् गर्भवतीं द्यामीं वस्त्रालङ्कारभूषिताम् ।
 पुंसवनविधानेन संकमे शिवसन्निधौ ॥
 गौरीं सुसम्पक् सम्पूज्य काञ्चनीं कांस्यभाजने ।
 दासीं गर्भवतीं दद्याद् दैवज्ञाप च गोधुताम् ॥

अथ पञ्चाङ्गोपयोगिविषयः

वर्तमान संवत्सर के भुक्तभोग्य समय और प्रभववादि नामज्ञान—

शक्राक्षेन्दुविद्युक् शको नगगुणः शून्यम्बराङ्गोद्धृत-

माद्यं लब्धमिताब्द-वेददहनाढ्यं साब्दभूपेन्दुतः ॥

दिग्भागाप्तकलायुतं प्रभवतोऽब्दाः पष्टितष्टाः स्मृताः ।

शेषांशा रविभिर्हता दिनमुखं मेषार्कतः प्राग्भवेत् ॥

जिस शाके में प्रभववासंवत्सर का नाम और भुक्तभोग्य समय जानना हो उस शाके संख्या में १५१४ घटाकर शेष को गतवर्ष मानकर उसको ७ से गुणा करे, गुणनफल में ६०० के भाग देकर लब्धि को राश्यादि समझ, उसमें गतवर्ष और ३४ जोड़कर पृथक् रखे । पुनः ११६ में गतवर्ष संख्या जोड़कर (योग में) १० के भाग देकर लब्धि कलादि फल को पूर्व लब्धराश्यादि में जोड़कर उसमें ६० के भाग देने से शेष राशि प्रभव आदि गत वर्ष समझ तथा शेष अंशादि को १२ से गुणा करने से गुणनफल दिनादि होता है । दिन में ३० के भाग देकर मासादि बना लेना तो वह वर्तमान संवत्सर के भुक्त मास दिनादि होते हैं । उसको वर्तमान (३६० दिन) में घटाने से वर्तमान संवत्सर के मासादि मान समझना चाहिये । सूक्ष्ममान जानने के लिए वर्षमान दिनादि ३६१।२।३।४ ग्रहण करना और उसी से अतिचार और महा-तिचार का भी विचार करना चाहिये ।

उदाहरण—शाके १८८२ में १५१४ घटाने से शेष ३९८ यह गत वर्ष हुआ । इसको ७ से गुणा करने से २७७६, इसमें ६०० के भाग देने से लब्धि ४, शेष १७६ को ३० से गुणाकर ५२८०, इसमें ६० के भाग से लब्धि अंश ८ शेष ४८० को ६० से गुणाकर २८८०० इसमें पुनः ६ से भाग देकर ४८ कला एवं लब्धि राश्यादि ४।८।४।० इसमें गत वर्ष ६५८ आर जोड़ने से ४०६।८।४।० इसको पृथक् छोड़ दिया । और गत वर्ष ३६८ में ११६ जोड़कर ४८४ । १० के भाग देने से लब्धि कलादि ४।८।२४ को पृथक् रखे हुए योगफल ४०६।८।४।० के कलादि में जोड़ने से ४०।१।२६।३४; राशि स्थान में ६० के भाग देने से शेष ४६, गत संवत्सर ४६ वाँ परिधावी और वर्तमान प्रमादी नाम संवत्सर हुआ, शेष अंशादि ६।३६।२४ को ११ से गुणा करने से दिनादि ११५।१६।४८ इसको मासादि बनाने से ३।२।४।१६।४८ यह प्रमादि संवत्सर का मेषार्कसंक्रान्ति से गत मासादि इसको वर्षमान में घटाने से शेष भोग्य मासादि ८।४।४।१।२ हुआ ।

वर्षेश, मंत्री आदि का ज्ञान—

चैत्रादि

मेषादि-कुलीरतौली-मृगाननाद्राधनुरादिवाराः ।

राजचम्-सस्य-रसाधिपाश्च

स्युर्नारसेशाम्बुधि-धान्यनाथाः ॥

चैत्रशुक्ल प्रतिपद् उदयकाल में (वर्षारम्भ) में जो वार हो वही राजा, मेषार्क संक्रान्ति में जो वार हो वह मन्त्री, कर्कार्क संक्रान्ति में जो वार हो वह पूर्व धान्येश, तुलार्क संक्रान्ति में जो वार हो वह रसेश, सिहार्क संक्रान्ति में जो वार हो वह नोरसेश, आर्द्रा प्रवेशार्क में जो वार हो वह मेघपति, और धनुसंक्रान्ति में जो वार हो वह पश्चिम-धान्येश होता है।

वर्ष में मेघ के नाम का ज्ञान—

त्रिभिः शकाब्दाः सहिताश्चतुर्भिः शेषं भवेदम्बुपतिः क्रमेण ।

आवर्त-संवर्तक-पुष्कराश्च द्रोणश्चतुर्थो मुनिभिः प्रदिष्टः ॥

जिस शाके में मेघ का नाम जानना हो उसमें ३ जोड़कर ४ के भाग देने से १ शेष में आवर्तक, २ में संवर्तक, ३ में पुष्कर और ४ शेष में द्रोण नामक मेघ समझना ।

उदाहरण—शाके १८८२ में ३ जोड़ने से १८८५ इसमें ४ के भाग देने से १ शेष बचा इसलिए आवर्तक नाम का मेघ हुआ ।

मेघों के फल—

आवर्ते छिन्नवृष्टिः स्यात् संवर्ते जलपूरिता ।

पुष्करे मन्दवृष्टिः स्याद् द्रोणो वर्षति सर्वदा ॥

जिस वर्ष आवर्तनाम का मेघ हो उस वर्ष खण्डवृष्टि, संवर्त नामक मेघ हो तो पृथ्वी जल से पूरित होती है, पुष्करनामक मेघ हो तो अल्पवृष्टि होती और द्रोणनामक मेघ हो तो सब नक्षत्रों में वर्षा होती है। शाके १८८२ में आवर्तनामक मेघ होने के कारण खण्डवृष्टि समझनी चाहिये ।

वर्षा-धान्यादि विशोपक (विश्वा) जानने का प्रकार—

शाकस्त्रिनिध्नो नगमानितश्च शेषं त्रिनिध्नं शरसंयुतश्च ।

लब्धं च शोकं परिकल्प्य तस्मात् पूर्वोक्तवत् स्युः खलु विश्वकाख्याः

वर्षा च धान्यं तृण-शीत-तेजा वायुश्च वृद्धिक्षयविग्रहाश्च ॥

वर्ष में वर्षा आदि के विशोपक जानना हो तो उस वर्ष की शाके संख्या को ३ से गुणा करके ७ के भाग देकर, लब्धि को अलग रखके, शेष को ३ से गुणाकर ४ जोड़ देने से वर्षा-विशोपक होता है। तथा अलग रखी हुई लब्धि को पुनः शक, कल्पना करके पूर्ववत् क्रिया करने से व्रम से धान्य, तृण, शीत, तेज, वायु, प्रजावृद्धि, प्रजाक्षय और विग्रह विशोपक होते हैं ।

शकस्त्रिनिघ्नो नगभाजितश्च शेषं द्विनिघ्नं शरसंयुतश्च ।
 लब्धं च शाकं परिकल्प्य तस्मात् पूर्वोक्तवत् स्युः किल विश्वकारण्यः ॥
 वर्षा च धान्यं तृण-शीततेजो वायुश्च वृद्धिक्षयविग्रहाश्च ।

जिस शाके में वर्षा आदि के विशोपक जानना हो उस शाके संख्या को ३ से गुणा करके गुणनफल में ७ के भाग देकर लब्धि को पृथक् रखना, शेष को २ से गुणा करके ५ जोड़ने से वर्षा का विशोपक (विश्वा) समझना । पुनः पृथक् रखे हुए लब्धि को शाके कल्पना करके पूर्वोक्त विशोपक (प्रतिबीस) संख्या होती है ।

उदाहरण—शाके १८८२ को ३ से गुणा करने से ५६४६ इसमें ७ के भाग देने से लब्धि ८०६ शेष ४ को २ से गुणा कर ५ जोड़ने से १३; यह वर्षा विशोपक हुआ । पुनः लब्धि ८०६; को ३ से गुणा करने से २४१८; इसमें ७ के भाग देने से द्वितीय लब्धि ३४५, शेष ३ को २ से गुणाकर ५ जोड़ने से ११ यह धान्यका विशोपक हुआ । पुनः द्वितीय लब्धि ३४५ को तीन से गुणा करने से १०३५; इसमें ७ के भाग से लब्धि १४४, शेष ६ को २ से गुणा करके ५ जोड़ने से १७ यह तृणविशोपक हुआ । पुनः तृतीय लब्धि १४७ इत्यादि पर से पूर्ववत् क्रिया करने से शीत ५, वायु १३, प्रजावृद्धि १५, प्रजाक्षय १५, विग्रह ११ हुए ।

शाक वर्ष में मेषादिराशियों के आय-व्यय—

स्वस्वामिवर्षाधिपवत्सरैक्यं त्रिघ्नं शराढ्यं तिथिभक्तशेषम् ।
 आयोऽथ लब्धिस्त्रिगुणा शराढ्या तिथ्युद्धृता शेषमितो व्ययः स्यात्

अपनी जन्मराशि के स्वामी और वर्षेश की दशावर्ष संख्या को जोड़कर उसको ३ से गुणा करके ५ जोड़ दे और १५ के भाग देने से जो शेष बचे वह आय । और लब्धि को ३ से गुणा करके ५ जोड़कर १५ के भाग देने से जो शेष बचे उतना उस शाकवर्ष में व्यय समझना चाहिये ।

यहाँ के वर्षमान विशोत्तरी सू. ६ चं. १०, मं ७, बु. १७, बृहस्पति १६, शुक्र २०, शनि १९ वर्ष । अष्टोत्तरी वर्ष सू० ६, चं. १५, मं. ८, बु. १७, श. १०, वृ. १९, रा. १२, शु. २१ वर्ष ।

उदाहरण—शाके १८८२ में वर्षेश चन्द्र है, चन्द्र की विशोत्तरी वर्ष संख्या १० और मेषराशि का स्वामी मंगल है, उसकी वर्ष संख्या ७ दोनों के योग १७ को ३ से गुणा कर ५ जोड़ने से ५६; इसमें १५ के भाग देने से लब्धि ३ और शेष ११, यह आय हुआ, तथा लब्धि ३ को ३ से गुणा करने से ९; इसमें ५ जोड़कर १५ से तद्विहित करने से १४ यह व्यय हुआ । इसी प्रकार अन्य राशियों के स्वामी के वर्ष से आय-व्यय समझना चाहिये ।

तथा अष्टोत्तरी मत से वर्षेश चन्द्र की वर्ष संख्या १५ में, मेष के स्वामी मंगल की अष्टोत्तरी वर्ष संख्या ८ जोड़ने से २३, इसको ३ से गुणा करके ५ जोड़ने से ७४, इसको १५ से भाग देने से लब्धि ४, शेष १४ यह आय हुआ। तथा लब्धि ४ को ३ से गुणा करके ५ जोड़ने से १७, इसमें १५ के भाग देने से शेष २ यह व्यय हुआ। इसी प्रकार वृष आदि राशियों के आय-व्यय अपने-अपने स्वामी ग्रह और वर्षेश की संख्या से समझना चाहिये।

क्षुधादि विश्वा जानने का प्रकार—

शाकं चतुर्गुणं कृत्वा सप्तभिर्भागमाहरेत् ।
 शेषं द्विघ्नं त्रिभिर्युक्तं प्रोक्तं विश्वाख्यमादिभिः ।
 क्षुधा तृषा तथा निद्रा चालस्यं चोद्यमस्तथा ।
 शान्तिः क्रोधस्तथा दम्भो लोभो मैथुनमेव च ॥
 ततस्तु रसनिष्पत्तिः फलनिष्पत्तिरेव च ।
 उत्साहः सर्वलोकानां ज्ञातव्यं निश्चितं बुधैः ॥

शाके संख्या को ४ से गुणा करके गुणनफल में ७ से भाग देकर लब्धि को पृथक् रखना। शेष को २ से गुणाकर ३ जोड़ने से क्षुधा का विशोपक समझना। पुनः पृथक् रखे हुए लब्धि को शाके मानकर पूर्वोक्त क्रिया करने से क्रम से तृषा आदि (निद्रा, आलस्य, उद्यम, शान्ति, क्रोध, दम्भ, लाभ, मैथुन, रसनिष्पत्ति, फलनिष्पत्ति, उत्साह) के विशोपक होते हैं।

उदाहरण—शाके १८८२ को ४ से गुणा करने से ७५२८ इसमें ७ के भाग देने से लब्धि १०७५ शेष ३ को २ से गुणा करके ३ जोड़ने से ९; यह क्षुधा का विशोपक हुआ। पुनः लब्धि १०७५ को ४ से गुणा करने से ४३००, इसमें ७ के भाग देकर लब्धि ६१४ शेष २ को २ से गुणा कर ३ जोड़ने से ७ तृषा का विशोपक हुआ। एवं द्वितीयादि लब्धि से क्रिया करने से निद्रा १५, आलस्य ३, उद्यम ७, शान्ति ५, क्रोध ५, दम्भ ५, लोभ ३, मैथुन १५, रसनिष्पत्ति ९, फलनिष्पत्ति १३, उत्साह ११ ये त्रयोदश विशोपक हुए।

उद्भिज्जादि विशोपक—

शाकः पञ्चभिः सप्तभिर्गोभिरीशैश्चतुर्थं हयश्चाष्ट-भक्तावशिष्टम् ।
 द्विनिघ्नं त्रिभिर्युक्तमुद्भिज्जरायुजाण्डजस्वेदजानां हि विशोपकाः स्युः ।

शाक संख्या को चार स्थान में रखकर क्रम से ५, ७, ९, ११ से गुणा करके पृथक्-पृथक् ८ के भाग देने से शेषों को २ से गुणा करके ३ जोड़ने से क्रमशः उद्भिज्ज, जरायुज, अण्डज और स्वेदज विशोपक होते हैं।

उदाहरण शाके १८८२ को ५ से गुणा करने से ९४१० इसमें आठ के भाग देने से शेष २ को २ से गुणा कर ३ जोड़ने से ७ यह उद्भिज्ज का विशोपक हुआ। एवं—जरायुज १७, अण्डज ७, स्वेदज १७ हुए।

रोहिणीवास और उसका फल—

मेषार्कदिनभादृक्षद्वयमन्धौ द्वयं तटे ।
 एकं गिरौ द्वयं सान्धौ चतुर्दिक्षु तथा न्यसेत् ॥
 साभिजिच्च क्रमेणैवं फलं यत्र तु रोहिणो ।
 अतिवृष्टिः समुद्रे स्यात् तटे ज्ञेयमवर्षणम् ॥
 गिरौ सन्धौ खण्डवृष्टिरित्याहुः पूर्वस्वरयः ।

मेषार्क संक्रान्ति जिस दिन हो उस दिन जो चान्द्र (दैनिक) नक्षत्र हो उस नक्षत्र से क्रमशः—२ समुद्र में, २ तट में, १ पर्वत में और २ सन्धि में एवं पुनः-पुनः अभिजित् सहित नक्षत्रों को रखे, जिस स्थान में रोहिणी पड़े उसका फल इस प्रकार समझना चाहिये । यथा—रोहिणी यदि समुद्र में पड़े तो अतिवृष्टि, तट में पड़े तो अवृष्टि, पर्वत और सन्धि में पड़े तो खण्ड वृष्टि समझना चाहिये ।

उदाहरण—शाके १८८२ में मेषार्क संक्रान्ति के दिन स्वाती नक्षत्र है, अतः स्वाती से क्रम से—नक्षत्रों के न्यास करने से रोहिणो तट में पड़ी इसलिए १८८२ में वृष्टि अल्प होगी ऐसा कहना । नीचे नक्षत्रों का न्यास देखिये ।

समुद्र	तट	पर्वत	सन्धि
स्वाती	विशाखा	अनुराधा	ज्येष्ठा
मूल	पू. षा.	उ. पा.	अभिजित्
श्रवण	धनिष्ठा	शतभिषा	पू. भा.
उ. भा.	रेवती	अश्विनी	भरणी
कृत्तिका	रोहिणी		

विशेष

बालकों के उपकारार्थ सोदाहरण विंशोत्तरो दशाज्ञान प्रकार—

जन्म नक्षत्र से जन्मकालिक दशा जानने का चक्र—

नक्षत्र	कृ	रो	मृ.	आ.	पुन.	पुष्य	आश्ले	म.	पू. फा.
	उ. फा.	ह.	चि.	स्वा.	वि.	अनु.	ज्ये.	मू.	पू. षा.
	उ. षा.	श्र.	ध.	श.	पू. भा.	उ. भा.	रे.	अश्वि.	भ.
दशापति	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र
वर्ष	६	१०	७	१८	१६	१९	१७	७	२०

नक्षत्रों से दशापति और उनके वर्षों के ज्ञानार्थ पद्य—

कृत्तिकातः समारभ्य त्रिरावृत्य दशाधिपाः ।

सूर्येन्दु-कुज-राह्विज्य-शनि-शिखि-केतु-भार्गवाः ॥

दशासमाः क्रमादेषां षड् दशाऽश्वा गजेन्दवः ।

नृपाला नवचन्द्राश्च नगचन्द्रा नगा नखाः ॥

कृत्तिका से आरम्भ कर तीन आवृत्ति करके नौ-नौ नक्षत्रों के क्रम से— सूर्य, चन्द्र, मङ्गल, राहु, बृहस्पति, शनि, बुध, केतु, शुक्र ये दशाधिपति होते हैं। तथा क्रम से इन ग्रहों के ६, १०, ७, १८, १६, १९, १७, ७, २० वर्ष दशामान हैं, जो उपरोक्त चक्र में स्पष्ट है।

जन्मकालिक वर्तमान दशा के भुक्त और भोग्य वर्षानियन प्रकार—

दशामानं भयातघ्नं भभोगेन हृतं फलम् ।

भुक्तं वर्षादिकं ज्ञेयं भोग्यं भोग्यवशात् तथा ॥

जिस ग्रह की दशा में जन्म हो उस ग्रह की दशावर्ष संख्या को भयात से गुणाकर गुणनफल में भभोग का भाग देने से लब्धि वर्षादि दशा का भुक्तमान होता है, उसको दशा वर्ष की संख्या में घटाने से (जन्मकाल से आगे) भोग्य होता है।

अथवा—भयात को भभोग में घटाने से भभोग्य होता है। उसमें दशावर्ष संख्या को गुणाकर गुणनफल में भभोग से भाग देने से लब्धि वर्षादि वर्तमान दशा का भोग्य (जन्मकाल से आगे का मान) होता है।

इसकी युक्ति (उपपत्ति)—यदि सम्पूर्ण भभोगघटी में ग्रह की दशा संख्या होती है तो भयात घटी में क्या ? इस प्रकार त्रैराशिक से भुक्त वर्षादि = $\frac{\text{दशासंख्या} \times \text{भयातघ}}{\text{भभोगघ}}$

इसी प्रकार भभोग घटी के अनुपात से भभोग्यवर्षादि = $\frac{\text{दशावर्षसं.} \times \text{भभोग्यघ}}{\text{भभोगघ}}$

* उदाहरण—शाके १८४८ संवत् १९८३ माघशुक्र एकादशी शनिवार में किसी का जन्म है। उस समय मृगशिरा नक्षत्र के भयात = ४८।१५॥ भभोग ५१।३०।५ भभोग्य १।१५ स्पष्ट सूर्य = १।२९।२०।१३ है। तो उपरोक्त पद्यानुसार मृगशिरा नक्षत्र में मंगल दशाधिप हुआ। इसलिए मंगल की दशावर्ष संख्या ७ को भयात ५८।१५ के एकजातीय २४९५ से गुणाकर २४४६५ इसमें भभोग ५१।३० के एकजातीय ३५७० से भाग देने से लब्धि वर्षादि, ६।१०।७।३।३२ दशाका भुक्त हुआ, इसको दशावर्ष संख्या ७ में घटाने से दशा का भोग्य वर्षादि = ०।१।२२।५६।२७ ॥

* 'लग्नपत्रप्रदीप' के प्रथम प्रकाश में भयात आदि बनाना देखिये।

अथवा—भोग्य ११५ के एक जातीय ७५ से दशावर्ष संख्या ७ को गुणा करने से ५२५ इसमें भोग्य ५९१३० के एकजातीय (पल) ३५७० से भाग देने से लब्धि वर्षादि ०।१।२२।५६।२८ दशा का भोग्य पूर्वतुल्य ही आया ।

विंशोत्तरी महादशा चक्र—

ग्रह	मं.	रा.	गु.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं०	
वर्ष	०	१८	१६	१९	१७	७	२०	६	१०	
मा.	१									
दि.	२२									
घ.	५६									
प.	५८									
शाके										
	१८४८	१८४८	१८६६	१८८२	१९०१	१९१८	१९३५	१९५५	१९६१	१९७१
सूर्य										
९	११	११	११	११	११	११	११	११	११	
२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	
२०	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	
१३	४१	४१	४१	४१	४१	४१	४१	४१	४१	

अन्तर्दशा बनाने का सरल प्रकार—

दशाब्दाः स्वस्वमानेन हताः स्वार्कोद्धृताः फलम् ।

अन्तर्दशा भवेदेवं प्रत्यन्तर-दशादयः ॥

(जिस ग्रह की महादशा में प्रत्येक ग्रहों की अन्तर्दशा जानना हो) उस ग्रह की दशावर्ष संख्या को अलग-अलग प्रत्येक ग्रहों की दशा संख्या से गुणा कर गुणनफल में १२० के भाग देने से लब्धि वर्षादि तत्तद्ग्रह की अन्तर्दशा का मान होता है । इस प्रकार अन्तर्दशा पर से प्रत्यन्तर्दशा तथा प्रत्यन्तर पर से विदशा, विदशा पर से उपदशा का आनयन होता है ।

इसकी उपपत्ति (युक्ति) यह है कि—प्रत्येक ग्रह की दशा में ९ नव ग्रहों की अन्तर्दशा होती है, वह भी अपने-अपने वर्ष के अनुसार होनी चाहिये, इसलिए सब ग्रहों के दशावर्षयोग (१२०) में इष्ट दशामान तो अलग-अलग ग्रहों की वर्षसंख्या में

* भाग देने में वर्ष शेष को १२ से गुणा कर मास, मास शेष को ३० से गुणा कर दिन, दिन शेष को ६० से गुणा कर घटी बनाकर भाग देने से मासादि लब्धि होती है ।

वया इस अनुपात से इष्टदशा में अन्तर्दशा मान = $\frac{\text{इष्टदशा} \times \text{ग्रहदशा}}{१२०}$ सिद्ध होता है ।

उदाहरण—रवि की दशा में रव्यादि सब ग्रहों की अन्तर्दशा साधन करना है तो रवि की दशा वर्ष की संख्या ६ को रवि को वर्ष संख्या ६ से गुणाकर गुणनफल ३६ में १२० के भाग देने से वर्ष = ० । वर्ष शेष ३६ को १२ से गुणाकर गुणनफल ३६ × १२ = (४३२) में १२० के भाग देने से लब्ध मास = ३ । मास शेष ७२ को ३० से गुणाकर २१६० इसमें १२० के भाग देने से लब्ध दिन १८ इस प्रकार रवि की दशा में रवि की अन्तर्दशा वर्षादि ०।३।१८।०।० ॥

इसी प्रकार रवि की दशा को चन्द्रादि ग्रह की दशासंख्या से गुणाकर १२० के भाग देकर वर्षादि अन्तर्दशा होती है । जो बालकों के उपकारार्थ आगे चक्र में स्पष्ट है ।

अथवा—इस ग्रह की दशा का योग १२० वर्ष में दशा का मान तो १ वर्ष में क्या ? इस अनुपात से एक वर्ष सम्बन्धी अन्तर्दशा ध्रुवक = $\frac{\text{दशासंख्या} \times १}{१२०}$ वर्षादि हुआ । इसका एक वर्ष सम्बन्धी दिन ३६० दिन से गुणा करने से दिनादि अन्तर्दशा ध्रुवक = $\frac{\text{दशासंख्या} \times ३६०}{१२०} = \frac{\text{दशासंख्या} \times ३}{१}$, इससे सिद्ध हुआ कि दशा वर्षसंख्या को ३ से गुणा करने से १ वर्ष सम्बन्धी अन्तर्दशा मान दिनादि होता है, उसको ग्रहों की अपनी दशावर्षसंख्या में गुणा करने से अन्तर्दशा का प्रमाण होगा ।

अतः अभ्यासार्थ श्लोक—

त्रिघ्नं दशासमामानं दिनाद्यं ध्रुवकं स्मृतम् ।

निघ्नं स्वस्वदशाब्दैस्तद् भवेदन्तर्दशामितिः ॥

उदाहरण—जैसे सूर्य दशा वर्ष संख्या ६ को ३ से गुणा करने से ध्रुवक दिन = १८ । इसको सूर्य की दशा संख्या से गुणा करने से सूर्य की अन्तर्दशा दिनादि १०८, इसमें ३० से भाग देकर मासादि ३।१८ मास के स्थान में १२ से अधिक हो तो १२ से भाग देकर वर्षादि बना लेना । यहाँ सूर्य की दशा में सूर्य की अन्तर्दशा के मास १२ से कम है अतः सूर्य की दशा से सूर्य की अन्तर्दशा वर्षादि $\frac{\text{व.मा.दि.घ.प.}}{०।३।१८।०।०}$

यह पूर्व विधि से बनाये हुए के तुल्य ही हुआ ।

इस प्रकार सूर्य की ध्रुवा १८ को चन्द्र की दशावर्षसंख्या से गुणाकर दिनादि चन्द्र की अन्तर्दशा १८० इसमें ३० के भाग देकर मासादि ०।६।०।०।० अतः सूर्य की दशा में चन्द्र की अन्तर्दशा वर्षादि ०।६।०।०।० एवं ध्रुवक को मंगलादिक की दशासंख्या से गुणाकर अन्तर्दशा मान सिद्ध होते हैं । जो नीचे चक्र में स्पष्ट है ।

सूर्य की दशा में सूर्यादि नवग्रहों की अन्तर्दशा—

ध्रुव	ग्रह	सू.	चं.	मं.	रा.	वृ.	श.	बु.	के.	शु.
०	व.	०	०	०	०	०	०	०	०	१
०	मा.	३	६	४	१०	९	११	१०	४	०
१८	दि.	१८	०	६	२४	१८	१२	६	६	०

उक्त रीति के अनुसार चन्द्रमा की दशा १० को ३ से गुणा कर दिनात्मक ध्रुव = ३० इसमें ३० से भाग देने से १ मास, इसको अपनी-अपनी दशा की संख्या से गुणा करने से—

चन्द्र की दशा में चन्द्र आदि ग्रहों की अन्तर्दशा—

ध्रुव	ग्रह	चं.	मं.	रा.	वृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.
०	व.	०	०	१	१	१	१	०	१	०
१	मा.	१०	७	६	४	७	५	७	८	६

मंगल की दशा में मंगलादि ग्रहों की अन्तर्दशा—

ध्रुव	ग्रह	मं.	रा.	वृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.
०	व.	०	१	०	१	०	०	१	०	०
०	मा.	४	०	११	१	११	४	२	४	७
२१	दि.	२७	१८	६	९	२७	२७	०	६	०

राहु की दशा में राहु आदि की वर्षादि अन्तर्दशा—

ध्रु.	रा.	वृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	व.
०	२	२	२	२	१	३	०	१	१	व.
१	८	४	१०	६	०	०	१०	६	०	मा.
२४	२७	२४	६	१८	१८	०	२४	०	१८	दि.

बृहस्पति की दशा में अन्तर्दशा—

ध्रु.	वृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	व.
०	२	२	२	०	२	०	१	०	२	व.
१	१	६	३	११	८	९	४	११	४	मा.
१८	१८	१२	६	६	०	१८	०	६	२४	दि.

शनि की दशा में अन्तर्दशा—

घु.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	वृ.	
०	३	२	१	३	०	१	१	२	२	व.
१	०	८	१	२	११	७	१	१०	६	मा.
२७	३	२	१	०	१२	०	६	६	१२	दि.

बुध की दशा में अन्तर्दशा—

घु.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	म.	रा.	वृ.	श.	
०	२	०	२	०	१	०	२	२	२	व.
१	४	११	१०	१०	५	११	६	३	८	मा.
२१	२७	२७	०	६	०	२७	१८	६	९	दि.

केतु की दशा में अन्तर्दशा—

घु.	के.	शु.	सू.	चं.	म.	रा.	वृ.	श.	बु.	
०	१	०	०	०	०	१	०	१	०	व.
०	४	२	४	७	४	०	१०	१	११	मा.
२१	२०	०	६	०	२७	१८	६	९	२७	दि.

शुक्र की दशा में अन्तर्दशा—

घु.	शु.	सू.	चं.	म.	रा.	वृ.	श.	बु.	के.	
०	३	१	१	१	३	३	३	२	१	व.
२	४	०	८	२	०	८	२	१०	२	मा.
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	दि.

इति बृहज्ज्योतिषसारः समाप्तः ।

